जैन प्रतिमाएं

डॉ० ब्रजेन्द्रनाथ शर्मा

जैन प्रतिमाएं

प्रस्तुत पुस्तक में जैनियों के चौबीस तीर्थंकरों एवं यक्ष-यक्षीयों तथा शासन देवताओं का विशद् वर्णन दिया गया है। पुस्तक में बारह अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में जैन मूर्तिकला का उद्भव एवं क्रमिक विकास के साथ-साथ नरहड़ से प्राप्त तीर्थंकर नेमिनाथ तथा मुनि सुव्रत की मूर्तियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है जिन्हें भ्रांति से कृष्ण व बलराम की मूर्ति बताया गया था। द्वितीय अध्याय में इसी प्रकार सरस्वती मूर्तियों के उद्भव एवं विकास के साथ पल्लू ग्राम से प्राप्त सुप्रसिद्ध सरस्वती की प्रतिमाओं का विशेष रूप से अध्ययन हुआ है! तृतीय अध्याय में जैनियों के पुनीत स्थल गन्धावल नामक स्थान से प्राप्त कुछ मध्यकालीन जैन प्रतिमाओं का वर्णन प्रस्तुत है! अगले दो अध्यायों में राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में संग्रहित प्रस्तर एवं कांस्य प्रतिमाओं का उल्लेख किया गया है! इसी प्रकार अध्याय छः एवं सात में प्रिन्स आफ वेल्स संग्रहालय, बम्बई में सुरक्षित पाषाण एवं धातु की जैन मूर्तियों का उल्लेख हुआ है! अध्याय आठ में राजस्थान के अनेक संग्रहालयों में रखी जैन मूर्तियों का वर्णन है! अध्याय नौ में भारत तथा साथ ही बंगला देश के विभिन्न संग्रहालयों में प्रदर्शित जैन मूर्तियों का विशद् वर्णन दिया गया है! अध्याय दस और ग्यारह में योरप एवं अमरीका के अनेक संग्रहालयों के अतिरिक्त वहाँ के निजि संग्रहों में सुरक्षित दुर्लभ जैन मूर्तियों का तुलनात्मक अध्ययन दिया गया है! अन्तिम अध्याय में जैन प्रतिमा विज्ञान पर नवीन प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है!

पुस्तक में महत्वपूर्ण ग्रन्थ-सूची के अतिरिक्त अनेक रेखा-चित्र व छाया चित्र भी हैं, जिससे इसकी महत्ता और अधिक बढ़ जाती है! अंग्रेजी अथवा हिन्दी में अन्य कोई ऐसी पुस्तक नहीं है, जिसमें देश-विदेश के प्रायः सभी संग्रहालयों में प्रदर्शित जैन मूर्ति-कला का इतना विस्तार से अध्ययन एक स्थान पर किया गया हो। यह पुस्तक केवल जैन कला में शोध करने वालों के लिए ही नहीं, वरन् जैन धर्म एवं साहित्य में रुचि रखने वाले विद्वानों के लिए भी अत्यन्त उपयोगी है!

मूल्य : 60 रुपये

जैन प्रतिमाएं

(JAINA IMAGES)

डा० ब्रजेन्द्र नाथ शर्मा
एम० ए०, पी०-एच० डी०, डी०लिट्०
आनरेरी फैलो आफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ ग्रेट ब्रिटेन
एण्ड आयरलैण्ड (लन्दन);
कीपर, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली
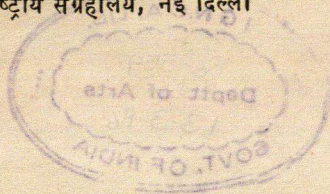
१९७९
इण्डोलोजिकल बुक कॉरपोरेशन
दिल्ली पटना

लेखक की अन्य पुस्तकें :

1. सोशल एण्ड कल्चरल हिस्ट्री आफ नार्दन इण्डिया (१०००-१२०० श० ई०), नई दिल्ली, १९७२
2. आईक्नोग्रेफी आफ रेवन्त, नई दिल्ली, १९७५
3. आईक्नोग्रेफी आफ सदाशिव, नई दिल्ली, १९७६
4. फैस्टीवल्स आफ इण्डिया, नई दिल्ली, १९७८
5. आईक्नोग्रेफी आफ वैनायकी, नई दिल्ली, १९७९

प्रथम संस्करण १९७९
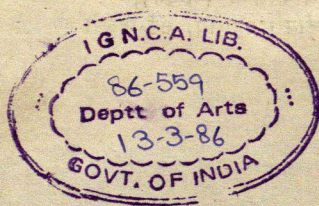
प्रकाशक :

डॉ० श्रीभगवान सिंह, एम० ए०, पी-एच० डी०

इण्डोलोजिकल बुक कॉरपोरेशन

२/७ अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२

मुद्रक :

अमर प्रिंटिंग प्रेस, (श्याम प्रिंटिंग एजेन्सी), ८/२५ विजय नगर दिल्ली—९

डा० राम कुमार दीक्षित

एवं

डा० कृष्ण दत्त बाजपेयी

को

सादर समर्पित

देवाधिदेव परमेश्वर वीतराग
सर्वज्ञ तीर्थंकर सिद्धमहानुभाव ।
त्रैलोक्यनाथ जिनपुंगव वर्द्धमान
स्वामिन् गतोऽस्मि शरणं चरणद्वयं ते ।।

विषय-सूची

चित्र-सूची

१५. तीर्थंकर, चोल, १३वीं शती ई०, दक्षिण भारत, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली ।

१६. सरस्वती, चौहान, १२वीं शती ई०, पल्लू, राजस्थान, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली ।

१७. चक्रेश्वरी, प्रतिहार, १०वीं शती ई०, ओसिया, राजस्थान ।

१८. अम्बिका, पाल, ११वीं शती ई०, बिहार, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली ।

१९. महामानसी, चन्देल, १२वीं शती ई०, देवगढ़, उत्तर प्रदेश ।

२०. कुबेर, प्रतिहार, ८वीं शती ई०, बांसी, राजस्थान, पुरातत्त्व संग्रहालय, उदयपुर ।

२१. अमोहिनी द्वारा स्थापित आर्यवती पट्ट, कुषाण, १ली शती ई०, मथुरा, राज्य संग्रहालय, लखनऊ ।

२२ लवण-शोभिका की पुत्री वसु द्वारा स्थापित पट्ट, कुषाण, १ली शती ई०, मथुरा, राजकीय संग्रहालय, मथुरा ।

२३. अर्धवर्तुलाकार पट्ट जिस पर नैगमेष, जैन-देवी, तीर्थङ्कर एवं स्तूप का अंकन है, कुषाण, १ली-२री शती ई०, मथुरा, राज्य संग्रहालय, लखनऊ ।

२४. नैगमेष सहित महावीर के गर्भ संक्रमण का दृश्य, कुषाण, २री शती ई०, मथुरा, राज्य संग्रहालय, लखनऊ ।

२५. उपर्युक्त मूर्ति का पृष्ठ भाग जिस पर नृत्य एवं गान का दृश्य अंकित है ।

२६. तीर्थङ्कर, कुषाण, २री शती ई०, मथुरा, राज्य संग्रहालय, लखनऊ ।

२७. जैन चौमुख, कुषाण, २री शती ई०, मथुरा, राज्य संग्रहालय, लखनऊ ।

२८. सरस्वती, कुषाण २री शती ई०, मथुरा, राज्य संग्रहालय, लखनऊ ।

२९. नेमिनाथ, गुप्त, ५वीं शती ई०, मथुरा, राज्य संग्रहालय, लखनऊ ।

३०. नेमिनाथ गोमेध एवं अम्बिका सहित, गुप्त, ६ठी शती ई०, राजघाट, वाराणसी, भारत कला भवन, वाराणसी ।

३१. महाविद्या अच्छुप्ता देवी, ६ठी-७वीं शती ई०, अकोटा, बड़ोदा संग्रहालय, बड़ोदा ।

३२. पार्श्वनाथ, ९वीं शती ई०, अकोटा, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली ।

३३. अम्बिका, ९वीं शती ई०, अकोटा, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली ।

३४. चक्रेश्वरी, प्रतिहार, १०वीं शती ई०, राजस्थान, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली ।

३५. पद्मावती, गाहड़वाल, ११वीं शती ई०, उत्तर प्रदेश, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली ।

३६. पार्श्वनाथ, प्रतिहार, १०वीं शती ई०, राजस्थान, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली।

३७. ऋषभनाथ बाहुबलि एवं भरत सहित, चेदि, १०५६ ई०, मध्य प्रदेश, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली।

३८. मुनिसुव्रत, गाहड़वाल, ११वीं-१२वीं शती ई०, बटेश्वर, आगरा, राज्य संग्रहालय, लखनऊ।

३९. महावीर, चेदि, १०वीं-११वीं शती ई०, मध्य प्रदेश, नागपुर संग्रहालय, नागपुर।

४०. ऋषभनाथ, चेदि, ११वीं शती ई०, त्रिपुरी, मध्य प्रदेश, भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता।

४१. मान-स्तम्भ जिस पर आठ तीर्थङ्करों का अंकन है, प्रतिहार, १०वीं शती ई०, इलाहाबाद, राज्य संग्रहालय, लखनऊ।

४२ परिकर, चौहान, १२वीं शती ई०, राजस्थान, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली।

४३. जिन के माता-पिता, चन्देल, ११वीं शती ई०, देवगढ़, एशियन कला संग्रहालय, सेन फ्रान्सिस्को।

४४. ऋषभनाथ, पाल, ११वीं शती ई०, बिहार, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली।

४५. जिन के माता-पिता, पाल, ११वीं शती ई०, बंगाल, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली।

४६. ऋषभनाथ, पूर्वी गंग, १२वीं शती ई०, उड़ीसा, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली।

४७. पार्श्वनाथ की पंच-तीर्थी, १४४३ ई०, गुजरात, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली।

४८. सुपार्श्वनाथ, चोल, ११वीं शती ई० तमिलनाडु, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली।

४९. आदिनाथ, चालुक्य, १०वीं शती ई०. आन्ध्र प्रदेश, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली।

५०. गोमटेश्वर, पश्चिमी गंग, ९८३ ई०, श्रवणबलगोला, कर्णाटक।

संकेत-सूची

आई० ए०	: इण्डियन एन्टीक्वैरी ।
आई० एच० क्यू०	: इण्डियन हिस्टोरिकल क्वारटरली, कलकत्ता ।
ई० आई०	: एपिग्राफिया इण्डिका ।
ए० एस० आई० ए० आर०	: आरक्योलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट ।
ओ० ए०	: ओरियन्टल आर्ट, लन्दन ।
जे० आई० एम०	: जरनल आफ इण्डियन म्यूजियम्स, बम्बई-नई दिल्ली ।
जे० आई० एस० ओ० ए०	: जरनल आफ दी इण्डियन सोसाइटी आफ ओरियन्टल आर्ट, कलकत्ता ।
जे० ए०	: जैन एन्टीक्वैरी, आरा ।
जे० ओ० आई०	: जरनल आफ दी ओरियण्टल इन्स्टीटयूट, बड़ौदा ।
जे० बी० आर० एस०	: जरनल आफ दी बिहार रिसर्च सोसाइटी, पटना ।
जे० बी० ओ० आर० एस०	: जरनल आफ दी बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, पटना ।
जे० बी० बी० आर० ए० एस०	: जरनल आफ दी बाम्बे ब्रान्च आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी, बम्बई ।
जे० जे०	: जैन जरनल, कलकत्ता ।
जे० यू० पी० एच० एस०	: जरनल आफ दी यू० पी० हिस्टोरिकल सोसाइटी, लखनऊ ।
बी० पी० डब्ल्यू० एम०	: बुलेटिन आफ दी प्रिन्स आफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई ।

प्राक्कथन

चि० ब्रजेन्द्र नाथ शर्मा को मैं एक मूक अन्वेषक और विद्वान के रूप में बहुत समय से जानता हूँ। उन्होंने साधना कर भारतीय मूर्तियों के इतिहास और प्रतिमा शास्त्र के क्षेत्र में अद्वितीय स्थान ग्रहण किया है। उनके अध्ययन के समक्ष तो उनकी पी-एच० डी० और डी० लिट्० भी महत्त्व नहीं रखतीं। राष्ट्रीय संग्रहालय के पुरातत्त्व अनुभाग के वे अध्यक्ष हैं। यह स्वयं एक महत्त्व का स्थान है। इस पद को आचार्य श्री सी० शिवराममूर्ति जैसे उद्भट विद्वान सुशोभित कर चुके हैं। चि० शर्मा जी उस परम्परा का समुचित निर्वाह कर रहे हैं। उन्होंने एक से एक बढ़कर लेखादि प्रकाशित किए हैं। विगत वर्षों में वे प्रतिमाशास्त्र की परम्परा को निकट से पहचान कर रहे हैं और उसे पुस्तकाकार प्रकाशित कर रहे हैं। इनमें कुछ समय पहले 'रेवन्त' पर उन्होंने एक सुन्दर ग्रन्थ का प्रकाशन किया। यह लोक प्रसिद्ध हुआ।

अब उन्होंने 'जैन प्रतिमाएं' नामक एक सुन्दर खोजपूर्ण कृति प्रकाशित की है। जैन प्रतिमा शास्त्र काफी जटिल है, क्योंकि कालानुक्रम से उसका विस्तार होता जाता है। बहुत समय से इस विषय पर पुस्तक का अभाव भी है। इस बीच निरन्तर नई सामग्री प्रकाश में आती जा रही है। सर्वोपरि जैन प्रतिमा शास्त्र का ब्राह्मणधर्मीय प्रतिमा शास्त्र से जो सम्बन्ध है, वह भी उजागर हुआ है।

मेरी मान्यता यह है कि जैन तीर्थङ्करों की मानवाकृति मूर्तियां पहले ही स्थिर हो चुकी थीं। उन्ही के आधार पर बुद्ध की तपस्वी रूप में आकृति की कल्पना हुई। प्राय: २५ ईसा पूर्व में कलिंग का सम्राट् खारवेल हुआ। उसकी प्रशस्ति में लिखा है कि मगध से वह 'जिन' (मूर्ति) वापस लाया, जिसे नन्दराज चौथी सदी ईसा पूर्व में कलिंग से उठा ले गया था। इसी प्रकार कंकाली टीला, मथुरा से कुछ ऐसे आयाग पट्ट मिले हैं जो संभवत: बुद्ध की ज्ञात-मानवीय प्रतिमाओं से पूर्ववर्ती हैं। उनमें एक में 'जिनमूर्ति' भी है।

इधर मथुरा से प्राप्त नेमिनाथ की मूर्तियों में कृष्ण एवं बलराम की

आकृतियाँ भी पार्श्वदेवता के रूप में प्राप्त हुई हैं। ध्यान देने योग्य है कि जिस प्रकार मथुरा वैष्णवों का केन्द्र था, उनके देवता कृष्ण-बलराम थे, उसी प्रकार जैन धर्म का भी मथुरा केन्द्र था। वहाँ कृष्ण के (जैन शास्त्रानुसार) भाई नेमिनाथ का केन्द्र था।

इस प्रकार एक ओर तो बड़ी खोजें हो रही हैं, दूसरी ओर उनकी नई व्याख्यायें हो रही हैं।

डा० ब्रजेन्द्र नाथ शर्मा ने अथक प्रयत्न से इस सामग्री को एकत्र किया और उनका पुर्नमूल्यांकन किया है। अभी तक हम लोग इस प्रकार के अध्ययनों को अंग्रेजी के माध्यम से अथवा उसके अनुवाद से ही प्राप्त करते रहे हैं। अब डॉ० शर्मा जैसे विद्वानों के विक्रम से हमें मूल रूप में यह सामग्री हिन्दी में ही उपलब्ध होने लगी है। यह हम सभी हिन्दी भाषा-भाषियों के लिए गर्व का विषय है।

इस सम्बन्ध में शर्मा जी ने जैन-शिल्प के कई विशिष्ट संग्रहों की विपुल सामग्री का साक्षात् परिचय प्राप्त किया और अपनी पैनी दृष्टि से उन्हें परखा है। इस प्रकार विद्वज्जगत को अनेक नई सामग्री प्राप्त होगी। इस हेतु शर्मा जी बधाई के पात्र हैं। आशा है, अपने शोधकार्यों से वे सद्ग्रंथ प्रकाशित करते रहेंगे। मुझे उनसे बड़ी-बड़ी आशायें हैं।

—राय कृष्णदास

सीता निवास, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी

सम्मतियाँ

डॉ० ब्रजेन्द्र नाथ शर्मा कृत 'जैन प्रतिमाएँ' हिन्दी में अपने ढंग का एक अनोखा ग्रन्थ है, जिसमें 'जैन प्रतिमाओं' के विकास से लेकर देश-विदेश के विभिन्न संग्रहालयों में सुरक्षित विभिन्न युगों की दुर्लभ जैन प्रतिमाओं का बड़ा ही सुन्दर एवं सांगोपांग वर्णन किया गया है। डा० शर्मा प्राचीन भारतीय कला के एक मर्मज्ञ विद्वान हैं और कई बार देश-विदेश का भ्रमण कर चुके हैं। फलस्वरूप उन्हें विभिन्न संग्रहालयों को देखने का जो अवसर प्राप्त हुआ, वह इस ग्रंथ के प्रणयन में बड़ा ही सहायक सिद्ध हुआ है। इस विषय से सम्बन्धित हिन्दी तथा अंग्रेजी भाषाओं में इतनी अधिक सामग्री एक स्थान पर कहीं भी उपलब्ध नहीं है और इस दृष्टि से शोधकर्ताओं के लिए इस ग्रंथ की उपादेयता और भी बढ़ जाती है।

भाषा, शैली एवं विषय-वस्तु की दृष्टि से यह ग्रंथ सर्वथा प्रशंसनीय है और विद्वान् लेखक से यह आशा करना स्वाभाविक ही है कि भविष्य में भी वह भारतीय कला के विभिन्न पक्षों पर लिखकर हिन्दी साहित्य को उत्तरोत्तर समृद्ध करने का प्रयास करेंगे।

—उपेन्द्र ठाकुर
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष
प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन विभाग,
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया।

प्राचीन संस्कृति की जानकारी के क्षेत्र में प्रतिमा-विज्ञान का स्थान सदैव महत्वपूर्ण माना जाता है। मूर्ति-पूजा का उद्भव और विकास प्राचीन भारत की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थिति का दर्पण है, तथैव उसकी क्रमिक विकासशील परम्परा का परिचायक भी है। देश के विभिन्न भू-भागों में खोजी गई प्रतिमाओं के विषय में, अंग्रेजी, हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अनेक ग्रन्थों का प्रणयन हुआ है और हो रहा है, फिर भी जैन सम्प्रदाय की प्रतिमाओं के शिल्प-विज्ञान का अध्ययन यथोचित रूप से अभी तक नहीं हो पाया है। डा० ब्रजेन्द्र नाथ शर्मा द्वारा प्रणीत यह ग्रंथ अंशतः इस अभाव की पूर्ति करता है।

यह ग्रन्थ बारह अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में जैन मूर्ति-कला के विकास की दृष्टि से, नरहड़ की जैन प्रतिमाओं का निरूपण तथा उसके परवर्ती दो अध्यायों में सरस्वती प्रतिमा तथा गन्धावल की जैन प्रतिमाओं का शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत है। तदनन्तर के आठ अध्यायों में भारत के ख्यातिप्राप्त संग्रहालयों जैसे राष्ट्रीय संग्रहालय (नई दिल्ली) प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम (बम्बई), राजस्थान के तथा कतिपय अन्य प्रदेशों के संग्रहालयों में सुरक्षित जैन मूर्तियों के वर्णन के साथ ही साथ, यूरोप और अमेरिका के भी संग्रहालयों की मूर्तियों की झांकी प्रदर्शित की गई है। अन्तिम द्वादश अध्याय में जैन-प्रतिमा-विज्ञान का शास्त्रीय एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन तथा विवेचन प्रस्तुत किया गया है। उपलब्ध सामग्री के प्रत्यक्ष दर्शन के आधार पर लिखा हुआ यह अध्याय यथार्थतः मौलिक है।

विद्वान लेखक ने आधुनिक गवेषणाओं के अनुरूप इस ग्रन्थ के प्रणयनार्थ जितना परिश्रम किया, उसी के फलस्वरूप जैन मूर्तिकला से सम्बन्धित प्रचुर सामग्री का विवेचन एक ही स्थल पर उपलब्ध हो सका है। हमारी मातृ-भाषा के साहित्य को परिवर्धित करने की दृष्टि से भी यह प्रयास सराहनीय है। सन्दर्भ-ग्रन्थों और चित्र तथा रेखा-सूची से पुस्तक की उपादेयता में वृद्धि हुई है। भारतीय-कला के विशेषज्ञ, शोध-छात्र-वृन्द तथा जैन मूर्तिकला में रुचि रखने वाले विद्वज्जन इस ग्रन्थ का समुचित आदर करेंगे, जिन सभी के लिये इसमें पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। साथ ही, हमारी यह भी कामना है कि लेखक इसी प्रकार के अपने अध्ययन से हमारे ज्ञान की श्री वृद्धि करने हेतु सतत प्रोत्साहित होते रहें !

—हरिहर त्रिवेदी

राष्ट्रीय संग्रहालय के कीपर डा० श्री ब्रजेन्द्र नाथ शर्मा कई वर्षों से कला और विशेषतः मूर्तियों के संबंध में शोध-पूर्ण निबन्ध लिखते रहे हैं। इस सम्बन्ध में उनके बहुत से लेख देश-विदेश की पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। भारत एवं विदेशों में प्राप्त कुछ प्रस्तर एवं धातु की मूर्तियों संबन्धी कई महत्त्वपूर्ण निबन्ध डा० ब्रजेन्द्र नाथ शर्मा के प्रकाशित हुए थे। उनका अब ग्रंथ 'जैन प्रतिमाएं' के नाम से प्रकाशित हो रहा है। आशा है कि प्रस्तुत ग्रन्थ से प्रेरणा लेकर समस्त प्राप्त जैन मन्दिरों एवं मूर्तियों सम्बन्धी एक शोध-पूर्ण सचित्र ग्रन्थ प्रकाशित किया जायेगा। जैनी न होने पर भी डा० ब्रजेन्द्र नाथ ने जो जैन मूर्तियों की खोज और अध्ययन में इतनी अधिक रुचि दिखाई है, इसके लिए वे अनेकानेक धन्यवाद के पात्र हैं।

उनका महत्त्वपूर्ण कार्य निरन्तर चलता रहे और जैन-कला का भारतीय कला में जो विशिष्ट योगदान है, उसको वे प्रकाश में लाते रहेंगे यही शुभ कामना है।

—अगर चन्द नाहटा

इस पुस्तक में जैन मूर्तियों के उद्भव एवं विकास का इतना जो सुन्दर गवेषणात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन बन पड़ा है, वह सराहनीय है। नरहड़ की जैन प्रतिमाओं के विकास पर से घूमती हुई लेखक की वैज्ञानिक दृष्टि अमरीका के संग्रहालय की जैन प्रतिमाओं पर जाकर रुकती है। पुस्तक के ग्यारह अध्यायों में शायद ही डा० ब्रजेन्द्र नाथ शर्मा की पैनी निगाह से कोई जैन प्रतिमा बच पायी हो। यह पुस्तक जहाँ एक ओर पल्लू ग्राम की जगत-प्रसिद्ध संगमरमर की मूर्तियों का खजाना है, वहाँ जैनियों के पावन क्षेत्र गन्धावल की जैन मूर्तियों की सम्पदा का भी इसमें विस्तृत उल्लेख है।

राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली एवं भारत के विभिन्न भागों में प्राप्त प्रस्तर एवं कांस्य मूर्तियों पर उत्कीर्ण अभिलेखों को भी स्पष्ट किया गया है। प्रिन्स आफ वेल्स संग्रहालय, बम्बई, व राजस्थान के संग्रहालयों से प्राप्त जैन-मूर्तियों को इस पुस्तक में स्थान दिया गया है। विदेश यात्राओं तथा भारत-भ्रमण ने डा० शर्मा को जैन मूर्तियों का अध्ययन करने का एक विशद एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण दिया है। दसवें एवं ग्यारहवें अध्यायों में इसका परिचय मिलता है। पाठक को ऐसा लगता है, कि वह स्वदेश में बैठे विदेश के संग्रहालयों का भ्रमण कर रहा है। अन्तिम अध्याय 'प्रतिमा विज्ञान' के अन्तर्गत जैन प्रतिमाओं को वैज्ञानिक कसौटी पर कसा गया है, जो ज्ञान वृद्धि के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

आंग्ल एवं हिन्दी भाषा में शायद ही ऐसी कोई पुस्तक उपलब्ध हो, जिसमें जैन मूर्तियों का इतना विशद वर्णन प्राप्त हुआ हो! एक प्रकार से यह पुस्तक विश्वभर की जैन मूर्तियों का 'कोष' बन गई है। शोध-ग्रन्थ होते हुए भी जनमानस के लिये यह अत्यन्त रोचक है। रेखा-चित्रों एवं छाया-चित्रों ने इस पुस्तक की उपादेयता के साथ-साथ रोचकता बढ़ाने में भी सहायता प्रदान की है। आशा है, जैन धर्मावलम्बियों की जिज्ञासा को भी यह शान्त करेगी। पुस्तक के साथ संदर्भ-ग्रन्थ सूची देकर लेखक ने पढ़ने-वालों के सामने एक विशाल क्षेत्र प्रस्तुत कर दिया है।

डा० ब्रजेन्द्र नाथ शर्मा का इस पुस्तक में संग्रहीत पुनीत कार्य उनके परिश्रम का फल है। लेखक की सफलता के लिये मेरी शुभ कामनाएं समर्पित हैं।

—कादम्बरी शर्मा

आमुख

जैन प्रतिमाओं का भारतीय मूर्तिकला के क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैन प्रतिमाओं की प्राचीनता के बारे में अभी भी कुछ विद्वानों में मतभेद है, परन्तु ऐतिहासिक रूप से इतना तो अवश्य स्पष्ट है कि मौर्य काल में तीर्थंकर प्रतिमाएं बनने लगी थीं और तब से प्रायः आज तक ऐसी मूर्तियों का निर्माण होता रहा है। आधुनिक समय में भी भारत के प्रायः सभी नगरों में जैन देवालय हैं जिनमें तीर्थंकरों के अतिरिक्त जैन धर्म के अन्य देवी-देवताओं की अनेक प्रतिमाएं पूजा हेतु प्रतिष्ठापित हैं। इस समय केवल दिल्ली में ही लगभग पचासी जैन मन्दिर एवं चैत्यालय हैं और उनमें कितनी जैन मूर्तियां होंगी, इसका हम सहज में अनुमान कर सकते हैं।

जैन मूर्तिकला का वास्तु एवं चित्रकला से भी घनिष्ठ संबंध है। देवगढ़, खजुराहो, ओसिया, आबू, गिरनार, राणकपुर आदि के विख्यात मन्दिर स्थापत्य के साथ-साथ अपनी श्रेष्ठ मूर्ति-सम्पदा के लिए भी जगत् प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार राजस्थान, गुजरात, मालवा आदि प्रदेशों में बने असंख्य लघु चित्र भी भारतीय चित्रकला के क्षेत्र में अपना अद्वितीय स्थान रखते हैं। डा० आनन्द कुमारस्वामी, डा० डी० आर० भण्डारकर, डा० विन्सेन्ट स्मिथ, डा० बी० सी० भट्टाचार्य, डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, डा० मोतीचन्द्र, डा० उमाकान्त पी० शाह, डा० बालचन्द्र जैन आदि विद्वानों ने जैन कला के क्षेत्र में जो महान् कार्य किया है, उसी के फलस्वरूप जैन वास्तु, मूर्ति एवं चित्रकला का यथातथ्य विश्लेषणात्मक स्वरूप प्रस्तुत हो सका है।

प्रस्तुत पुस्तक में बारह अध्याय हैं, जिनमें प्रथम दो अध्यायों में जैन तीर्थंकर एवं सरस्वती की प्रतिमाओं के उद्भव एवं विकास का विवेचन हुआ है। तृतीय अध्याय में गन्धावल क्षेत्र की मूर्ति सम्पदा पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। अगले पांच अध्यायों में भारत एवं बंगला-देश के विभिन्न भागों में स्थित बड़े-छोटे प्रायः सभी संग्रहालयों में प्रदर्शित जैन मूर्तियों की जानकारी प्रस्तुत की गई है। अन्य दो अध्यायों में योरप एवं अमरीका के अनेक संग्रहालयों के अतिरिक्त वहां के निजी संग्रहों में सुरक्षित जैन देवी-देवताओं की प्रतिमाओं का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत है। भारत एवं संसार के विभिन्न देशों में अनेक बार यात्राएं कर वहां के संग्रहालय आदि में संग्रहीत भारतीय कृतियों के अध्ययन करने का जो सुअवसर मिला, उसी के आधार पर यह विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। अन्तिम अध्याय में जैन धर्म के विकास तथा मूर्तिकला पर शोधपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की गई है। पुस्तक के अन्त में लगभग पचास रेखा एवं छाया चित्र दिये गये हैं, जिससे जैन प्रतिमाओं के अध्ययन में विशेष सहायता मिलती है।

जैन प्रतिमाओं पर केवल कुछ ही पुस्तकें उपलब्ध हैं और इनमें भी विशेष रूप से सर्व विदित मूर्तियों का मुख्यतः उल्लेख हुआ है। प्रस्तुत पुस्तक में भारत एवं विदेशों के विभिन्न भागों में सुरक्षित प्रायः सभी जैन प्रतिमाओं का विस्तृत सर्वेक्षण प्रस्तुत है, जो जैन मूर्तिकला के विद्यार्थी के लिए एक प्रकार से विश्वकोष का कार्य करेगा।

जैन कला एवं साहित्य में मेरी रुचि गुरुवर स्व० डा० दशरथ शर्मा की अनुकम्पा के कारण हैं, अतः उस पुण्य-आत्मा के प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। आचार्य श्री सी० शिवराममूर्ति, भूतपूर्व निदेशक, राष्ट्रीय संग्रहालय सदा ही प्रेरणा के स्रोत रहे हैं, अतः उनके प्रति भी अपना आभार प्रकट करता हूँ। डा० नील रतन बैनर्जी, निदेशक, राष्ट्रीय संग्रहालय का भी अत्यन्त आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे सतत प्रोत्साहित किया तथा संग्रहालय की विपुल सामग्री को अध्ययन एवं प्रकाशित करने के लिए सहर्ष स्वीकृति प्रदान की है।

श्रद्धेय श्री राय कृष्णदास जी का मैं विशेष रूप से अनुग्रहीत हूँ जिन्होंने आशीर्वादस्वरूप महत्त्वपूर्ण प्राक्कथन पुस्तक के लिए लिखा है। डा० उपेन्द्र ठाकुर, डा० हरिहर त्रिवेदी, श्री अगर चन्द नाहटा एवं प्रो० कादम्बरी शर्मा को पुस्तक के सम्बन्ध में दी गई विद्वत् सम्मतियों के लिए मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। डा० रमेश चन्द्र राय ने पाण्डुलिपि को पढ़कर भाषा संबंधी सत्परामर्शों से मुझे उपकृत किया है, अतः उनके प्रति भी मैं आभारी हूं। श्री शीतला प्रसाद तिवारी ने अनेक लेख-युक्त जैन प्रतिमाओं का वर्णन उपलब्ध किया है, डा० कमला जैन ने सहायक ग्रन्थ-सूची तथा डा० राका अग्रवाल ने पुस्तक में दिये गये रेखा-चित्र तैयार किये हैं, जिनके लिए मैं उनको धन्यवाद देता हूँ। श्रीरघुनाथ को भी मैं धन्यवाद देता हूं।

डा० श्री भगवान सिंह, इण्डोलोजिकल बुक कार्पोरेशन, नई दिल्ली ने पूर्ण रुचि लेते हुए पुस्तक को यथाशीघ्र प्रकाशित कर विद्वानों को सुलभ कराया इसके लिए मैं उनको धन्यवाद देता हूँ। ग्रन्थ में प्रयुक्त चित्रों के लिए मैं राज्य संग्रहालय, लखनऊ, राजकीय संग्रहालय, मथुरा, भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण एवं राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली का भी समान रूप से आभारी हूँ।

विश्व के विभिन्न संग्रहालयों में संग्रहीत जैन प्रतिमाओं जैसे अथाह और विशाल विषय का अध्ययन एक कठिन कार्य जानते हुए भी मैंने प्रस्तुत पुस्तक में अधिकाधिक सामग्री को संयोजित करने का भरसक प्रयास किया है। इस कार्य में मुझे कहाँ तक सफलता मिल सकी है इसका निर्णय पाठक स्वयं ही कर सकेंगे।

— ब्रजेन्द्र नाथ शर्मा

'लीला भवन',
के एफ ३७, न्यू कवि नगर,
गाजियाबाद-२०१००२

महावीर जयन्ती, १० अप्रेल, १९७९

अध्याय १

जैन-प्रतिमाओं के विकास में नरहड़ की मूर्तियां

भारतवर्ष में सबसे प्राचीन मूर्तियाँ सिन्धघाटी (३००० ई० पू०) से प्राप्त हुई हैं। इन्हीं में कुछ नग्न खड़ी मूर्तियाँ 'कायोत्सर्ग' मुद्रा में भी हैं, जिनकी नग्नता के आधार पर कुछ जैन विद्वानों ने इन्हें जैन-मूर्तियां माना है। परन्तु एक दो नग्न मूर्तियों की प्राप्ति के आधार पर यह कहना कि जैन-धर्म मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा के समय में प्रसृत था, संभवतः ठीक नहीं है। ऋग्वेद-काल की कोई मूर्ति खुदाई में अब तक प्राप्त नहीं हुई है। ऋग्वेद में 'शिश्नदेव' शब्द वर्तमान है, परन्तु इसका अर्थ विवादग्रस्त है।

वास्तव में मुख्य रूप से कलाकृतियों की प्राप्ति मौर्यकाल से होने लगती है। पटना के समीपस्थ लोहनीपुर में एक नग्न धड़ प्राप्त हुआ है, जिसके हाथ कायोत्सर्ग की सी मुद्रा में हैं। इसकी उत्तम मौर्य-कालीन पालिश के आधार पर इसे निश्चित रूप से तीसरी शताब्दी ई० पू० का बताया जाता है। मूर्ति-कला की दृष्टि से यह धड़ असंस्कृत, भारी एवं बेडोल है। जैन विद्वानों ने इसको भी जैन तीर्थङ्कर की प्रतिमा घोषित किया है। जैनियों के २४वें तीर्थङ्कर महावीर के अनुयायियों का (जो आरंभ में निर्गन्थ कहलाते थे) उल्लेख अशोक ने अपने लेख में किया है,[1] और इसी कारण से कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने प्रारंभ में अशोक को जैन धर्म का अनुयायी कहा है। उदयगिरि (उड़ीसा में कटक के निकट) की हाथी गुम्फा में राजा खारवेल (प्रथम शताब्दी ई० पू०) का एक लेख है, जिससे विदित होता है कि अपने शासन के १२वें वर्ष, अपनी विजय के फलस्वरूप, खारवेल कलिंग की 'जिन' मूर्ति को, जिसे नन्दराज उठा ले गया था, पुनः वापस लाया।[2] खण्डगिरि और उदयगिरि की गुफाएं भी प्रारंभिक काल की जैन-मूर्तियों से परिपूर्ण हैं।

---

१. हेमेव बामनेसु आजीविकेसु पि मे कटे...
निगंठेसु पि मे...

—सप्तम स्तम्भ लेख

२. बार समे च वसे...नन्दराज नीतं च का(लिं)गं जिन संनिवेस।

—खारवेल का हाथी गुम्फा लेख

जैन धर्म अपने २४ तीर्थङ्करों में विश्वास करता है, जिन्हें वह 'जिन' 'देव-देव, अथवा 'देवादिदेव' की संज्ञा प्रदान करता है। उसके अनुसार हिन्दू देवता राग, द्वेष एवं आवागमन से मुक्त नहीं हैं। तीर्थङ्कर उनसे मुक्ति पा चुके हैं। उनके लिए 'जिन' शब्द उपयुक्त है। जैन तीर्थङ्करों के साथ उत्कीर्ण हिन्दू-देवताओं की मूर्तियां भी इसी कारण से उनसे हेय चित्रित की गई थीं। इन तीर्थङ्करों में प्रमुख, प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभनाथ तथा अन्तिम तीन नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर हैं। परन्तु इनके साथ अन्य सभी प्रतिमाएं भी संपूर्ण भारत में प्राप्त हैं।

जैन-मूर्तियों का आविर्भाव जैनों के इन्हीं तीर्थङ्करों से हुआ है। हीनयानीय बौद्धधर्म की भांति जैन-प्रतिमाओं के विकास का मूलाधार भी सर्वप्रथम 'प्रतीक' ही था। मथुरा से प्राप्त पाषाण-निर्मित आयाग पट्टों[1] पर चित्रित जिन-प्रतिमाएं इसका प्रबल प्रमाण हैं। किन्हीं-किन्हीं आयाग पट्टों पर उनके स्थापित करने वाले भक्त जनों के नाम भी उत्कीर्ण हैं। प्रमुख रूप से इन पर अष्ट मंगल चिह्न—चार चार की संख्या में—ऊपर नीचे दो समानान्तर पंक्तियों में अंकित हैं। यह अष्ट मंगल मत्स्य, दिव्यमान, श्रीवत्स, रत्न-भाण्ड, त्रिरत्न, कमल, भद्रपीठ या इन्द्रयष्टि और पूर्णकलश है। विकास के प्रथम चरण में इन अष्ट मंगलों के मध्य में स्तूप मिलता है। जैसे-जैसे प्राचीन कलाकारों का मूर्ति-शास्त्रों का ज्ञान बढ़ता गया, वैसे-वैसे आयाग पट्टों के विकास में उपर्युक्त दोनों समानान्तर पंक्तियों के मध्य में स्तूप के स्थान पर तीर्थङ्कर की पद्मासन मुद्रा में स्थित मूर्ति निर्मित होने लगी। इनमें चारों ओर त्रिरत्न भी मुख्य रूप से मिलते हैं जो कि सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन एवं सम्यक् चरित्र के द्योतक हैं। लिपि-विज्ञान के आधार पर अधिकतर आयागपट्ट मथुरा के शक काल के माने जाते हैं।

कुषाण काल के आने पर तीर्थङ्करों की जीवन कथाएं शिला-फलकों पर अंकित होने लगीं। साथ ही साथ उनके पूर्णांग चित्रण भी प्राप्त होते हैं। संपूर्ण जैन-कला के इतिहास में तीर्थङ्करों की केवल दो मुद्राएं—कायोत्सर्ग

---

१. आयाग-पट्ट एक वर्गाकार शिलापट्ट होता है, जो पूजा के काम आता था और जिस पर जैनों के तीर्थङ्कर, स्तूप, स्वस्तिक आदि धार्मिक चिह्न बने रहते हैं। इस प्रकार के आयाग-पट्ट राजकीय संग्रहालय, लखनऊ में तथा राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली तथा भारत के विभिन्न संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। इनकी तिथि ई० प्रथम शताब्दी है।

मुद्रा एवं पद्मासन-मुद्रा मिलती है। प्रथम में प्रतिमा खड़ी रहती है और हाथ सीधे लटके होते हैं। दूसरी ध्यान-मुद्रा है। दोनों ही मुद्राएं जैन धर्म में योग तथा तपस्या के महत्त्व को सूचित करती हैं। सभी तीर्थङ्करों की मुद्राएं समान नहीं हैं। ऋषभनाथ, नेमिनाथ और महावीर की मुद्रा पद्मासन है, क्योंकि इन तीनों ने इसी मुद्रा में कैवल्य प्राप्त किया था। अन्य शेष तीर्थङ्करों की प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में है, क्योंकि उन्होंने उसी में निर्वाण प्राप्त किया था। इस काल की मूर्तियों में 'लाञ्छन' नहीं मिलता। अतः जैन मूर्ति के विकास में केवल पार्श्वनाथ की मूर्ति को छोड़कर, जो सर्प के फणों की छाया में खड़े अथवा बैठे मिलते हैं, अन्य तीर्थङ्करों में अन्तर बताना कठिन है। प्रत्येक तीर्थङ्कर-मूर्ति के वक्षःस्थल पर 'श्रीवत्स' चिह्न मिलेगा। कुषाण काल की नग्न मूर्तियों के देवत्व को दिखाने के लिए उनको विशाल आकार का बनाया गया है। मूर्तियों में प्रायः 'धर्म चक्र' चिह्न भी मिलता है।

गुप्तकाल की प्रत्येक जिन-मूर्ति में प्रतिमा-शास्त्र द्वारा वर्णित मूर्ति के गुण एवं छेनी की चतुरता मिलती है। इस प्रकार गुप्त कालीन प्रतिमाएं एक नवीन परम्परा की जनक हैं। प्रत्येक तीर्थङ्कर-मूर्ति के आधार के मध्य में उस तीर्थङ्कर का लाञ्छन मिलता है,[1] जिससे प्रत्येक तीर्थङ्कर की पहचान होती है। यह लाञ्छन पशु, पक्षी, पुष्प, शंख, नन्द्यावर्त, अर्धचन्द्र आदि-आदि हैं। उदाहरणार्थ राजगिरि के मन्दिर की ऋषभनाथ की मूर्ति में उनका लाञ्छन वृषभ अंकित है। मूर्तियों के दायें यक्ष और बायें यक्षिणी का चित्रण मिलता है। इस काल की प्रतिमाओं में बहुत से प्रमुख हिन्दू देवी-देवताओं का चित्रण भी आधीनस्थ देवों के रूप में है।

उत्तर गुप्तकाल में तीर्थङ्कर मूर्तियां और भी जटिल हो जाती हैं। अब प्रत्येक मूर्ति के साथ अन्य कई वस्तुएं जुड़ जाती हैं। यक्ष न केवल सेवक रहते हैं; वे द्वारपाल भी हैं। इनके कई सिर एवं हाथ हैं। तीर्थङ्करों के रक्षकों के रूप में ये हाथों में वज्र आदि आयुध धारण करते हैं; परन्तु स्वभाव से शांति प्रिय होने के कारण वे फल, फूल, चंवर आदि लिए हैं।[2] अब प्रत्येक

१. जैनों के प्राचीन ग्रन्थ कल्पसूत्र (लगभग ३री शताब्दी ई० पू०) में २४ लाञ्छनों की सूची मिलती है, जो कि २४ तीर्थङ्करों को दिये गए हैं। जैनों की प्रारम्भिक कला में यह लाञ्छन नहीं मिलते और अलोरा (८वीं श० ई०) की कुछ जैन-मूर्तियों में भी प्राप्त नहीं हैं।

२. प्रगृहीतसित्तनिमलवरचामराग्रहस्तोभयपार्श्वस्थविविधमणि...विकृताभरणालङ्कृत-यक्ष-नाग-मिथुनाः।

—देखें: अकलंकदेवकृत तत्त्वार्थराजवार्त्तिक।

तीर्थङ्कर के साथ एक गणधर भी मिलेगा, जैसे मगध नरेश बिम्बसार महावीर के गणधर थे। अतः २४ तीर्थङ्करों के साथ २४ गणधर भी मिलेंगे।

मध्यकाल में 'अष्ट प्रतिहार्य्यों' का भी चित्रण प्रत्येक जिन प्रतिमा के साथ मिलता है, जैसे अशोक (अथवा आम्रवृक्ष) जिसके नीचे बैठकर 'जिन' विशेष ने ज्ञान प्राप्त किया था, दिव्यतरु, आसन, सिंहासन तथा आतपत्र, चामर, भामण्डल, दिव्य दुन्दुभि, सुर पुष्प वृष्टि, एवं दिव्यध्वनि में से एक का प्रदर्शन मिलता है।[1] श्वेताम्बर अपनी मूर्तियों को कुण्डलों, हारों, भुजबन्दों, एवं किरीट मुकुट आदि से सुसज्जित करते हैं जबकि दिगम्बर अपनी मूर्तियों को भूषण हीन एवं नग्न रखते हैं। वराहमिहिर ने 'बृहत्संहिता' में जैन-प्रतिमा की पांच विशेषताओं का उल्लेख किया है—लम्बे लटकते हुए हाथ, श्रीवत्स-चिह्न, प्रशान्त मूर्ति, नग्न शरीर एवं तरुणावस्था।[2]

प्रत्येक पूजा की मूर्ति जितनी सुन्दर होगी, उतनी ही भक्त की उसमें शान्ति तथा भक्ति बढ़ेगी। यह बात कुरूप मूर्ति से उत्पन्न नहीं होगी। अतः सभी ग्रन्थ इस बात का समर्थन करते हैं कि उसका दिव्य रूप अत्यन्त सुन्दर एवं भव्य होना चाहिए।[3] इसके लिए आवश्यक है कि उस पाषाण अथवा धातु की, जिसकी प्रतिमा बननी है, अच्छी तरह परीक्षा की जाए। 'विष्णु धर्मोत्तर में' शिला-परीक्षा का विशद वर्णन है। 'विवेक विलास' से परीक्षण के साथ-साथ यह भी ज्ञात होता है कि विभिन्न शिलालेखों से पाषाण की विशुद्धता जानी जा सकती है। हयशीर्ष पांचरात्र (देखिए हरि भक्त विलास) में भी शिला कर्मकाण्ड परीक्षा के पक्ष और विज्ञान पक्ष पर विस्तार सहित प्रकाश डाला गया है। पत्थर के साथ-साथ इसी प्रकार हम धातु-परीक्षण का भी विवेचन कर पाते हैं।

---

१. अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टि दिव्यध्वनिश्चामरमासनञ्च।
भामण्डलं दुन्दुभिरातपत्रं सत्प्रातिहार्य्याणि जिनेश्वराणाम्॥

—आई० ए०, १९११

२. आजानुलम्बबाहुः श्रीवत्साङ्कप्रशान्तमूर्तिश्च।
दिग्वासास्तरुणो रूपवांश्च कार्योऽर्हतां देवः॥

—अध्याय ५८, श्लोक ४५

३. भावरूपानुविद्धांगं कारयेद् बिम्बमर्हतः। वास्तुसार और प्रतिष्ठासार संग्रह...

(Mss. No. 68. Jaina Collection, Jñāna Mandir, Baroda)

जैन-प्रतिमाओं के विकास के पश्चात् अब हम राजस्थान के प्राचीन एव पुनीत तीर्थ नरहड़ से प्राप्त उन प्रसिद्ध प्रतिमाओं पर आते हैं जिन्हें विद्वानों ने विभिन्न सम्प्रदायों से संबन्धित किया है। प्राचीन भग्नावशेषों, शिलालेखों एवं जिनदत्त सूरि (सम्वत् ११२६-१२११) की प्रसिद्ध पुस्तक 'खरतरगच्छ-बृहद्-गुर्वावलि' से ज्ञात होता है कि नरहड़ एक वैभवशाली नगर रहा है। उस समय के समृद्धिशाली एवं प्रमुख नगरों में इसकी गणना थी। नरहड़ में अन्य धर्मों के साथ-साथ जैन धर्म का भी प्राबल्य था।

प्रो० पतराम गौड़ के अनुसार 'नरहड़ से प्राप्त ये मूर्तियाँ कृष्ण और बलराम की हैं।'[1] किन्तु क्या यह वास्तव में ठीक है ? (चित्र १०, अ व ब)। पौराणिक गाथाओं से हमें ज्ञात है कि कृष्ण और बलराम सौतेले भाई थे। कृष्ण छोटे, बलराम बड़े थे। कृष्ण और बलराम की जीवन गाथा 'हरिवंश' में पूर्ण रूप से वर्णित है। भागवतादि अनेक पुराणों तथा साहित्यिक ग्रन्थों में भी कृष्ण कथा वर्तमान है। देवगढ़ की एक मूर्ति में कृष्ण और बलराम नन्द और यशोदा की गोद में प्रदर्शित हैं। कृष्ण की पूजा आभीर जाति में विशेषतः प्रचलित थी। कृष्ण जन्माष्टमी का एक बहुत प्राचीन चित्रित शिलाखण्ड जो (२ री या ३ री ई० शताब्दी का है) मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है। 'मत्स्य पुराण' में श्रीकृष्ण की मुद्रा का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

'कृष्णावतारे तु गदा वामहस्ते प्रशस्यते।'

—अ० २५८, श्लोक १०

परन्तु इन नरहड़ीय प्रतिमाओं में गदा का ही नहीं अन्य आयुधों का भी पूर्ण अभाव है। कृष्ण की अनेक प्रतिमायें भारत के विभिन्न भागों में मिलती हैं। जैसे गोवर्धनधारी के रूप में, रुक्मिणी और सत्यभामा के साथ, गोपियों के साथ, कालियदमन के रूप में। राजशाही से कृष्ण की एक विश्वरूपीय मूर्ति भी प्राप्त हुई है। भगवान कृष्ण की कायोत्सर्ग मुद्रा में स्थिति कुछ विलक्षण वस्तु है। हमें कहीं भी यह उल्लेख नहीं मिलता कि कृष्ण ने इस प्रकार तप किया था और न किसी प्रतिमा शास्त्र में श्रीकृष्ण की ऐसी मूर्ति का विधान है।

दूसरी मूर्ति में जिसे पतराम जी ने बलराम माना है, वे पुराणों द्वारा शेषनाग के अवतार बताए गये हैं। भागवत के अनुसार यह १८वें अवतार हैं।

---

१. देखिए—प्रो० पतराम गौड़ का विस्तृत लेख—'नरहड़ में प्राप्त दो कला-कृतियाँ,—*Birla College Magazine*, XXX, १९६०-६१, पृ० ७-१७.

वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में बलराम की मूर्ति का वर्णन करते हुए लिखा है : 'बलदेव हाथ में हल लिए प्रदर्शित किए जाने चाहिएँ, उनके गोल एवं घूमते नेत्र उनकी मदमत्ता के सूचक हों, वे केवल एक कुण्डल पहिने हों और उनका शरीर शंख, चन्द्रमा अथवा एक (श्वेत) कमल की भाँति सफेद हो ।[1]

महाभारत में भी बलदेव के लिए 'क्षीव' अर्थात् मदमत्त बताया गया है । बाद के प्रतिमा-संबन्धी ग्रन्थों में बलराम की दो या चार हाथ वाली मूर्तियों का वर्णन है जिसमें उनके सिर पर सर्पफण तथा हाथ में हल का स्पष्ट वर्णन है। बलराम की एक बहुत प्राचीन मूर्ति मथुरा से प्राप्त हुई, अब राज्य संग्रहालय, लखनऊ में सुरक्षित है । इस मूर्ति में बलराम अपने चिह्न हल एवं मूसल के साथ दिखाए गए हैं । उनके सिर पर एक पांच फण वाला नाग छाया कर रहा है । छोटी धोती, कानों में कुण्डल, गले का मुक्ताहार तथा विशाल साफा भी दर्शनीय है । मूर्ति का दायां पैर प्रारम्भिक यक्ष मूर्तियों की भाँति घुटनों पर थोड़ा झुका है । इस प्रतिमा के बारे में डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है कि यह मूर्ति दूसरी शताब्दी ईसवी पूर्व के बाद की नहीं हो सकती और इसको सम्पूर्ण भारतीय प्रतिमा विज्ञान के क्षेत्र में सबसे प्रारम्भिक मूर्ति मानना चाहिए ।[2] नरहड़ की वह मूर्ति जिसे श्री पतराम जी ने बलराम की अत्यन्त प्राचीन मूर्ति माना है ऊपर वर्णित बलराम की मूर्ति से बिल्कुल नहीं मिलती । केवल यही नहीं वरन् ग्वालियर के समीप तुमेन से उपलब्ध उस बलराम की मूर्ति से भी यह पूर्ण रूप से भिन्न है जो अब ग्वालियर के संग्रहालय में सुरक्षित है ।

वराहमिहिर ने बलराम के कानों में 'कुण्डल' का होना बताया है। परन्तु इन नरहड़ की मूर्तियों में किसी प्रकार के कुण्डलों का होना प्रमाणित नहीं होता : सत्य तो यह है कि यह जैन तीर्थङ्करों की मूर्तियां हैं । इनके कान लम्बे हैं जो जैन-प्रतिमा-शास्त्र में उनके सौन्दर्य एवं महानता के द्योतक हैं ।

हल और मूसल जो बलदेव के प्रमुख प्रहारायुध हैं सदैव उनके हाथों में सुशोभित मिलेंगे । हल के आधार पर ही बलराम अथवा बलदेव को

---

१. बलदेवो हलपाणिर्मदविभ्रमलोचनश्च कर्त्तव्यः ।
बिभ्रत्कुण्डलमेकं शंखेन्दुमृणालगौरतनुः ।। अ० ५७, श्लोक ३६

२. देखिए—जे० आई० एस० ओ० ए०, १९३७, पृ० १२६,
चित्र XIV, 4

हलचौरी, लांगली तथा हलधर आदि विभिन्न नामों से विभूषित किया जाता है। ये दोनों ही आयुध नरहड़ की इन मूर्तियों में प्राप्त नहीं हैं। बलराम की आंखें मदमत्त होती हैं तथा हाथ में पानपात्र भी हो सकता है। परन्तु इसके पूर्ण बिपरीत नरहड़ की मूर्तियों की आंखों में तीर्थङ्करोचित करुणा और सौम्यता की झलक मिलती है तथा हाथ खाली लटके हैं। केवल यही नहीं, जहाँ वराहमिहिर ने बलराम की मूर्ति को शंख, चन्द्रमा अथवा (सफेद) कमल की तरह श्वेत बताया है उसके पूर्ण विपरीत ये मूर्तियां श्याम वर्ण की हैं।

हम इन दोनों मूर्तियों को बौद्ध-मूर्तियां भी नहीं मान सकते हैं, क्योंकि प्रत्येक बुद्ध मूर्ति में महापुरुषों के उन समस्त ३२ लक्षणों का होना आवश्यक है जो कि 'दीर्घ निकाय' में वर्णित हैं। वराहमिहिर की 'बृहत्संहिता' में भी बुद्धमूर्ति के बारे में यह वर्णन मिलता है कि 'बुद्ध के हाथ की हथेलियां और पैरों के तलवों में कमल अंकित होने चाहिएँ, वह आकार में सौम्य हो तथा बाल छोटे होने चाहिएं, कमलासन पर विराजमान हो तथा समस्त संसार के जनक हो :

पद्माङ्कितकरचरणः प्रसन्नमूर्त्तिः सुनीच केशश्च।
पद्मासनोपविष्टः पितेव जगतो भवति बुद्धः॥

अध्याय ५७, श्लोक ४४

अग्निपुराण में बताये गए लक्षणों से यह मूर्तियां पूर्ण रूप से भिन्न हैं। दशावतार पट्टों में खड़ी बुद्धमूर्ति का चित्रण मिलता है, जिसमें उनका दाहिना हाथ अभय मुद्रा में है।

कुछ समानताओं के कारण जैन और बौद्ध मूर्तियों की पहचान में भ्रान्ति हो सकती है। पद्मासन, लम्बे कान, कर्णकुण्डल[1] सौम्य रूप दोनों में समान हैं। परन्तु तीर्थङ्कर-प्रतिमा अपने अलंकारों की सजावट की रीति से अलग पहिचानी जा सकती है। इन अलंकारों में स्वस्तिक, दर्पण, स्तूप, वेत्रासन, दो मत्स्य, पुष्पमाला और पुस्तक-चिह्न उपलब्ध होते हैं। इसके विपरीत बुद्ध-प्रतिमा में उनकी उपलब्धि नहीं होती। जहाँ तक उष्णीष का प्रश्न है वह जैन तथा बौद्ध मूर्ति दोनों में ही मिलता है। परन्तु तब भी उनकी सजावट एवं बनावट में कला पारखी को महान् अन्तर दिखाई देगा। बुद्ध की खड़ी प्रतिमाओं में (जिस प्रकार की मथुरा संग्रहालय तथा राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली) में हैं

---

१. भगवान बुद्ध तथा लगभग सभी जैन तीर्थङ्कर राजकुमार थे, अतः उनके राजकीय वस्त्राभूषणों में कुण्डलों का होना भी अनिवार्य रहा होगा।

हमें उनके शरीर पर एक अत्यन्त सुन्दर एवं पारदर्शक वस्त्र मिलेगा जो न केवल मथुरा की बौद्ध मूर्तिकला में ही वरन् गांधार की कुछ खड़ी प्रतिमाओं में भी मिलता है। परन्तु नरहड़ की इन दोनों मूर्तियों में इस प्रकार का कोई वस्त्र नहीं है। इनमें केवल श्वेतांबर जैन-मूर्तियों की ही कटि-काछनी मिलती है (जो कि जोगिन-मठ रोहतक की पार्श्वनाथ की प्रतिमा में भी मिलती है)।

केवल ओप और चमक-दमक के आधार पर इन मूर्तियों की तिथि २२०-२२१ ई० पू० का बताना (जैसा कि श्री पतराम गौड़ जी का मत है) कुछ उचित प्रतीत नहीं होता और न ही उन पर यह 'वज्रलेप' है जिसका वर्णन कौटिल्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' में किया है और जो अशोक कालीन अनेक पत्थर की कृतियों पर वर्तमान है। चमक-दमक और 'वज्रलेप' दो पूर्ण रूप से भिन्न वस्तुएं हैं। नरहड़ की प्रतिमाओं की ओप कसौटी पत्थर के गुणों के कारण है जिसकी वह निर्मित हैं।

इस समस्त आलोचन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि ये दोनों नरहड़ीय प्रतिमाएं बिना किसी संकोच के जैन श्वेतांबर संप्रदाय की प्रतिमाएं मानी जा सकती हैं।[1] दाहिने ओर की प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में जैनिनों के बीसवें तीर्थङ्कर मुनिसुब्रत की है। इनका लाञ्छन 'कच्छप' मूर्ति की पीठिका पर स्पष्ट रूप से अंकित है। दूसरी अर्थात् बांई ओर की प्रतिमा भी जो कि प्रथम मूर्ति की ही भांति कायोत्सर्ग मुद्रा में है, जैनियों के बाइसवें तीर्थङ्कर नेमिनाथ की है, जिनका लाञ्छन 'शंख' है। प्रतिमाओं के उष्णीष (घुंघराले बालों) का चित्रण अत्यन्त अनूठे ढंग से किया गया है। मुख का तेज एवं प्रशान्त भाव दर्शनीय है। केवल यही नहीं, इनकी आध्यात्मिक दीप्ति एवं शान्ति की अभिव्यक्ति भी बड़ी सुकरता से दिखाई गई है। इन दोनों प्रतिमाओं के दोनों ओर चंवरधारी पार्श्वचर अंकित हैं तथा उपसिकायें बन्दना कर रही हैं। 'श्रीवत्स' की रचना की दृष्टि से भी यह विलक्षण औरु सौन्दर्यशाली श्याम वर्ण की मूर्तियां १२वीं शती ई० की बनी प्रतीत होती हैं।[2] प्रत्येक

१. यह दोनों तीर्थङ्कर प्रतिमायें नग्न नहीं हैं: अतः मूर्तियां दिगम्बर नहीं कही जा सकती हैं। इन्होंने नीचे के आधे भाग में धोती धारण कर रखी है। अतः निश्चित रूप से मूर्तियां श्वेताम्बर जैन-सम्प्रदाय की प्रमाणित होती हैं।

२. चौहान सम्राटों की विस्तृत सीमाओं से स्पष्ट है कि नरहड़ चौहान साम्राज्य का अंग रहा होगा और चौहान काल के उपरान्त भी इसकी स्मृद्धि के बारे में किसी प्रकार की शंका नहीं की जा सकती है।

मूर्ति के श्री-वत्स में दो पंखुड़ियां लंबी और अन्य दो छोटी हैं । केवल इतना ही नहीं वरन् उष्णीष की बनावट, लंबायमान कर्ण तथा गले पर की रेखाएं, संक्षेपतः संपूर्ण आकार-प्रकार यह सिद्ध करता है कि यह तीर्थङ्कर की आकृति हैं । मूर्तियों के वक्षस्थल तथा कन्धों की सुन्दरता एवं सुडौलता यूनानी प्रभाव से किसी प्रकार से प्रभावित न होकर भारतीय कला से ही प्रभावित हैं ।

जिन देवालयों में यह मूर्तियां स्थापित रही होंगी, वह निश्चित ही गौरव शाली रहे होंगे । 'खरतरगच्छ-वृहद्गुर्वावलि' से ज्ञात होता है कि अभोहर, हांसी, मरोठ आदि स्थलों पर जैनों के श्वेतांबर संप्रदाय की अच्छी प्रतिष्ठा थी । 'खरतरगच्छ-पट्टावली' के अनुसार नरभट या नरहड़ में जैनों के २३वें तीर्थङ्कर श्री पार्श्वनाथ का मन्दिर था । संभव है कि अन्य मंदिर भी रहे होंगे जिनमें यह दोनों मूर्तियां स्थापित हों । जिनदेवसूरि ने स्वयं ही श्री पार्श्वनाथ की वहाँ मूर्ति स्थापित की थी । नरहड़ की यह दोनों श्यामवर्णी श्वेतांबर मूर्तियां भी यह सिद्ध करती हैं कि उस समय की मूर्ति-कला अपनी चरम सीमा पर रही होगी । नरहड़ की नेमिनाथ की ये जैन मूर्तियां केवल राजस्थान की ही नहीं, भारत की भी निधि हैं । भारत की महेत (गोंडा) की ऋषभनाथ मूर्ति, देवगढ़ की अजितनाथ की मूर्ति, फैजाबाद संग्रहालय की शान्तिनाथ, ग्वालियर की नेमिनाथ, जोगिनमठ (रोहतक) की पार्श्वनाथ और लखनऊ के राज्य संग्रहालय की महावीर आदि की प्रमुख मूर्तियों में उन मूर्तियों का भी विशिष्ट स्थान है ।

अध्याय २

सरस्वती-प्रतिमाओं के विकास में पल्लू की जैन सरस्वती-प्रतिमाएं

सरस्वती को जो विद्या, विज्ञान तथा समस्त कलाओं की देवी है, न केवल हिन्दू धर्म में ही वरन् बौद्ध और जैन-धर्म में भी एक अत्यन्त उच्च स्थान प्राप्त है। ऋग्वेद-काल में सरस्वती एक प्रमुख तथा पवित्र सरिता मानी जाती थी और बाद में यह सरिताओं की देवी मानी जाने लगी।[1] ऋग्वेद के एक मन्त्र में उसको माताओं, सरिताओं तथा देवियों में सबसे प्रमुख स्थान दिया गया है और इसी से संबन्धित यज्ञों में जो आहुतियां दी जाती थीं, उनमें उसका एक विशेष भाग होता था। केवल यही नहीं, सरस्वती को ऋग्वेद के दसवें मंडल में शक्ति का वास्तविक रूप माना गया है तथा उसे विभिन्न नामों से सुशोभित भी किया है जिनमें प्रमुख नाम 'वाग्देवी' है। वैदिक साहित्य में ही सरस्वती को दो अन्य देवियों इडा और भारती से भी संबंधित बताया गया है। टीकाकारों ने अपनी टीका लिखते समय इन तीन देवियों को एक ही देवी (वाक् देवी) के तीन रूप बताया है। एक कथा के अनुसार एक बार गन्धर्व और देवताओं ने इसी वाग्देवी को प्रसन्न कर तथा उसका कृपा-पात्र बनने के लिए उसकी प्रशंसा में गीत गाए तथा वाद्य-वादन किया था। इसी प्रकार की अन्य कथाओं से विदित हो जाएगा कि कैसे कालान्तर में सरस्वती विद्या तथा समस्त कलाओं की अधिष्ठात्री के रूप में पूजी जाने लगी। न केवल भारत ही में वरन् भारत के पड़ोसी तथा अन्य पूर्वी देशों जैसे तिब्बत, जावा और जापान आदि में भी उसकी विभिन्न कालों से संबंधित

---

१. पौराणिक गाथाओं के अनुसार सरस्वती राजस्थान की एक प्राचीन सरिता का नाम है जो कि अब पूर्णतया यहाँ के रेत से भर चुकी है, परन्तु जिसके तट पर वैदिक आर्यों ने वैदिक मंत्रों की रचना की थी। यही सरस्वती सरिता कालान्तर में विद्या की देवी के रूप में परिवर्तित हो गई। इसी बात को प्रदर्शित करने के लिए अलौरा में उन्हें गंगा एवं यमुना के साथ खड़ा प्रदर्शित किया गया है।

पाषाण-निर्मित प्रतिमाएं भी प्राप्त हुई हैं। बौद्ध-साहित्य में[1] सरस्वती को विभिन्न नामों से सुशोभित किया गया है, जिनमें महासरस्वती, आर्यवज्र-सरस्वती, वज्रवीणा-सरस्वती तथा वज्र-शारदा आदि प्रमुख नाम हैं। बौद्धों में तान्त्रिक मत के साथ सरस्वती को और भी महत्ता मिली तथा इनके रूप एवं आकार में भी सुधार हुए। उनके अनुसार सरस्वती भी मञ्जुश्री और प्रज्ञा-पारमिता की भाँति विद्या, स्मरण-शक्ति तथा ज्ञान प्रदान करती है। इसी प्रकार जैनियों ने भी उन्हें अनेक नामों से सुशोभित कर अपने श्रुत देवताओं तथा वाग्देवियों के 'देवसमूह' में सबसे उच्च स्थान प्रदान किया है।

सरस्वती सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा की पुत्री के रूप में उनके मस्तिष्क से उत्पन्न (मानस-कन्या) मानी जाती हैं। परन्तु दूसरी ओर उनकी पत्नी अथवा शक्ति भी हैं[2] और इस कारण ब्रह्मा की ही भाँति उनका वाहन भी हंस ही है।[3] सरस्वती का वर्ण श्वेत है तथा उनके वस्त्र, वाहन (हंस) तथा उससे संबन्धित प्रत्येक वस्तु भी श्वेत ही होनी चाहिए, जोकि उनकी पवित्रता की द्योतक है। सरस्वती के चार हाथ हैं: उनका एक दाहिना हाथ अभयमुद्रा में

---

१. इससे सम्बन्धित मेरा लेख देखें 'बौद्ध साहित्य की रूपरेखा' 'मधुमती', उदयपुर, जनवरी, १९६२, पृ० ६२।

२. काञ्चीपुरम् के कैलासनाथ मंदिर में ब्रह्मा अपनी पत्नी सरस्वती के साथ बैठे प्रदर्शित हैं।

दे० Rea, *Pallava Architecture*, चित्र XXXVI, 2

महावन (मथुरा) से ब्रह्मा की सरस्वती के साथ बैठी प्रतिमा (१०वीं शती) मिली है जिसमें वह बायें हाथ में एक दर्पण लिए है, तथा उनका दाहिना हाथ ब्रह्मा के गले में है। यह प्रतिमा अब मथुरा संग्रहालय में है।

(दे० J. Ph. Vogel, *Catalogue of Archaeolagical Museum Mathura*, १९१०, पृ० ९८-९९).

एक अन्य सरस्वती की ब्रह्मा के साथ बैठी प्रतिमा चेदि (१२वीं श०) की मध्य प्रदेश से मिली है, जो अब राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में सुरक्षित है।

३. सरस्वती को हंस के अतिरिक्त मयूर पर बैठा अथवा खुले कमल पर खड़ा भी प्रतिमाओं में पायेंगे।

(cf. K. de B. Corrington, *Ancient India*, १९२६, चित्र XLVII.

विष्णुधर्मोत्तर के अनुसार भी सरस्वती का पद्मासन चित्र है।

होगा तथा दूसरे दाहिने हाथ में अक्षमाला होगी; तथा बाएं हाथों में क्रमशः पुस्तक तथा एक श्वेत पुण्डरीक होगा। शरीर पर यज्ञोपवीत तथा शीश पर जटामुकुट[1] तथा विभिन्न अंगों पर आभूषण भी होंगे। विष्णुधर्मोत्तर के अनुसार सरस्वती की खड़ी प्रतिमा श्वेतकमल पर समभंग-मुद्रा में होनी चाहिए तथा उसके दाहिने हाथ में व्याख्यान मुद्रा के अतिरिक्त बांस के नाल की बनी वीणा तथा बाएं हाथ में कमल के स्थान पर कमण्डलु होना चाहिए। मार्कण्डेय पुराण के देवीमाहात्म्य से विदित होता है कि सरस्वती के हाथों में एक अंकुश, वीणा, अक्षमाला तथा एक पुस्तक होनी चाहिए। दक्षिण भारत की होयसल प्रतिमाओं में उसे इसी रूप में चित्रित किया गया है। पांचरात्रागम के अनुसार सरस्वती के तीन नेत्र[2] तथा चार हाथ बताए हैं जिनमें वह क्रमशः दंड, पुस्तक, अक्षमाला तथा कमण्डलु धारण करती है। सरस्वती जब शारदा देवी के रूप में प्रदर्शित की जाए (जैसे कि वह मैसूर के शृंगेरी मठ में पूजी जाती है) चौसठ कलाओं (चतुष्षष्ठिकला) की अध्यक्षा के रूप में, उस समय उसके पांच मुख तथा दस भुजाएं होनी चाहिएं जिनमें वह विविध आयुध धारण किए हो। परन्तु साधारणतया सरस्वती के विभिन्न रूपों तथा प्रकारों का वर्णन जो उपयुक्त ग्रन्थों में प्राप्त है, के अतिरिक्त सामान्यतः जो वर्णन विष्णुधर्मोत्तर, अंशुभेदागम, पूर्णकर्णागम तथा रूपमण्डन आदि में है, के अनुसार सरस्वती, 'चतुर्हस्ता, श्वेतपद्मासना, शुक्लवर्णा, श्वेताम्बरा, जटामुकुट-संयुक्ता, रत्नकुण्डलमण्डिता' निदर्श्य है, तथा उसके चार हाथों में पुण्डरीक, अक्षमाला, पुस्तक, वीणा[3] या कमण्डलु आदि होने चाहिएं।

सरस्वती की सबसे प्राचीन पाषाणनिर्मित प्रतिमा मथुरा के प्रसिद्ध कंकाली टीले से मिली है जो अब लखनऊ के राज्य संग्रहालय में सुरक्षित है। यह खण्डित प्रतिमा, अपने बायें हाथ में धागे से बंधी ताड़पत्रीय पुस्तक

---

१. स्कन्द पुराण की सूत-संहिता में भी उनके केश जटाजूट रूप में बताये गये हैं, और उनके सिर पर अर्धचन्द्र भी लगा होता है।

२. स्कन्द पुराण की सूत-संहिता में भी उनके तीन नेत्रों का वर्णन है।

३. सरस्वती विद्या की देवी होने के कारण अपने हाथों में अन्य आयुधों के साथ पुस्तक (शास्त्र प्रतीक) तथा वीणा (कला संगीत प्रतीक) लिये हुई हैं। इसके समर्थन में मत्स्य पुराण में निम्नलिखित श्लोक है :

'वेदाः शास्त्राणि सर्वाणि नृत्यगीतादिकं च यत्।
न विहीनं त्वया देवि तथा मे सन्तु सिद्धयः॥'

लिए है तथा इसका अक्षमाला लिए दाहिना हाथ टूटा है। दोनों ओर एक एक सेवक खड़ा है, दाहिनी ओर का सेवक हाथ जोड़े खड़ा है (अंजलि मुद्रा) तथा बांई ओर के सेवक के हाथ में एक घट है। चरण चौकी पर छः पंक्तियों का कुषाणकालीन एक लेख अंकित है जिससे विदित होता है कि गोव नामक एक व्यापारी ने प्रतिमा को प्रतिष्ठापित किया था।[१] इस द्वितीय शती की प्रतिमा को विद्वानों ने जैन सरस्वती की प्रतिमा माना है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जैन सरस्वती प्रतिमा का प्रादुर्भाव ईसा की द्वितीय शताब्दी में हो चुका था।

सरस्वती का प्रतीक के रूप में चित्रण भीटा से प्राप्त एक गोल मुहर (Seal) पर होता है,[२] जिसके आधार पर एक भद्र घट का चित्र अंकित है (नं० १८) और उसके नीचे गुप्तकाल की लिपि में 'सरस्वती' लिखा है जिससे विदित होता है कि यहाँ पर इस घट द्वारा देवी चित्रित की गई है। इसका समय लगभग ४-५वीं श० है।

खिटचिंग (मयूरभंज, उड़ीसा) से वीणा बजाती सात फण वाली नागिनी का चित्र मिला है जिसने करण्डमुकुट तथा विभिन्न आभूषण पहन रखे हैं। इसे डा० जे० एन० बैनर्जी ने सरस्वती का ही रूप माना है।[3]

खरोद (मध्य प्रदेश) से सरस्वती की पाषाण प्रतिमा (१०वीं श० ई०) की प्राप्ति हुई है जो खिले कमल पर खड़ी है। इसका दाहिना हाथ सिर के पीछे तथा बायां सामने ऊपर को उठा हैं (दोनों ही हाथ खण्डित हैं)। देवी के चरणों के दोनों ओर दो बौने खड़े हैं जिसमें सीधी तरफ वाला वीणा बजा रहा है। प्रतिमा विभिन्न वस्त्राभूषणों से सुसज्जित है।

ब्रिटिश म्यूजियम, लन्दन में मध्यकालीन कुछ अत्यन्त सुन्दर सरस्वती की प्रतिमाएं सुरक्षित हैं जिनका यहाँ संक्षेप में विवेचन आवश्यक है। इनमें से प्रथम एक अपूर्ण वीणा-वादन करती सरस्वती की प्रतिमा है जिसका सबसे पूर्ण भाग उसके वाहन कलहंस का है। यह चतुर्हस्ता देवी अपने ऊपर के दायें हाथ में अक्षमाला तथा बायें हाथ में पुस्तक तथा नीचे के दोनों हाथों में वीणा

---

१. V. A. Smith, *The Jaina Stūpa and other Antiquities of Mathura*, पृ० ५६-७, चित्र XCIX.

२. *Eastern Art*, I, पृ० ५०, चित्र XVIII.

३. *Development of Hindu Iconography*, पृ० ७८, चित्र XX, 2

लिए बजा रही है। द्वितीय प्रतिमा त्रिभंग मुद्रा में श्वेत संगमरमर की है जो कि सम्भवतः राजपूताने से संबंधित है। यद्यपि देवी चतुर्हस्ता है परन्तु उसके दोनों ही दाहिने हाथ टूट चुके हैं तथा यह ऊपर वाले बायें हाथ में अक्षमाला तथा नीचे वाले में पुस्तक लिए है। चरणों के दोनों ओर दो सेविकायें हैं तथा एक पुरुष और एक स्त्री, उपासक तथा उपासिका बैठे हैं। प्रतिमा की पीठ के ऊपरी भाग पर पांच ध्यानमुद्रा में बैठे तीर्थङ्करों से ज्ञात होता है कि यह जैन सरस्वती की प्रतिमा है। इस पर ११-१२ वीं शती० ई० का नागरी में लेख भी खुदा है। तृतीय वाग्देवी की प्रतिमा जो सम्भवतः इस समूह में सबसे प्रमुख है भूरे बलुआ पत्थर की है। आधार पर खुदे इसके लेख से ज्ञात होता है कि १०३४ ई० में इस वाग्देवी (सरस्वती) की प्रतिमा की प्रतिष्ठा परमार राजा भोज (१०१८-१०६० ई०) ने अपने नगर धार अथवा धारा में की थी।[1] इस प्रतिमा द्वारा पहिने मुकुट, हार, भुजबन्ध, कंगन, पादजालक तथा वस्त्र पूर्ण रूप से ऊपर वर्णित जैन सरस्वती प्रतिमा से मिलते हैं। केवल इतना ही नहीं, यह प्रतिमा भी ऊपर वर्णित मूर्ति की भाँति त्रिभंग मुद्रा में खड़ी है जिसका शीश थोड़ा बाएं ओर तथा बाकी धड़ दाएं को झुका हुआ है जिससे विदित होता है कि दोनों प्रतिमाओं का निर्माण-स्थल एक ही रहा होगा।

एक अन्य सरस्वती-प्रतिमा सुन्दरबन (बंगाल) से प्राप्त हुई है जो अब कलकत्ता में आसुतोष संग्रहालय में है। इसकी तिथि १२वीं श० ई० है। यह एक पाषाण-पट पर उभरी हुई अंकित है। इसमें देवी वीणा-वादन करने की मुद्रा में खड़ी है। इन्होंने अन्य वस्त्राभूषणों के साथ कटिसूत्र, तथा भुजबन्ध आदि पहन रखे हैं। इसके पैरों का नीचे का भाग खण्डित है।

उत्तरी भारत की भाँति दक्षिण भारत में भी सरस्वती-प्रतिमा विशेष रूप से निर्मित की जाती थी जो आज भी वहाँ के मन्दिरों के अन्दर-बाहर तथा विभिन्न-संग्रहालयों में देखी जा सकती है। इस सम्बन्ध में बम्बई के प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम में रखी कुछ सरस्वती प्रतिमाएं (जो निश्चित रूप से मध्यकाल की हैं) विशेष प्रसिद्ध हैं। नवीं-दसवीं शताब्दी आने पर पाषाण के साथ-साथ धातु की प्रतिमाएं भी निर्मित होने लगीं। इनके मुख्य केन्द्र नालन्दा (पटना, बिहार) तथा दक्षिण भारत थे जहाँ से कई इस प्रकार की प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं। इस संबन्ध में विशेष रूप से उल्लेखनीय नालन्दा

---

१. रूपम्, जनवरी १९२४, पृ० १-२

(पटना) से प्राप्त कमलासन पर ललितासन मुद्रा में बैठी (एक पैर मुड़ा है तथा दूसरा लटक रहा है) में कांस्य-निर्मित (९वीं श० ई०) सरस्वती प्रतिमा है जो बीणा बजा रही है। प्रतिमा के पीछे प्रभावली है। तथा उनके दोनों ओर दो बैठी मानव-प्रतिमायें हैं जिनमें एक बांसुरी तथा दूसरा मजीरा बजा रहा है। दायें दानकर्ता की खण्डित प्रतिमा अंकित है। सरस्वती प्रतिमाओं की उत्पत्ति, विकास तथा इससे संबन्धित कुछ सरस्वती-प्रतिमाओं का संक्षेप में वर्णन करने के उपरान्त अब हम पल्लू (बीकानेर) की प्रसिद्ध जैन सरस्वती-प्रतिमाओं का वर्णन करेंगे।[1]

सन् १९१९ में प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता डॉ० एल०पी० टेस्सिटोरी को बीकानेर की तहसील नोहर के दक्षिण-पश्चिम में पल्लू नामक ग्राम की खुदाई में दो अत्यन्त सुन्दर जैन सरस्वती-प्रतिमायें प्राप्त हुई थीं। ये दोनों ही प्रतिमायें सफेद संगमरमर पत्थर की निर्मित हैं। इनमें से प्रथम तथा प्रमुख प्रतिमा सन् १९४८ में लन्दन के रायल एकादमी की भारत कला प्रदर्शनी में इंग्लैंड गई थी, अब वह राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में सुरक्षित है।[2] इसी से मिलती द्वितीय प्रतिमा बीकानेर संग्रहालय में रखी हुई है। ये दोनों प्रतिमाएं लगभग १२वीं श० ई० की हैं। यहाँ हमारा विशेष रूप से राष्ट्रीय संग्रहालय में रखी प्रतिमा से ही संबंध है (चित्र १९)।

प्रस्तुत चतुर्हस्ता जैन सरस्वती की प्रतिमा त्रिभंग मुद्रा में पद्मासन पर खड़ी है,[3] जो सामने आधार से नालयुक्त निकला हुआ है। इसके दोनों ओर दो डंठल हैं, जिनमें दायें कमलासन पर एक अति लघु मानवीय तथा बायें कमलासन पर बैठे हंस के चित्र अंकित हैं। देवी का बायां पैर सीधा तथा तना हुआ है जिस पर शरीर का सारा भार है तथा दाहिना पैर कुछ टेढ़ा तथा ढीला प्रतीत होता है। अपने ऊपर वाले दाहिने हाथ में वह नालयुक्त पुण्डरीक (जिस पर षोडशदल निर्मित हैं) लिए है, तथा बायें हाथ में लगभग पौने

---

१. वैदिक सरस्वती और जैन सरस्वती-प्रतिमाओं में प्रमुख अन्तर यह है कि वैदिक सरस्वती स्वयं अपने हाथ में वीणा रखती है जबकि जैन सरस्वती प्रतिमाओं में उपप्रतिमाएं वीणा लिए होती हैं।

२. दे० *Album of Exhibition of Indian Art*, नई दिल्ली, १९४८, चित्र १८.

३. विष्णुधर्मोत्तर में भी सरस्वती का श्वेतपद्मासन पर खड़ा होना वर्णित है।

दस इंच लम्बी तथा सवा इंच चौड़ी एक ताड़पत्रीय पुस्तक है, जो काष्ठ फलक लगाकर तीन स्थानों पर तीन फेटों में बंधी हुई है जिसके झालरयुक्त अन्तिम भाग स्पष्ट दिखाई देते हैं। इसी हाथ की सबसे अन्तिम अंगुलि खण्डित हो गई है। देवी का नीचे का दाहिना हाथ जो वरद मुद्रा में है, एक खण्डित अक्षमाला लिए है जिसका अब केवल ऊपर का भाग ही स्पष्ट है तथा नीचे वाले बाय हाथ में पुष्प-पंक्तियों से सुसज्जित एक कमण्डलु धारण किए है, जिसकी नलकी का अग्रभाग टूटा हुआ है। देवी के हाथों की अंगुलियां अत्यन्त कलापूर्ण तथा सुन्दर हैं तथा हथेलियों पर पुष्प तथा सामुद्रिक रेखायें भी अंकित हैं।

सरस्वती के शीश पर रत्न जटित मुकुट शोभायमान है तथा जूड़ा बाईं ओर बंधा है। नेत्र विशाल हैं जिनमें नेत्रबिन्दु पूर्णरूप से स्पष्ट हैं। नासिका सीधी तथा सुन्दर है। उसका मुख तथा सम्पूर्ण चेहरा अत्यन्त भावपूर्ण प्रतीत होते हैं। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण प्रतिमा विभिन्न सुन्दर-सुन्दर आभूषणों से अलंकृत है। गले में देवी छोटे-बड़े कई हार तथा फलकहार पहने हैं। हाथों में भुजबन्ध, कंगन, चूड़ियां, अंगूठी पहिने है। देवी कानों में मोतियों से निर्मित झूमका पहने है[1] तथा ऊपरी भाग में मणियुक्त भंवरिया धारण किए हैं, यद्यपि दाहिने कान का आभूषण टूट गया है। शरीर का ऊपरी भाग नग्न तथा निचले भाग में साड़ी बंधी है, जिसका फूलदार किनारा शरीर में धारण की हुई सुन्दर वनमाला के नीचे स्पष्ट है तथा जिसके फूल उसके दोनों पैरों के मध्य एकत्रित हुए प्रतीत होते हैं। साड़ी के ऊपर कमर में ऊरदम अथवा कीर्तिमुखयुक्त कटिसूत्र, जिसकी सुन्दर फुंदनी पैरों पर लटक रही है, धारण किये हैं। देवी के चरण तथा पैरों की अंगुलियां जो साधारणतया लम्बी और सुन्दर हैं, पाद-जालक पहने हुए हैं। देवी के गले में तीन रेखायें भी चित्रित की हुई हैं, जिससे मूर्ति अधिक आकर्षक लगती है।

सरस्वती के शीश के पीछे कमल-पुष्पों तथा किनारे पर बने छोटे त्रिकोणों से युक्त प्रभा मण्डल भी शोभायमान है जिसके मध्य के सबसे छोटे घेरे में खिले कमल का कलामय चित्रण है। प्रतिमा के ऊपरी भाग में दोनों ओर उड़ते गन्धर्वों का चित्रण हैं। प्रतिमा के निचले भाग में दोनों ओर वीणा-

---

१. अंशुभेदागम के अनुसार सरस्वती के कुण्डल मानिक के बने होने चाहिएं, परन्तु पूर्णकर्णागम के अनुसार वह मोती के निर्मित होने चाहिएँ।

धारिणी देवियां (उपप्रतिमायें) मुख्य प्रतिमा की ही भांति त्रिभंग मुद्रा में खड़ी हैं तथा उन्हीं की भांति समस्त वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हैं। सबसे नीचे देवी के चरणों के समीप दोनों ओर उपासक तथा उपासिका (अथवा दानदाता अपनी पत्नी सहित) अंजलि-मुद्रा में हाथ जोड़े विराजमान हैं। पुरुष के दाढ़ी-मूछ स्पष्ट हैं। यह दोनों ही स्त्री-पुरुष की प्रतिमायें शरीर पर विभिन्न वस्त्राभूषण पहने प्रदर्शित की गई हैं, जिससे उस समय की उन्नत आर्थिक तथा सामाजिक दशा का हमें सरलतापूर्वक आभास हो जाता है।

इस सौन्दर्यमय सरस्वती-प्रतिमा के लिए निर्मित प्रभातोरण अत्यन्त सुन्दर एवं अलंकृत है जो दो स्तम्भ तथा उस पर स्थित एक उलटे अर्धचन्द्र के योग से बना है। सम्पूर्ण तोरण विभिन्न देवी, मानवी, शार्दूल-सिंहों, मकरों, पूर्ण कलश तथा त्रिरत्न की कलापूर्ण कृतियों से सुसज्जित है। तोरण का प्रत्येक स्तम्भ तीन भागों में विभाजित है। स्तम्भ के मध्यवर्ती भाग में चार-चार देवियाँ सुखासन में विराजमान हैं तथा उनके दोनों ओर स्तम्भों पर दो-दो अन्य स्त्री-प्रतिमायें त्रिभंग मुद्रा में खड़ी हैं। प्रत्येक प्रतिमा अलंकृत किरीट मुकुट पहने है तथा बालों के जूड़े साधारणतया बाईं ओर को चले गए प्रतीत होते हैं। इसके अतिरिक्त वह गले में विभिन्न हार, कानों में रत्न जटित कुण्डल, भुजबन्ध, कंगन तथा साड़ी भी धारण किए है जिसके सल पूर्ण रूप से स्पष्ट हैं। कमर में साड़ी पर फुंदनी वाला कटिसूत्र बांधे हैं तथा एक लम्बी वनमाल भी धारण किए हैं।

प्रभा-तोरण के दाहिने स्तम्भ के मध्यभाग में बैठी देवियों में प्रथम देवी दाएं हाथ में अंकुश तथा बाएं में पूर्ण घट धारण किए है। इसका वाहन गजा (हाथी) है। द्वितीय प्रतिमा जो एक गोल आसन पर विराजमान है अपने दाएं हाथ में सम्भवतः सर्प तथा बाएं हाथ में कोई शस्त्र तथा घट लिये है। तृतीय प्रतिमा के दाएं हाथ में कोई शस्त्र तथा बाएं में घट है। इनका वाहन मोर है जिसके सिर की कलगी भी स्पष्ट दीखती है। चतुर्थ प्रतिमा का वाहन भैंसा अथवा वृषभ है। देवी का दायां हाथ अभयमुद्रा तथा बाएं में घट लिए है। इन सुखासन में बैठी प्रतिमाओं के दाहिनी ओर की खड़ी दोनों स्त्रीप्रतिमाओं के दाएं हाथ में नालयुक्त कमल हैं तथा उनके दाएं हाथ का पदार्थ (छेददार-सा प्रतीत होता है) अस्पष्ट है। मध्य की बैठी देवियों के बाईं ओर की प्रतिमाएं शस्त्रों से युक्त हैं। इनमें प्रथम प्रतिमा के दाएं हाथ में खड्ग और बांए हाथ में ढाल है। द्वितीय प्रतिमा के दाएं हाथ में बाण तथा बाएं हाथ में धनुष है।

इसी तोरण के द्वितीय स्तम्भ (बांई ओर वाले) के मध्य भाग में सुखासन में बैठी प्रथम देवी के दाएं हाथ में एक त्रिशूल तथा बाएं हाथ में सम्भवत: घट है। इनका वाहन सम्भवत: मृग है। द्वितीय प्रतिमा के दाएं हाथ में खड्ग अथवा दण्ड तथा बाएं हाथ में घट है। इनका वाहन सिंह-सा प्रतीत होता है। तृतीय प्रतिमा अपने दाएं हाथ में अंकुश और बाएं हाथ में चकले-जैसा गोल पदार्थ लिए है। इनके वाहन का मुंह मुड़े हुए दाहिने पैर के मध्य में स्पष्ट है। और चतुर्थ प्रतिमा जिसका वाहन सर्प है, अपने दाहिने हाथ में नालयुक्त कमल-पुष्प तथा बाएं हाथ में घट धारण किए हुए है। इन बैठी प्रतिमाओं के दाहिने ओर की प्रतिमाओं के दाएं हाथ में कोई नुकीला शस्त्र तथा बाएं में कोई छेददार पदार्थ है। द्वितीय प्रतिमा के दाएं हाथ में नालयुक्त कमल और बाएं में वैसा ही पदार्थ है। आसनयुक्त प्रतिमा के बांई ओर की प्रथम प्रतिमा अपने दोनों हाथों में नालयुक्त कमल लिए है। द्वितीय प्रतिमा का दायां हाथ जो सम्भवत: खाली है, ऊपर को उठा है और उनके बाएं हाथ में घट है।

इन दोनों स्तम्भों के ऊपर के मुख्य वृत्तखण्ड पर मन्दिर सदृश तीन छोटे-छोटे देवालय, एक मध्य में तथा अन्य दो नीचे को उसके दोनों ओर बने हैं, जिनमें श्वेताम्बर सम्प्रदाय से सम्बन्धित जैन तीर्थंकरों की कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ी प्रतिमाएं स्थित हैं जिनके वक्ष:स्थल पर उनका मुख्य लांछन 'श्रीवत्स' चिह्न स्पष्ट है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय से सम्बन्धित होने के कारण तीर्थंकर मूर्तियां धोती पहिने हैं जो कि पूर्ण स्पष्ट हैं। शार्दूलसिंह तथा मध्य के तीर्थंकर के बीच में दोनों ओर चार-चार पुरुष तथा एक-एक स्त्री है जो कि साधारणतया हाथों में आयुध आदि लिए हैं: दोनों ओर के तीर्थंकरों के बाहरी भाग में शार्दूलसिंहों के मुख से निकलते हुए एक-एक पुरुष दोनों ओर दिखाये गये हैं जिनके एक पैर का कुछ भाग उनके मुंह के अन्दर है।

सम्भवत: यह प्रभा-तोरण इस वर्णित सरस्वती प्रतिमा का नहीं है क्योंकि अन्दर से यह आकार में उससे बड़ा होने के स्थान पर उससे कहीं छोटा है। इस सरस्वती-प्रतिमा की ऊँचाई ३'-१०½" तथा चौड़ाई १'-४½" है। प्रभा-तोरण ४'-१०" ऊँचा है।[1]

---

१. सुप्रसिद्ध विद्वान डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने अपने एक लेख "भारतीय-कला प्रदर्शनी", हिन्दुस्तान, नवम्बर ७, १९४८ में इस सरस्वती प्रतिमा को मध्यकालीन भारतीय शिल्प-कला का एक मनोहर उदाहरण बताया है।

उपर्युक्त प्रतिमा से मिलती-जुलती दूसरी सरस्वती प्रतिमा जो ३'-४" ऊँची तथा ४'-८" चौड़ी है बीकानेर में ही सुरक्षित है। यह प्रतिमा यद्यपि पूर्ण रूप से उपरि वर्णित प्रतिमा से मिलती है, परन्तु फिर भी यह उसकी नकल मात्र प्रतीत होती है। यह भी संगमरमर की बनी है। जहां तक इन प्रतिमाओं के निर्माण का सम्बन्ध है, बिना किसी संकोच के यह मध्यकाल माना जाता है। प्रसिद्ध विद्वान् डा० स्ट्रेला क्रेमरिश "स्कल्पचर आफ इण्डिया" में इन प्रतिमाओं का समय ११वीं शताब्दी के मध्य का बताते हैं। अन्य विद्वान् डा० हर्मन गोएट्स अपनी पुस्तक, 'आर्ट एण्ड आर्कीटेक्चर आफ बीकानेर स्टेट" में इसका समय १२वीं शताब्दी मानते हैं। डा० वी० एस० अग्रवाल ने इनका निर्माण-काल १२-१३वीं शताब्दी बताया है। इनका निर्माण-काल ११, १२ अथवा १३वीं शताब्दियों में से चाहे कोई भी रहा हो, परन्तु इतना तो अवश्य सत्य है कि यह पल्लू की जैन सरस्वती-प्रतिमाएं न केवल मध्यकालीन भारतीय शिल्प-कला की वरन् समस्त कालों के भारतीय शिल्प का एक अद्भुत एवं अनूठा उदाहरण हैं। इनसे यह भी आभास हो जाएगा कि किसी समय भारतीय कला एवं संस्कृति कितनी उन्नत अवस्था में थी। यह दोनों प्रतिमाएं अवश्य ही किसी जैन-मन्दिर में अवस्थित रही होंगी जैसा कि हमें ज्ञात है कि राजस्थान में सदा से ही जैन धर्म का मान रहा है। जिन जैन-मन्दिरों में यह पूजा की वस्तु रही होंगी, वे भी न जाने कितने भव्य रहे होंगे, इसकी अब हम केवल कल्पना ही कर सकते हैं।

अध्याय ३

गंधावल और जैन मूर्तियां

गंधावल मध्य प्रदेश के देवास जिले में सोनकच्छ नामक तहसील के मुख्यालय से लगभग पांच मील उत्तर की ओर एक छोटी नदी के तट पर स्थित है जो काली सिन्ध में गिरती है। यहाँ पर जैन तथा हिन्दुओं—दोनों ही धर्मों या मतावलम्बियों के अवशेष प्राप्त हैं। गंधावल ग्राम के निवासियों के घरों, कुओं, उद्यानों एवं खेतों में बिखरी हुई इन प्रस्तर प्रतिमाओं की संख्या लगभग दो-सौ है। गंधावल एक ऐसे प्राचीन व्यापारिक मार्ग पर अवस्थित है जहां से कि एक ओर उज्जैन, नागदा आदि को सड़कें जाती हैं तथा दूसरी ओर देवास और इन्दौर को तथा तीसरी ओर भोपाल एवं सांची (विदिशा या भीलसा) से मिलाती हैं।

यह स्थान शक्तिशाली परमार शासकों के अन्तर्गत रहा है जिसका एक मात्र प्रमाण यहां के प्राचीन मन्दिर एवं मूर्तियां हैं। मध्यकाल में गंधावल वाणिज्य का भी प्रमुख केन्द्र था और यहाँ के अधिकतर मन्दिर व्यापारी वर्ग द्वारा एकत्रित की गई धनराशि से बनवाये गये प्रतीत होते हैं। परन्तु अभाग्यवश ये सुन्दर स्थल आज भग्न हैं और यहाँ के भग्नावशेषों की सुरक्षा के लिए भी कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जा रहा है।

किंवदन्तियों के अनुसार किसी समय महाराज गर्दभिल्ल यहाँ पर शासन करते थे। उन्हीं के नाम पर यह स्थान 'गन्धावल' कहा जाने लगा। यहाँ पर बने एक देवालय में कुछ समय पूर्व एक पाषाण प्रतिमा मिली थी, जिसको इस ग्राम के निवासी व स्थानीय लोग महाराज गर्दभिल्ल की मूर्ति बताते थे। अनेक वर्ष पूर्व मध्य प्रदेश के मुख्य मंत्री डा० कैलाशनाथ काटजू इस स्थान को देखने गये थे। उपर्युक्त देवालय के सामने उन्होंने एक ऐसा पाषाण पट्ट देखा जिसके दोनों ओर मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। इस पर एक ओर गरुडासीन लक्ष्मी-नारायण अंकित हैं तथा दूसरी ओर अन्य लघु मूर्तियों के साथ-साथ प्रतिमा के ऊपरी भाग में गन्धर्वों का चित्रण किया गया है। डा० काटजू महोदय ने केवल इसी मूर्ति के एक मात्र आधार पर गन्धावल के बजाय इसे गन्धर्वपुरी की संज्ञा प्रदान की और तब से इस क्षेत्र के कुछ लोग इसे गन्धर्व-पुरी भी कहने लगे हैं। किन्तु उपर्युक्त दोनों ही प्रमाण इतने अकाट्य नहीं हैं

कि यह कहा जा सके कि शताब्दियों पूर्व इस स्थान का नाम गन्धावल अथवा गन्धर्वपुरी रहा होगा और जब तक हमें शिलालेखादि का कोई अन्य प्रमाण इस स्थान से इस सम्बन्ध में प्राप्त नहीं हो जाता, यह संदिग्धता बनी ही रहेगी।

जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं कि इस स्थान पर दर्जनों की संख्या में जैन प्रस्तर प्रतिमाएं बिखरी हुई हैं जो इस समय भी वहाँ देखी जा सकती हैं, परन्तु यहाँ हम वहां से उपलब्ध कुछ महत्त्वपूर्ण प्रतिमाओं का संक्षेप में वर्णन करेंगे। यहाँ यह बताना भी आवश्यक है कि मध्य युग में वहां जैनियों का दिगम्बर सम्प्रदाय सम्भवतः अधिक प्रभावशाली था; क्योंकि प्राप्त प्रतिमाएं यद्यपि पर्याप्त रूप से खण्डित हो गई हैं तो भी खड्गासन लिए नग्न मूर्तियां ही अधिक हैं।

(१) तीर्थंकर प्रतिमा

गन्धावल की प्रतिमाओं में एक विशाल प्रतिमा जो लगभग साढ़े ग्यारह फुट ऊँची है विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह विशाल प्रतिमा अपने प्रकार की केवल अकेली ही नहीं है इससे भी कहीं विशाल जैन मूर्तियां राजस्थान में पारानगर, मध्य प्रदेश में ग्वालियर, दुर्ग तथा कर्णाटक में श्रवणबेलगोला से प्राप्त हुई हैं। गन्धावल से प्राप्त मूर्तियां जो यद्यपि अत्यधिक खण्डित हैं, जैन प्रतिमा की प्रायः सभी विशेषताओं का जिनका उल्लेख वराहमिहिर (देखें : बृहत्संहिता, ५८, ४५) ने किया है, अत्यन्त कलात्मक ढंग से समावेश कर कुशल कलाकार की कार्य-चतुरता का परिचय देती हैं। कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ी प्रशान्त मूर्ति के वक्षःस्थल पर श्रीवत्स प्रतीक है।

(२) तीर्थंकर प्रतिमा

तीर्थंकर की यह द्वितीय प्रतिमा जो छः फुट के लगभग है, इस समय वहाँ के पंचायती कार्यालय के समीप स्थित है। उपर्युक्त प्रतिमा की भांति इसमें भी तीर्थंकर कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं तथा भगवान् के शिर के पीछे निर्मित प्रभामण्डल आदि भी टूटी हुई है। इनके दोनों ही ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े तीर्थंकरों के मध्य ध्यान मुद्रा में बैठे अन्य तीर्थंकरों के लघुचित्र उत्कीर्णित हैं तथा मुख्य प्रतिमा के पैरों के समीप चंवरधारी सेवक उपस्थित हैं। अभाग्यवश इन दोनों ही मूर्तियों के पैरों के नीचे का भाग खण्डित हो जाने के कारण उनका लाञ्छन भी नष्ट हो गया है अतः इनकी भी पहचान नहीं की जा सकती है।

(३) पार्श्वनाथ

२३वें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ की यह मूर्ति त्रिछत्र के नीचे खण्डित सर्प-फणों की छाया में कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ी है। शीश के दोनों ओर उड़ते हुए मालाधारी गन्धर्व हैं जिनके ऊपरी तथा निचले भागों में ध्यानस्थ तीर्थंकरों की लघु प्रतिमाएं हैं। पैरों के समीप चंवरधारी सेवकों के साथ उनके यक्ष एवं यक्षी धरणेन्द्र एवं पद्मावती का भी सुन्दर अंकन किया गया है।

(४) चक्रेश्वरी

प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ की शासन देवी चक्रेश्वरी की यह अद्वितीय मूर्ति गन्धावल से प्राप्त जैन प्रतिमाओं में विशेष स्थान रखती है। प्रस्तुत प्रतिमा के बीस हाथों में से अधिकतर हाथ खण्डित हो गये हैं, किन्तु बचे हुए हाथों में अन्य आयुधों के साथ दो हाथों में चक्र पूर्ण रूप से स्पष्ट हैं, जिनके पकड़ने का ढंग भी विशेष ध्यान देने योग्य है। राजस्थान में ओसिया ग्राम में स्थित महावीर मन्दिर पर बनी चक्रेश्वरी की स्थानक मूर्ति, जिसको हमने अन्य स्थान पर प्रकाशित किया है (रूप-लेखा, नई दिल्ली, ४०, १-२, पृष्ठ १००, चित्र ७), चतुर्भुजी देवी को सभी हाथों में चक्र पकड़े दर्शाया गया है। ओसियां की मूर्ति की ही भांति गन्धावल की चक्रेश्वरी प्रतिमा भी अनेक आभूषणों से सुसज्जित है। इनके शीश के पीछे प्रभा है, जिसके दोनों ओर विद्याधर-युगल निर्मित हैं। प्रतिमा के ऊपरी भाग में निर्मित पांच ताकों में तीर्थंकरों की ध्यानस्थ लघु मूर्तियां हैं। देवी के दाहिने पैर के समीप उनका वाहन गरुड़ अपने बायें हाथ में सर्प पकड़े खड़ा है जबकि उनके बांई ओर एक सेविका की खण्डित मूर्ति है।

(५) अम्बिका

अम्बिका तीर्थंकर नेमिनाथ की यक्षिणी है। अभाग्यवश गन्धावल से मिली इस सुन्दर एवं कलात्मक प्रतिमा का अब केवल ऊपर का भाग ही शेष बचा है। वह कानों में कुण्डल तथा गले में हार पहने हैं। देवी अपने दाहिने हाथ में जो अब अत्यधिक खण्डित हो चुका है, सम्भवतः आम्रलुम्बि पकड़े थी और बायें हाथ, जिससे एक बालक को पकड़े थी, का कुछ भाग शेष बचा है। आम्रवृक्ष के नीचे अम्बिका का अंकन है, और आम के साथ फलों को खाते हुए वानरों को भी स्पष्ट दिखाया गया है। प्रतिमा के सबसे ऊपरी भाग में शीश-रहित ध्यान मुद्रा में तीर्थंकर की प्रतिमा है, जिनके दोनों ओर मालाधारी विद्याधरों को चित्रित किया गया है। प्रस्तुत प्रतिमा पूर्ण होने पर कितनी सुन्दर रही होगी, इसकी अब केवल कल्पना ही की जा सकती है। इस

प्रतिमा के वर्णन के साथ ही मथुरा से प्राप्त एवं स्थानीय राजकीय संग्रहालय में प्रदर्शित अम्बिका की मूर्ति का उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है जिसमें देवी अपने वाहन सिंह पर आसीन है। अन्य बातों के साथ इसमें महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इनके शीश के ऊपर बनी ध्यान-मुद्रा में नेमिनाथ की मूर्ति के दायीं ओर बलराम तथा बायीं ओर कृष्ण खड़े दर्शाये गये हैं जो अपने आयुध लिए हुए हैं। इसी प्रकार देवी के पैरों के समीप गणपति एवं कुबेर की आसन मूर्तियां हैं। इस प्रकार कुशल कलाकार ने जैन देवी को हिन्दू देवताओं पर श्रेष्ठ स्थान देने के बावजूद भी दोनों धर्मों में पनप रही धार्मिक सहिष्णुता का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है।

संक्षेप में हमने गन्धावल से प्राप्त कुछ मध्यकालीन प्रतिमाओं का वर्णन किया है। गन्धावल की पंचायत के लोगों में बड़ा उत्साह है कि उनके ग्राम में सरकार की सहायता से एक स्थानीय संग्रहालय खोला जाय, जिसमें इस प्राचीन स्थल की प्रस्तर प्रतिमाओं का भली-भांति संरक्षण एवं प्रदर्शन हो सके।

अध्याय ४

राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में जैन प्रस्तर प्रतिमाएं

भारतवर्ष में सबसे पूर्व जैन प्रतिमाएं कब निर्मित हुईं इस पर विद्वानों में बड़ा मतभेद है।[१] कुछ जैन विद्वानों ने हड़प्पा (३०००ई० पू०) से प्राप्त एक मनुष्य के नग्न घड़ को जो अब राष्ट्रीय संग्रहालय में है तीर्थंकर प्रतिमा घोषित किया है। परन्तु यह मत उचित प्रतीत नहीं होता। सम्भवतः सबसे प्राचीन जैन प्रतिमा लोहानीपुर (बिहार) से प्राप्त हुई है जो अब पटना संग्रहालय में है। इस नग्न मूर्ति को जिसके हाथ कायोत्सर्ग मुद्रा की भांति प्रतीत होते हैं, उसके ऊपर की गई विशेष पालिश व चमक के आधार पर मौर्यकालीन (३०० ई० पू०) माना गया है। कलिंग सम्राट् खारवेल (प्रथम श० ई० पू०) के हाथी गुम्फा लेख 'बार समे च वसे.........नन्दराज नीत च का (लि) गं जिन संनिवेस' में जिन प्रतिमा का स्पष्ट वर्णन है। उड़ीसा स्थित उदयगिरि और खण्डगिरि की प्राचीन गुफाओं में प्रारम्भिक काल की अनेक जैन मूर्तियां निर्मित हैं।

मथुरा कला में जैन प्रतिमाओं का क्रमिक विकास देखने को मिलता है। यहाँ से प्राप्त आयागपट्टों (प्रथम श० ई० पू० से प्रथम श० ई०) पर अष्टमंगल (मत्स्य, दिव्यमान, श्रीवत्स, रत्नभाण्ड, त्रिरत्न, कमल, भद्रपीठ अथवा इन्द्र-यष्टि और पूर्ण कलश) तथा त्रिरत्न (सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, और सम्यक् चरित्र] के अतिरिक्त प्रारम्भ में प्रतिमा के स्थान पर केवल कुछ प्रतीकों का ही प्रयोग होता था। परन्तु बाद में ध्यान मुद्रा में जिन प्रतिमा बनने लगी। कुषाण काल के अन्तिम समय तक तीर्थंकरों के पूर्णांग चित्र प्राप्त होने लगते हैं जिनके वक्षःस्थल पर हमें "श्रीवत्स" चिह्न मिलता है। गुप्तकालीन

---

१. सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० उमाकांत प्रेमानन्द शाह भी इस मत से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार यह सम्भवतः प्राचीन यक्ष का ही चित्रण प्रतीत होता है। देखें : स्टडीज इन जैन आर्ट, पृ० ४.

कला में हमें न केवल जैन मूर्तियों के उच्चतम उदाहरण ही मिलते हैं वरन् प्रत्येक तीर्थंकर का अपना लांछन (पशु, पक्षी, पुष्प अथवा शंख आदि) भी मिलता है जिससे तीर्थंकर प्रतिमाओं में भेद किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त यक्ष व यक्षिणी आदि की कई अन्य प्रतिमाएं भी प्रमुख प्रतिमा के साथ निर्मित होने लगती हैं। और मध्यकाल के आगमन के साथ ही उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त "अष्ट प्रातिहार्यों" (दिव्यतरु, आसन, चामर, भामण्डल, दिव्य दुन्दुभि, सुरपुष्पवृष्टि, दिव्यध्वनि तथा छत्रत्रय) का भी चित्रण प्राप्त होता है। सांप्रदायिक भेद इन प्रतिमाओं में भी मिलेगा। दिगम्बर प्रतिमाएं नग्न होती हैं, जबकि श्वेताम्बर विभिन्न वस्त्राभूषणों से सुसज्जित। वराह-मिहिर ने जैन मूर्तियों के लिए पांच प्रमुख लक्षण बताये हैं—अर्थात् आजानुबाहु, श्रीवत्स, प्रशान्तमूर्ति, नग्नता और तरुणावस्था (बृहत्संहिता, ५८, ४५)।

राष्ट्रीय संग्रहालय में केवल आयागपट्ट को छोड़कर, अधिकतर प्रतिमाएं मध्य काल की हैं, जो कि भारत के विभिन्न भागों से प्राप्त हुई हैं। इनमें से अधिकतर मूर्तियां जैन तीर्थंकरों की हैं, परन्तु साथ ही यक्ष-यक्षिणी तथा विद्यादेवी आदि की प्रतिमाएं भी उपलब्ध हैं जिनका यहां संक्षिप्त वर्णन दिया जा रहा है।

उत्तर प्रदेश :—

आयागपट्ट (सं० जे० २४९) - चित्र २

जैन प्रतिमाओं में सबसे प्राचीन मथुरा से प्राप्त एक चौकोर आयागपट्ट है, जिसके मध्य में एक छत्र के नीचे जिन ध्यान मुद्रा में बैठे हैं। इनके चारों ओर त्रिरत्न बने हैं। ऊपर की पट्टिका (पेनल) में मत्स्य ,दिव्यमान, श्रीवत्स, रत्नभाण्ड तथा नीचे वाली में त्रिरत्न, कमल, वैजयन्ती तथा मंगल-कलश आदि अष्ट मंगलों का अंकन है। शिलापट्ट के दोनों किनारों पर बने स्तम्भों पर धर्मचक्र तथा गज का क्रमशः चित्रण है। पट्ट के निचले भाग पर खुदे लेख से विदित होता है कि सिंहनादिक नामक एक व्यापारी ने अर्हतों की पूजा के लिए इसे प्रतिष्ठापित किया था। कुषाण काल १ली-२री शती ई० में निर्मित हुआ, यह पट्ट, जैन मूर्ति कला के अध्ययन के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है।

पार्श्वनाथ (सं० ५९. २०२)

२३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ कमल पर कायोत्सर्ग मुद्रा में सर्प के सात फणों के नीचे त्रिछत्र की छाया में खड़े हैं। ऊपर उनकी कैवल्य प्राप्ति पर
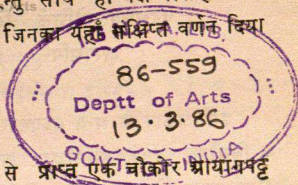
एक दिव्य दुन्दुभिवाहक हर्षध्वनि कर रहा है और उसके दोनों ओर चामर-धारी बने हैं। शीर्ष पर उष्णीष तथा वक्ष पर श्रीवत्स प्रतीक है। मूल मूर्ति के दोनों ओर नागनियों तथा अन्य सेवक-सेविकाओं का अंकन उत्कीर्ण है। यह प्रतिमा प्रतिहार काल (लगभग ग्यारहवीं शती) की है।

राजस्थान :

भारतवर्ष के पश्चिमी भाग राजस्थान, गुजरात, मालवा में मध्यकाल में जैन धर्म अपनी चरम सीमा पर था। विभिन्न जैन आचार्यों द्वारा धर्म प्रचार के कारण जैन धर्म की न केवल जनता ही में मान्यता थी, वरन् राजपूत राजाओं का भी इसे संरक्षण प्राप्त था। इसके फलस्वरूप आज भी वहाँ जैन धर्म से सम्बन्धित अगणित मन्दिर, मूर्तियां एवं अन्य स्मारक देखे जा सकते हैं। विक्रम संवत् ११६६ का एक लेख, जो कि एक जैन देवालय के निर्माण का बृहद् वर्णन प्रदान करता है, की प्रारम्भिक पंक्तियों में 'जिन' की स्तुति है—

स जयतु जिनभानुः भव्यराजीवराजी
जनितवरविकासो दत्तलोकप्रकाशः ।
परसमयतमोभिर्न स्थितं यत्पुरस्तात्
क्षणमपि चपलासद्वादिखद्योतकैश्च ।

—एपिग्राफिया इण्डिका, XXI, **पृ० ५४-५५**

इसी प्रकार के अन्य मध्यकालीन लेख प्राप्त हैं, जिनमें हमें जैन मन्दिरों के निर्माण, उनके जीर्णोद्धार तथा उनमें जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठापना की सूचना मिलती है।

पार्श्वनाथ (सं० ६२. ४३४ ; चित्र ३६)

तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ सर्प के सात फणों की छाया में सिंहासन पर विराजमान हैं।[1] फणों के ऊपर त्रिछत्र है और सबसे ऊपरी भाग में एक दिव्यगायक पार्श्वनाथ की कैवल्य प्राप्ति पर हर्ष ध्वनि करता हुआ स्पष्ट है जिसके दोनों ओर गजवाहक तथा मालाधारी गन्धर्वगण निर्मित हैं। प्रतिमा के शीश पर उष्णीष तथा वक्ष पर श्रीवत्स प्रतीक है। 'जिन' के दोनों ओर

---

१. तीर्थंकर पार्श्वनाथ के प्राचीन पूजा केन्द्रों तथा अन्य सहायक जानकारी हेतु देखें : जिनप्रभसूरि, **विविध तीर्थ कल्प**; भवदेवसूरि, **पार्श्वनाथ चरित** और मुनि ज्ञानसुन्दर जी, **श्री भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास**, इत्यादि।

एक-एक अन्य तीर्थंकर धोती पहिने हुए कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं, जिनके पीछे प्रभामंडल है। मुख्य प्रतिमा के सिंहासन के दाहिने ओर यक्ष पार्श्व (जो एक सर्प पकड़े हैं) और बांयी ओर यक्षी पद्मावती का चित्रण है। प्रस्तुत प्रतिमा से, जो लगभग ११वीं शती की बनी प्रतीत होती है, राजस्थानी शिल्पकार की कार्यचतुरता का हम सहज ही में आभास कर सकते हैं।

मध्यकाल में भगवान् पार्श्वनाथ की पूजा विशेष रूप से प्रचलित थी जिसका अनुमान हम उनकी प्राप्त असंख्य प्रतिमाओं से कर सकते हैं। परन्तु इनमें नीलकण्ठ (अलवर) से १६'-३" (सोलह फीट तीन इंच) की विशाल प्रतिमा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। बिजोलिया लेख से भी विदित होता है कि लोलार्क नामक एक दिगम्बर ने भगवान् पार्श्वनाथ के मन्दिर का निर्माण करवाया था। इसी मन्दिर को चौहान राजा पृथ्वीराज द्वितीय तथा उनके पश्चात् पृथ्वीराज तृतीय के पिता सोमेश्वर ने भी एक-एक ग्राम दान में दिया था।[1] इसी प्रकार जालोर से प्राप्त एक अन्य लेख से भी पार्श्वनाथ के निमित्त बने मन्दिर और उसके ध्वजारोपण का पता चलता है—

> **श्रीपार्श्वनाथदेवे तोरणादीनां प्रतिष्ठाकार्ये कृते**
> **मूलशिखरे च कनकमयध्वजादण्डस्य**
> **ध्वजारोपणप्रतिष्ठायां कृतायां।**
>
> **—एपिग्राफिया इण्डिका, XI, पृ० ५५**

सुपार्श्वनाथ (सं० ५५ ११)

यह प्रतिमा ७वें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ की है जो कई वर्ष पूर्व चित्तौड़-गढ़ में प्राप्त हुई थी। इसमें भगवान् पद्मासन पर पांच फणों के नीचे शिरीष वृक्ष की छाया में, जिसके नीचे उन्हें कैवल्य की प्राप्ति हुई थी, ध्यान मुद्रा में विराजमान हैं। उनके घुंघराले केशों के ऊपरी भाग में उष्णीष है तथा लंबे कान और वक्ष स्थल पर बना श्री वत्स चिह्न पूर्ण रूप से स्पष्ट है। 'जिन' के दोनों ओर एक-एक अन्य तीर्थंकर प्रतिमा ताखों में कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ी है। शीश के दोनों ओर एक-एक मालाधारी विद्याधर है। प्रतिमा के सबसे ऊपरी भाग में भी दोनों ओर सुपार्श्वनाथ की ज्ञान-प्राप्ति पर हर्ष ध्वनि करते हुए गजारूढ़ दिव्य गायकों एवं दिव्य वादकों का अंकन है। प्रस्तुत प्रतिमा अत्यधिक खण्डित होने पर भी १२वीं शती की कला का सुन्दर उदाहरण है।

---

१. एपिग्राफिया इण्डिका, XXIV, पृ० ८४.

मध्यप्रदेश—

नेमिनाथ (सं० ७३. २३)

नेमिनाथ की नग्न मूर्ति चौकोर पीठिका, जिस पर उनका चिह्न शंख बना है, कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ी है। यह मूर्ति कला की दृष्टि से विशेष महत्त्व की नहीं है और लगभग ग्यारहवीं शती ई० की बनी लगती है।

युगलिया (सं० ३४६१. ७४)

उत्तरी भारत में ऐसी अनेक मूर्तियां प्राप्त हुई हैं जिनमें एक राजपुरुष एवं स्त्री, साधारणतया एक वृक्ष, जिस पर ध्यानी तीर्थंकर हो, के नीचे बालक लिए दिखाये गये हैं और उनके नीचे भक्तों की लघु प्रतिमाएं होती हैं। ऐसी मूर्तियों को डा० यू० पी० शाह एवं अन्य विद्वानों ने 'जिन के माता-पिता' की संज्ञा प्रदान की है। परन्तु अभी भी इनका प्रतिमा-विज्ञान की दृष्टि से और अध्ययन होना शेष है। खजुराहो क्षेत्र से प्राप्त एक ऐसी मूर्ति के अतिरिक्त एक अन्य मूर्ति भी राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित है जो चन्देल कला दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की बनी प्रतीत होती है (सं० ३३७७-७५)।

खण्डित जैन मूर्ति (सं० ४३६४. ७४)

खजुराहो के चन्देल शासकों के ही समकालीन चेदि सम्राटों के समय में भी जैन धर्म मध्य प्रदेश में भली-भांति पनप रहा था। इस काल की बनी अनेक जैन मूर्तियां मिली हैं। एक खण्डित स्तम्भ के निचले भाग में एक तीर्थंकर की कायोत्सर्ग मुद्रा में उत्कीर्ण मूर्ति का वक्ष है जिसके शीर्ष के दोनों ओर गन्धर्व, गज एवं मध्य में दिव्य वादक बना है। इनके ऊपर एक ताख में उत्कीर्ण ध्यानी तीर्थंकर के दोनों ओर एक-एक अन्य तीर्थंकर की खड़ी मूर्ति हैं (त्रितीर्थी)। यह खण्ड टूटा होने पर भी चेदि कला (लगभग १०वीं शती ई०) का सुन्दर उदाहरण है।

इसी संग्रहालय में किसी मध्यकालीन जैन मूर्ति के परिकर का भी ऊपरी भाग है जो अब अधिकांशतः खण्डित हो चुका है। इसके मध्य में एक तीर्थंकर की सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में बैठी मूर्ति है, परन्तु उनका लाञ्छन स्पष्ट नहीं है। इनके दाहिने ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में पार्श्वनाथ खड़े हैं जिनके शीश के ऊपर बने सर्प-फण अधिकांशतः नष्ट हो चुके हैं। ऐसी ही मूर्ति बांयी ओर भी थी, जिसके अब केवल पैर ही शेष बचे हैं। दाहिनी ओर एक कलात्मक गजमुख एवं सुन्दर पुरुष आकृति है। यह मूर्ति भी उपर्युक्त वर्णित प्रतिमा की समकालीन ही प्रतीत होती है।

अम्बिका (सं० ७५. ८९०)

इसी क्षेत्र से प्राप्त अम्बिका की आसन मूर्ति में उन्हें एक वृक्ष के नीचे दिखाया गया है। इनकी गोद में एक बालक व उनका वाहन, सिंह, बायें पैर के समीप बैठा है। चतुर्भुजी देवी ने अपने हाथों में आम्र-लुम्बि, पद्म, खण्डित वस्तु आदि धारण कर रखी हैं। पेड़ के ऊपर नेमिनाथ की ध्यान मुद्रा में मूर्ति है और नीचे पैरों के समीप भक्त दिखाये गये हैं। यह मूर्ति भी चेदिकला १२वीं शती ई० का सुन्दर उदाहरण है।

बिहार—

ऋषभनाथ (सं० ६०. १४७६; चित्र ४६)

बिहार एवं बंगाल में मध्य काल में पाल वंशीय शासकों का राज्य था। बौद्ध होने पर भी इन्होंने हिन्दू एवं जैन धर्म को पनपने का अवसर दिया और इनकी इस धार्मिक सहिष्णुता की नीति के फलस्वरूप, बौद्ध धर्म के अतिरिक्त हिन्दू व जैन धर्म के देवी-देवताओं की भी अनेक मूर्तियां पूर्वी भारत से मिली हैं। इन्हीं में से एक नग्न मूर्ति ऋषभनाथ की है जिसमें वह कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं। इन्होंने शिव की ही भांति जटा-मुकुट धारण कर रखा है तथा इनके दोनों ओर एक-एक सेवक व गन्धर्व उत्कीर्ण हैं। काले पत्थर की बनी यह मूर्ति पाल कला ग्यारहवीं शती ई० में बनी मानी जा सकती है। मूर्ति के निचले भाग पर उनका लाञ्छन बैल भी है।

चन्द्रप्रभ (सं० ६०. ५६४)

उपर्युक्त मूर्ति की ही समकालीन तीर्थंकर चन्द्रप्रभ की भी प्रतिमा है। इसमें भी नग्न तीर्थंकर कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं। इनके दोनों ओर ऊपर उल्लेखित मूर्ति की ही भांति दो-दो अन्य तीर्थंकरों की लघु मूर्तियां हैं और सामने पीठिका पर इनका लाञ्छन अर्द्ध-चन्द्र बना है जैसा कि देवगढ़ से प्राप्त मूर्ति में अंकित है।

अम्बिका (सं० ६३. ६४०; चित्र १८)

तीर्थंकर नेमिनाथ की यक्षी अम्बिका की एक कलात्मक मूर्ति में उनको सुन्दर मुकुट, हार, साड़ी आदि धारण किये दर्शाया गया है। इनके दाहिने हाथ में आमों का गुच्छा है जिसके समीप ही इनका बड़ा पुत्र खड़ा है और बांये हाथ की उंगली को पकड़े इनका दूसरा बालक है। देवी के दोनों ओर एक-एक नृतक व पीठिका पर इनके वाहने सिंह के अतिरिक्त भक्तों का

भी अंकन है। वृक्ष के ऊपर नेमिनाथ की ध्यान मुद्रा में लघु मूर्ति उत्कीर्ण है। प्रस्तुत मूर्ति पाल कला १०वीं-११वीं शती ई० का उदाहरण मानी जा सकती है।

बंगाल—

पुगलिया (सं० ६०. १२०४; चित्र ४५)

उत्तर पाल युगीन लगभग ग्यारहवीं शती ई० की प्रस्तुत मूर्ति में 'जिन' के माता-पिता बालक लिए एक वृक्ष के नीचे सुखासन में विराजमान हैं जिनके पैरों के समीप भक्त हाथ जोड़े बैठे हुए हैं। मूर्ति खण्डित होने पर भी बंगाल के कुशल शिल्पी की कला का परिचय देती है।[1]

उड़ीसा—

उड़ीसा के पूर्वी गंगवंशीय सम्राट, जो हिन्दू धर्म के अनुयायी थे, की उदार नीति के कारण बौद्ध व जैन धर्म को भी समान रूप से पनपने का अवसर मिला। इस काल की बनी अनेक जैन मूर्तियां भुवनेश्वर के पुरातत्त्व संग्रहालय में विद्यमान हैं।

ऋषभनाथ (सं० ७४. ६४)

प्रथम तीर्थंकर की कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ी मूर्ति जिसका मुख कुछ खण्डित हो गया है, ऊँचा जटामुकुट धारण किये है। इसके शीश के पीछे सुन्दर प्रभामण्डल बना है और उसके पास ही गन्धर्व व दिव्य वादकों का भी अंकन है। मूर्ति के पैरों के पास चंवरधारी सेवक तथा उनके ऊपर अष्ट-ग्रह हैं। मूर्ति नग्न है। पद्मपीठ के नीचे उनका लाञ्छन वृषभ बैठा दिखाया गया है और उसके दोनों ओर उपासक गण बैठे हैं। मूर्ति लगभग ग्यारहवीं शती ई० की है।

ऋषभनाथ (सं० ७४. ६५; चित्र ४६)

आदिनाथ की द्वितीय प्रतिमा में वह ध्यान मुद्रा में बैठे हैं। इनके केश भी ऊँचे जटा-जूट रूप में है तथा घुंघराले केश दोनों ओर लटकते दिखाये गये हैं। शीश के पीछे बनी प्रभा के स्थान पर प्रस्तुत मूर्ति में दोनों ओर दो पूर्णविकसित कमल बने हैं। श्री वत्स चिह्न का अंकन उड़ीसा से मिली अन्य मूर्तियों की भाँति इस प्रतिमा में भी नहीं है। यह प्रतिमा पूर्वी गग कला, १२वीं शती ई० की कृति है।

---

१. बंगाल से प्राप्त जैन प्रतिमाओं के लिए देखें : के० के० गंगोली, 'जैन इमेजेज़ इन बंगाल', इण्डियन कलचर, VI, १९३९-४०, पृ० १३७-४१,

तीर्थङ्कर (सं० ७४. ६७)

कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ी तीर्थंकर की इस मूर्ति का नीचे का भाग खण्डित है। मूर्ति पर शान्त भाव विशेष रूप से देखने योग्य है। प्रस्तुत मूर्ति के केश उष्णीषी ढंग में हैं जिससे अनुमान कर सकते हैं कि यह मूर्ति आदिनाथ की न होकर अन्य किसी तीर्थंकर की है। मूर्ति के शीश पर त्रिछत्र व दोनों ओर चार-चार ग्रहों का अंकन है। यह मूर्ति भी १२वीं शती ई० की है।

आन्ध्र प्रदेश—

ऋषभनाथ (सं० १३५२)

काले पत्थर में निर्मित ऋषभनाथ की यह मूर्ति पश्चिमी चालुक्य कला की अनुपम कृति है। इसमें वह ध्यान मुद्रा में बैठे हैं तथा उनके केश पीछे की ओर हैं और जटायें कन्धों पर पड़ी हैं। श्रीवत्स चिह्न जो कि महापुरुष का एक लक्षण है, मध्यकालीन बंगाल, उड़ीसा आन्ध्र प्रदेश की जैन मूर्तियों में नहीं मिलता अतः प्रस्तुत प्रतिमा में भी उसका अभाव है।[1] यह मूर्ति लगभग दसवीं शताब्दी ई० में बनी प्रतीत होती है (चित्र ४६)।

लघु देवालय (सं० ५८. ६।१)

पूजा हेतु प्रयोग में आने वाला शिखर के प्रकार का लघु देवालय जिसके निचले भाग में चारों ओर ध्यानी तीर्थंकर प्रतिमाओं का अंकन हुआ है। यह सभी तीर्थंकर सिंहासन पर विराजमान हैं और इनके पास चंवरधारी सेवक तथा पैरों के समीप शासन देवता बने हैं। सिंहासन के दोनों ओर उपासक तथा लेख हैं। मूल प्रतिमा के ऊपर वाली पट्टिकाओं में अन्य तीर्थंकरों की ध्यान मुद्रा में मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। यह देवालय चालुक्य शैली १२वीं शती ई० का है।

चंवरधारी (सं० ४१२२)

चंवरधारी सेवक की यह मूर्ति जिसका नीचे का भाग टूटा हुआ है अपने बायें हाथ में चंवर लिए है। इसने करण्ड-मुकुट रत्न-जटित हार तथा अन्य आभूषण धारण कर रखे हैं तथा शीश के पीछे प्रभा बनी है। यह अत्यन्त

---

१. बाबू छोटे लाल जैन, 'श्रीवत्स चिह्न', महावीर जयन्ती स्मारिका, जयपुर, अप्रैल १९६२, पृ० ११७-२०.

सुन्दर मूर्ति हैदराबाद के पटनशेरू-मडक नामक स्थान से मिली थी और पश्चिमी चालुक्य कला १०वीं शती ई० का अद्वितीय उदाहरण है।

तमिलनाडु—

दक्षिण भारत और विशेषकर तमिलनाडु में यद्यपि पल्लवकालीन प्रस्तर प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि चोल काल में और बाद को विजयनगर काल में पर्याप्त रूप से जैन प्रतिमाओं का निर्माण हुआ। तमिलनाडु की जैन प्रतिमाओं में अधिकांशतः उनके लाञ्छन का अभाव ही रहता है जिससे उनकी उचित पहचान करने में अत्यन्त कठिनाई होती है। पार्श्वनाथ तथा सुपार्श्वनाथ तो एक निश्चित संख्या में बने सर्प-फणों के नीचे उत्कीर्ण होने के कारण पहचान लिए जाते हैं परन्तु अन्य तीर्थंकरों के साथ अधिकतर समस्या ही रहती है। दूसरी विशेष बात यह है कि या तो तीर्थङ्कर प्रतिमाओं में श्रीवत्स चिह्न दिखाया ही नहीं जाता और यदि वह होता भी है तो वक्ष पर एक बिन्दु अथवा त्रिकोण के रूप में बना होता है। तीसरे तीर्थंकर के केश अधिकतर घुंघराले ही होते हैं और वह कभी भी ऊँचा जटा-जूट धारण नहीं करते जैसे पूर्वी भारत की मूर्तियों में ऊपर देखा है। साथ-ही-साथ किन्हीं मूर्तियों में उनका शीश केश रहित भी दिखाया जाता है जैसे कि मथुरा की प्रारम्भिक जैन मूर्तियों के अतिरिक्त राज्य संग्रहालय, लखनऊ में प्रदर्शित पूर्वी उत्तर प्रदेश के मन्कुआंर नामक स्थान से प्राप्त गुप्तकालीन बुद्ध की आसन प्रतिमा में भी है।

महावीर (सं०) ६३. १०६८)

महावीर की मूर्ति में वह ध्यान मुद्रा में बैठे हैं। श्रीवत्स उनके वक्ष के दाहिने ओर अङ्कित हैं और प्रभा के दोनों ओर चंवर पकड़े सेवक खड़े हैं। शीश के ऊपर त्रिछत्र बना है। मूर्ति चोल कला १२वीं शती ई० की है।

तीर्थंकर (सं० ५९. १५३।३२३)

तीर्थंकर आसन पर ध्यान मुद्रा में विराजमान है। वक्ष पर श्रीवत्स चिह्न गोल बिन्दु के प्रकार का है। शीश के पीछे बनी प्रभा एक मोटी रेखा द्वारा ही अङ्कित की गई है और इसके दोनों ओर चंवरधारी सेवकों के स्थान पर केवल एक-एक चंवर का ही प्रतीक रूप में चित्रण हुआ है। मूर्ति उत्तर चोलकालीन १३वीं शती ई० की कृति है।

पार्श्वनाथ (सं० ५६. १५३।१७३)

पार्श्वनाथ की यह अत्यन्त विशाल प्रतिमा सर्प-फणों के नीचे कायोत्सर्ग

मुद्रा में खड़ी है। मूर्ति नग्न है तथा इनके दोनों हाथ भी खण्डित हो गये हैं। चोलकालीन इस भव्य प्रतिमा के दोनों ओर पुष्प एवं लताओं का अंकन है, जिससे यह पर्याप्त रूप से सुन्दर लगती है।

सुपार्श्वनाथ (सं० ५६. १५३।१७७; चित्र ४८)

सुपार्श्वनाथ की इस दुर्लभ विशाल प्रतिमा में वह सर्प के पांच फणों के नीचे कायोत्सर्ग मुद्रा में नग्न खड़े हैं। यह प्रतिमा भी उपर्युक्त मूर्ति की भांति काफी भव्य है और उत्तर चोल कला लगभग १३ वीं शती ई० की बनी प्रतीत होती है।

तीर्थंकर (सं० ५९. १५३.२; चित्र १५)

इस आदमकद मूर्ति में तीर्थंकर ध्यान मुद्रा में एक कलात्मक आसन पर विराजमान हैं जिसके दोनों ओर सिंह तथा मध्य भाग में गजमुख बने हैं। शीश के पीछे बनी प्रभा के पास चंवरधारी सेवक खड़े हैं जिनके त्रिछत्र तथा लताओं का अंकन है। कला की दृष्टि से प्रस्तुत मूर्ति विजयनगर काल, लगभग पन्द्रहवीं शताब्दी की मानी जा सकती है।[1]

---
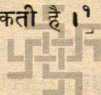
१. राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में दक्षिण भारत से प्राप्त कई अन्य जैन प्रस्तर प्रतिमाएं भी हैं जिनका उल्लेख हमने अपने लेख में किया है। देखें जैन जर्नल, कलकत्ता, x, ४, अप्रैल, १६७६, पृ० १५६-६० एवं चित्र १-८,

अध्याय ५

राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में जैन कांस्य प्रतिमाएं

जैन धर्म से सम्बन्धित कांस्य प्रतिमाओं का निर्माण कब प्रारम्भ हुआ कहना कठिन है, परन्तु पुरातात्त्विक आधार पर इतना तो निश्चित है कि प्रथम शताब्दी ई० पू० से तीर्थंकर मूर्तियां अवश्य बनने लगी थीं। सन् १९३१ में बिहार में चौसा नामक ग्राम से १८ जैन कला-कृतियां प्राप्त हुई थीं, जो अब पटना संग्रहालय में प्रदर्शित हैं। इनमें से कम-से-कम एक पार्श्वनाथ की नग्न मूर्ति जो सर्प-फणों के नीचे कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ी है, प्रथम शती ई० पूर्व की बनी प्रतीत होती है। प्रस्तुत प्रतिमा पर जो पर्याप्त रूप से खण्डित है, शुंग कला की छाप स्पष्ट है। इसकी समकालीन पार्श्वनाथ की एक अन्य नग्न खड़ी मूर्ति, प्रिन्स आफ वेल्स संग्रहालय, बम्बई में सुरक्षित है (सं० ३२)। इसमें सर्प-फणों का कुछ भाग तथा दाहिना हाथ थोड़ा खण्डित हो गया है। परन्तु कुछ विद्वानों की यह भी धारणा है कि यह मूर्तियां शरीर की बनावट के आधार पर प्रथम शती ई० पू० की न होकर प्रथम शती ई० की हैं। चौसा से ही दूसरी शती ई० की दो कांस्य प्रतिमाएँ उपलब्ध हैं; इनमें एक आदिनाथ तथा दूसरी 'जिन' की है, जिसकी पहचान करना कठिन है। यह दोनों नग्न प्रतिमाएं कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ी हैं और समकालीन तीर्थंकर की पाषाण प्रतिमाओं से काफी साम्यता रखती हैं।

गुजरात में बड़ौदा के समीप अकोटा नामक स्थान से कई वर्ष पूर्व जैन मूर्तियां प्राप्त हुई थीं जिनमें से ऋषभनाथ तथा जीवन्तस्वामी की प्रतिमाएँ सुन्दर कला के आधार पर ५वीं शती ई० की मानी जा सकती है। यहीं से प्राप्त आदिनाथ की एक अन्य मूर्ति जिसकी स्थापना जिनभद्र वाचनाचार्य ने की थी तथा वल (गुजरात) से प्राप्त एक तीर्थङ्कर प्रतिमा, लगभग छठी शती ई० की कृतियां हैं। अकोटा से प्राप्त उपर्युक्त वर्णित मूर्तियां बड़ौदा संग्रहालय तथा वल से मिली मूर्ति प्रिन्स आफ वेल्स संग्रहालय, बम्बई (सं० १२२) में सुरक्षित हैं। पार्श्वनाथ की एक नग्न कांस्य मूर्ति न्यूयार्क के एक निजी

संग्रह में है। इसमें सर्प-फण जिसके नीचे वह कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं, काफी खण्डित हो चुके हैं। यह मूर्ति जो एक ऊँचे आसन पर खड़ी है, मध्य भारत में लगभग छठी-सातवीं शती ई० में बनी प्रतीत होती है। राजस्थान में वसन्तगढ़ नामक स्थान से भी कुछ जैन मूर्तियां मिली थीं, जिनमें से कईयों पर दानकर्ताओं के लेख खुदे हैं। इनमें से एक तीर्थंकर प्रतिमा पर जो कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ी है, उत्कीर्ण लेख से विदित होता है कि ६८७ ई० में शिवनाग नामक एक शिल्पी ने यशोदेव द्वारा भेंट करने के लिए इस सुन्दर मूर्ति का निर्माण किया था।

पूर्व मध्य एवं मध्य काल में भारत के विभिन्न भागों, विशेषकर राजस्थान और गुजरात, में जहाँ जैन धर्म का प्राबल्य था, जैन मूर्तियों का प्रचुर मात्रा में निर्माण हुआ। राष्ट्रीय संग्रहालय में लगभग छठी शती ई० की दो महत्त्वपूर्ण कांस्य प्रतिमाएं हैं। इनमें प्रथम उत्तर गुप्तकालीन मूर्ति, जिसे डा० नीलरत्न बैनर्जी ने उज्जैन में उत्खनन स्वरूप प्राप्त किया था, हाल ही में राष्ट्रीय संग्रहालय को भेंट कर दिया है। कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े 'जिन' ने धोती धारण कर रखी है, जिससे स्पष्ट है कि किसी श्वेताम्बर जैनी भक्त द्वारा इसका निर्माण कराया गया होगा (सं० ७६. ८७०)। द्वितीय मैत्रककालीन कलात्मक मूर्ति, जो सूरत से मिली है, में 'जिन' ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं (सं० ७८-११७४)। लांछन के अभाव में इनकी तीर्थंकरों से सही पहचान करना कठिन है। अन्य जैन प्रतिमाओं का तीर्थंकर क्रम के अनुसार संक्षेप में वर्णन इस प्रकार है—

ऋषभनाथ

प्रथम तीर्थंकर की एक अद्वितीय प्रतिमा जो मध्य प्रदेश में बनी प्रतीत होती है, में ऋषभनाथ मध्य में एक सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में विराजमान हैं (सं० ७०.४२)। इनके केश उष्णीष रूप में सुसज्जित हैं तथा जटायें कंधों पर पड़ी हैं और वक्ष पर श्रीवत्स है। इनके दोनों ओर एक-एक चंवरधारी सेवक तथा शीश के पीछे बनी प्रभा के दोनों ओर मालाधारी विद्याधर, गजसवार तथा छत्र के ऊपर जिन की कैवल्य प्राप्ति पर हर्ष ध्वनि करता हुआ एक दिव्य वादक बना है। इस मूर्ति में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मूल मूर्ति के दोनों ओर भरत एवं बाहुबलि की कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ी मूर्तियां हैं। बाहुबलि के शरीर पर लताओं का अंकन है। मध्य प्रदेश में बिल्हरी नामक स्थान पर जड़ित एक पाषाण सिरदल में भी आदिनाथ की भरत एवं बाहुबलि

के साथ एक विलक्षण प्रतिमा स्थित है। परन्तु अभी तक प्राप्त अन्य किसी भी धातु प्रतिमा में ऐसा अंकन प्राप्त नहीं हुआ है। सिंहासन के दांई ओर यक्ष गोमेध एवं बांई ओर गरुडारूढ चक्रेश्वरी की मूर्तियां हैं और मध्य में आदिनाथ का लाञ्छन वृषभ बैठा दिखाया गया है। प्रतिमा की पीठिका पर उत्कीर्ण लेख से विदित होता है कि इसकी प्रतिष्ठापना अभय सकर्संल तथा उसके पुत्र कंका ने संवत् १११४ (१०५७ ई०) में करवाई थी : 'संवत् १११४ सुदी ११ अभय सकर्संल : तातसुतः कंकः'। इस प्रकार यह मूर्ति चेदिकला ११वीं शती ई० की बनी हुई है (चित्र ३७)।

यहाँ यह बताना आवश्यक है कि अधिकतर मध्यकालीन तीर्थंकर प्रतिमाएं राजस्थान व गुजरात से ही प्राप्त हुई हैं। कला की दृष्टि से यह प्रायः समान ही हैं। इनमें वह एक सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में बैठे दिखाये जाते हैं। ऊपर त्रिछत्र व मालाधारी गन्धर्व आदि बने होते हैं और सिंहासन के दोनों ओर शासन देवता तथा मध्य में उनका लाञ्छन होता है। पीठिका पर नवग्रह तथा भक्तगण दिखाये जाते हैं। किन्हीं-किन्हीं मूर्तियों में तीर्थंकर की आँखों, श्री-वत्स तथा सिंहासन पर भी चांदी का प्रयोग हुआ मिलता है तथा मूर्ति के पृष्ठ भाग पर दान अभिलेख उत्कीर्ण होता है। तीर्थंकर की पृथक् मूर्तियों के अतिरिक्त त्री-तीर्थिक प्रतिमाएं भी होती हैं। कला की दृष्टि से अधिकतर मूर्तियां साधारण ही होती हैं।

इस संग्रहालय में आदिनाथ की अन्य मूर्तियां भी हैं। मूर्तियों पर खुदे अधिकतर लेखों से ज्ञात होता है कि उनकी प्रतिष्ठापना स्वयं के कल्याण के लिए भी की जाती थी। उदाहरणार्थ एक प्रतिमा पर खुदा है (सं० ६२. १०८०) :

> "सवत् १२४५ वैशाष सुदि १० गुरौ व्यवरामण सुत
> ब्रह्मदत्तेन आत्मश्रेयार्थं श्री रिखमदेवप्रतिमा कारिता।

तीसरी मूर्ति के पृष्ठ भाग पर काफी खण्डित परन्तु तिथियुक्त निम्न लेख उत्कीर्ण हैं (सं० ५६. ११७)—

'संवत् १५१९ वर्षे फागुण मासे सुक्ल (शुक्ल) प० (पक्षे) ५ सनी (शनि) श्रीमूलसंघसरस्वति गछे वलावत गणे श्री कुट कुटाचार्या श्री नेमः श्री पद्म नंदि देवा तत्पटे भ० (भट्टारक) श्री सकल कीर्तिदेवा तत्पटे भ० (भट्टारक) श्री भवन कीर्ति वंस्य (वंश) गुरु भ्राता ब्र० जिणदासानामुपदेसेण (उपदेशेन) (म)ल्लिदास दुंवडज्ञातीय……।'

आदिनाथ की एक अन्य मूर्ति पर संवत् १५९७ का लेख खुदा है जो इस प्रकार है (सं० ४८. ४।५३)—

'संवत् १५९७ वर्ष वैशाख सुदि १३ गुरौ उकेशवंशे आंबिलीयागोत्रे सा० बाला भार्या करमी पुत्र देव सी भार्या देवल दे पुत्र संघ राज वाई सोभागिणि स्व पुण्यार्थं श्री आदिनाथ बिंबं कारितं श्री विजयदेवसूरिभि: प्रतिष्ठितं तपागछे।

इनके अतिरिक्त एक अन्य प्रतिमा पर काफी खण्डित लेख इस प्रकार है (सं० ४८. ४।५४)—

'श्री ऋषभ बिंब प्र० (प्रतिष्ठितं) श्री हरिविजयसूरिभि:।

......च......ली......क.......

श्री.........श्री......(सामने की ओर)

अजितनाथ

इस मूर्ति में अजितनाथ एक सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में बैठे हैं। शीश के पीछे प्रभा, ऊपर त्रिछत्र, तथा दोनों ओर एक-एक तीर्थंकर कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं। सिंहासन के दायें महायक्ष व बायें यक्षी अजितबला तथा सामने लाञ्छन हाथी तथा नव-ग्रह बने हैं। मूर्ति के पीछे मकर-तोरण है जिस पर पूर्ण-कलश है (सं० ४८. ४।१९)। प्रतिमा के पृष्ठ भाग पर संवत् १४७१ का लेख उत्कीर्ण है जिससे मूर्ति के निर्माण के बारे में सूचना मिलती है—

'सं० १४७१ वर्षे माघ सुदि १० शनौ ज्ञाति श्री मार्ला सा० (सावक=श्रावक) आसंघर सा० तिल्लिपुत्रेण सा० हांसाकेन पितु: श्रेयसे श्री अंचल गछे श्रीमहीतिलकसूरीणामुपदेशेन श्रीअजितनाथबिंबं कारितं प्रतिष्ठापितं च।'

अजितनाथ की तीन अन्य मूर्तियां भी हैं जिन पर भी लेख उत्कीर्ण हैं :

(१) ४८. ४।३२—"संव (त्) १५१२ विशाष मासे सुदि ५ प्राग्वाट ज्ञातीय श्रे० पासड सु (सुत) प...भा० (भार्या) पू...ज...श्रे० अर्जन मं० सहजा भार्या तिलीतयो: आत्मश्रेयोर्थं श्री अजितनाथ बिंवि (बिंबं) प्रतिष्ठितं श्रीविजयधर्मसूरिभि:।'

(२) ४७. १०९।१७२—"संवत् १५०९ वर्ष माघ सुदि ३ गुरु श्री मूल संघ बलात्कार गणे सरस्वतीगछे। श्री कुंदकुंदाचार्याम्नाय भट्टारक श्री पद्मनंदितत्पाद भट्टारक श्री शुभचन्द्रदेवा तस्य भ्रातृ श्री सकल कीर्तितत् शिष्य श्री भवनकीर्ति धूनं प्रसादात् श्री लखल बिब कीर्ति बाईलाहण बड ज्ञाति

र·······आणा गोत्रि श्रे० आज सी भार्या उनी सुताषता पा ता भा य किमक्त हरषू सुत जइता सा पुत्री गोमति । शुभं भवतु ।। प्रतिमा श्री अजितनाथ ।"

(३) ४८. ४।६३—"सं० १७७४ माघ सित १३ रप्रेरेभवषनच रेण अजित बिंबं सा० (रचा-)" ।

सम्भवनाथ

सम्भवनाथ की एक चौबीसी के मध्य में वह एक सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में बैठे हैं तथा इनके दोनों ओर एक-एक कायोत्सर्ग मुद्रा में व अन्य शेष २१ तीर्थंकर ध्यान मुद्रा में उत्कीर्ण किये गये हैं (सं० ४८. ४।२६) । सिंहासन के पास यक्ष त्रिमुख तथा यक्षी दुरितारी व मध्य में 'जिन' का लाञ्छन अश्व दिखाये गये हैं । मूर्ति के मकरतोरण के दोनों ओर व्याल है । पीठिका पर उत्कीर्ण लेख से स्पष्ट है कि संवत् १५०७ में निर्माण हुआ था—

"सं० १५०७ वर्षे वि० श्रु (सुदि) ३ प्राग्वाट ज्ञातीय व्य० मांडरा भा० माल्लू पुत्र वनाकेन द्वीरन् सुत अर्जुन पांच प्रमुख कुटुंव युतेन द्वूवी श्रेयोर्थं श्री शंभवनाथ (संभवनाथ) चतुर्विंशति पट्टः कारितः प्रतिष्ठतस्तपागछे सुश्री सोम सुन्दर सूरि शिष्य रतन शेखर सूरिभिः उंदिरा वास्तव्य' ।

अन्य प्रतिमाओं पर निम्नलिखित लेख हैं—

(१) ४८. ४।३४—"संवत् १५१३ विशाष ५ शनौ वीर वंशि (वीर वंशी) श्रे० हापा भार्या कांऊ पुत्र्या श्रे वे (?) पण भार्ययाश्री (श्री) विकया भ्रातृ श्रे० केसव नरसिंह । जे (जी) सा (साकं या सार्धं) प्रमुख कुटुंब सहित या श्री अंचल गच्छ नायक श्री जय केसरि सूरि उपदेशेन···श्रेयसे श्रीसंभवनाथ बिंब कारितं प्रतिष्ठितं श्री संघेन' ।।

(२) ४८. ४-४६—'संवत् १५७६ वार्ष (वर्षे) माघ वदि १३ बुद्धे श्री श्रीमाल ज्ञातीय सा०·······वास्त स्त०ु पूना·······श्रा·······सोनास्त पास्तं पा प्रमुख स्वकुटुम्बयुतेन पुण्यार्थं श्री संभवनाथ बिंबं मलप्कार (या मलधार) गाछ श्रीलक्ष्मीसागरसूरिप्रतिष्ठितं पत्तन वास्तव्यः' ।

(३) ४८. ४।७०—'संवत् १६७६ वर्षे ज्येष्ठ सित ६ सोमे श्री सावली वासी अउकेश ज्ञातीय श्रीमः (श्रीमान्) राजाधिराजराज श्री कल्याणमल्ल जी राजा वृद्ध (वृद्ध ?) शाखीय सौ० (सौभागिनी) सो०·······भा० श्रा० सो भा गि·········सुत सो० रतन सीं (रतन सिंह) नाम्ना श्री संभव (नाथ) बिंबं का० (कारितं) रव प्रतिथायां प्रतिथापितं च तपागछेभ श्रीविजयदेव सूरिभिः' ।

अभिनंदननाथ

अभिनंदननाथ सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में विराजमान हैं (सं० ४८. ४१५८)। इसमें इनकी आंखे, श्रीवत्स तथा आसन पर तांबा व चांदी जड़ी हुई है। इनके दोनों ओर दो खड़े ओर दो बैठे अन्य तीर्थंकर हैं। सिंहासन के मध्य इनका लाञ्छन बन्दर (कपि) तथा दाहिने ओर यक्ष ईश्वर व बायीं ओर यक्षी काली और सामने धर्म-चक्र के दोनों ओर एक-एक मृग के अतिरिक्त नवग्रह आदि भी बने हैं। कला की दृष्टि से यह प्रतिमा काफी सुन्दर है। इसके पृष्ठ भाग पर संवत १६१० का थोड़ा अस्पष्ट लेख खुदा है—

'संवत् १६१० वर्ष वईशाष (वैशाख) सुदि १० शुक्रे श्री पाट्टण नगरे प्रागवाट (प्राग्वाट) ज्ञातीय वृद्ध शोषीय (या शाखीय) श्रे। (श्रे०)। हमा (या हिमा) भार्या बुधी सुत राइचन्द (रायचन्द) भार्या वगाई सुत लाल जी श्री अभिनन्दनबिंबं कारापितं प्रतिष्ठितं श्री तपागछे श्री हरिविजय सूरिभिः'।

इसके अतिरिक्त एक अन्य मूर्ति भी है परन्तु उसका लेख भी बहुत स्पष्ट नहीं है (सं० ४८. ४।३७)—

'सं० १५१७ वार्ष (वर्ष) शके १५ प्रर्त्तमान (प्रवर्तमान) चैत्र सुदि तृतीया दिने उंसवाल ज्ञातीय साहकल दे सुता० माऊ (या भाऊ) पुत्र श्री पाल माऊ (या भाऊ) आत्मपुण्यार्थं श्री अभिनंदन बिंबं कारापितं ॥ प्रतिष्ठितं (ध) र्माया ष गछे। श्री विजय नंद सूरि पाद श्री सा.........ध रत्न सूरि'।

सुमतिनाथ

इसमें भी जिन ध्यान मुद्रा में सिंहासन पर बैठे हैं। इनके दोनों ओर एक खड़ी व एक बैठी अन्य तीर्थंकर मूर्ति है। सिंहासन के पास यक्ष तुम्बरु तथा यक्षी महाकाली तथा मध्य में लाञ्छन क्रौञ्च, धर्मचक्र को घेरे मृग तथा नवग्रह आदि बने हैं (सं० ४८. ४।४४)। मूर्ति के पृष्ठ भाग पर संवत् १५३२ का निम्नलिखित खण्डित लेख उत्कीर्ण है—

'सं० १५३२ विशाष सु० (सुदि) ३ प्र० श्रे० आसा जा० (या भा) जाउकेन (या भाउकेन) पु० (पुत्र) राणाकेन भा० (भार्या) बांड पु० कान्ता पुत्री शाणी पु० जीवा सह सी दि युतेन श्रेयसे श्री सुमतिनाथ बिं० (बिंब) का० (कारितं) प्र० (प्रतिष्ठितं) श्रीलक्ष्मीसागरसूरिभिः'।

पद्मप्रभ

तीर्थंकर सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में विराजमान हैं। इनकी आँखें तथा श्री-वत्स पर चांदी जड़ी है। सिंहासन के समीप कुसुम एवं श्यामा जो शासन देवता है, उत्कीर्ण है (सं० ४८. ४।१८)। पृष्ठ भाग पर खुदे लेख से ज्ञात होता है कि श्रीमाल जाति के श्री पूर्णसिंह ने अपने पिता, पत्नी एवं पुत्रों सहित इस मूर्ति की प्रतिष्ठापना संवत १४२३ में की थी—

'सं० १४२३ फागु (फाल्गुन) सु (सुदि) १० व वर्ष श्री माल ज्ञा० (ज्ञातीय) पितृ साल्ह भार्या······ससुत······केन श्री पद्मनाभ (पद्मप्रभ) स्वामि बिबं का (कारितं) श्री पूर्ण० (पूर्णसिहेन) प्र० (प्रतिष्ठितं) श्री सुमतिसिंहसूरीणामुपदेशः (मुपदेशेन)'।

प्रस्तुत मूर्ति की पीठिका पर पद्मप्रभ का लाञ्छन (लाल) पद्म भी बना हैं।

सुपार्श्वनाथ

सुपार्श्वनाथ एक सुन्दर आसन पर सर्प के नौ फणों के नीचे ध्यान मुद्रा में बैठे हैं। मूर्ति काफी घिसी हुई है (सं० ६०. ८३६)। पृष्ठ भाग पर संवत् १२५६ का खण्डित लेख उत्कीर्ण है—

'स्वस्ति श्री सकु १२५६ भाव सवछरे (संवत्सरे) वैशाष सुदि ७ सोमे श्री नालराजे देव कां व देव·········'।

चन्द्रप्रभ

चन्द्रप्रभ भी सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में बैठे हैं और इनके दोनों ओर अन्य तीर्थंकरों की ध्यान व कायोत्सर्ग-मुद्रा में एक-एक मूर्ति है (सं० ४८. ४।५५)। सिंहासन के दांये यक्ष विजय और बांये यक्षी भृकुटी की मूर्तियां तथा सामने इनका लाञ्छन अर्धचन्द्र, नवग्रह तथा भक्तों का अंकन है। मूर्ति के पीछे संवत् १६१२ का निम्न लेख है—

'संवत् १६१२ वर्ष वैशाष सु० बी. जि दिने श्री लंबूसर ग्राम श्री प्राग्वाट ज्ञातीय वृध शलानि (वृद्धशालिनी) वाई दुना तश्य (तस्य) सुता बा० (बाई) बंगाई वु विग······कारितं चन्द्रप्रभ बंवि (बिबं) विजय देव सूरि प्रतिष्ठितं शुभं भवतु ॥'

चन्द्रप्रभ की द्वितीय मूर्ति भी लगभग इसी प्रकार की है और उसके पृष्ठ भाग पर संवत् १६४६ का यह लेख खुदा है जो कहीं-कहीं काफी अस्पष्ट है (सं० ४८. ४।८)।

'सं० (संवत्) १६४६ वर्षे माघ व० (वदि)............पत्तन वास्तव्य उसवाल (ओसवाल) ज्ञा० (ज्ञातीय) पा० पद्म सीं (पद्म सिंह) सुत पा० सहस वीराक.........भा०.......सुत इन्द्र जी युतेन कारितं चन्द्र प्र०.......(भ) बिंबं प्रतिष्ठितं तथा गछे भट्टारक श्री......श्री..........विजयसूरिभिः श्री........ या..........॥'

यहां पर चन्द्रप्रभ की एक अन्य ध्यानी मूर्ति भी उल्लेखनीय है जिसके पृष्ठ भाग पर तो लघु लेख 'चन्द्रप्रभनाथ' उत्कीर्ण है, परन्तु सामने सिंहासन के नीचे अर्धचन्द्र के स्थान पर, एक शंख बना है जो नेमिनाथ का लाञ्छन है (सं० ६०. ८३८)। संभवतः यह कलाकार की भ्रान्ति के कारण हुआ है।

शीतलनाथ

शीतलनाथ भी एक सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में बैठे हैं तथा इनकी आंखे, श्री-वत्स चिह्न व सिंहासन के कुछ भाग पर चांदी लगी है (सं० ४८. ४।४६)। आसन को उठाये सिंहों के मध्य इनका लाञ्छन स्वस्तिक उत्कीर्ण है। इनके शासन देवता ब्रह्मा तथा अशोका के अतिरिक्त धर्मचक्र सहित दो मृग तथा नवग्रह एवं भक्त आदि भी प्रदर्शित किये गये हैं। पृष्ठ भाग पर संवत् १५४२ का निम्न लेख उत्कीर्ण है—

'सं० १५४२ वर्षे फागुण सुदि ५ गुरौ ब्राह्म चा गोत्रे को गरी समरा भा० (भार्या) लीला दे पु० (पुत्र) वु शाकेन भा० जालू पु० (पुत्र) प्रज्ञा (प्रज्ञा) युतेन श्री शीतल नाथ विं० (बिंबं) का० (कारितं) प्रतिष्ठितं श्री भावदेवसूरिभिः।'

उपर्युक्त प्रतिमा के अतिरिक्त शीतलनाथ की अन्य दो ध्यानी मूर्तियां भी लेख-युक्त हैं—

(१) ४८. ४।५७—'सं० १६२६ वर्षे फागण सुदि ८ सोमे श्री श्रीमाल ज्ञातीय महाराज पाल भार्या श्री त्रवा पूनी श्री सीतल (शीतल) नाथानु कारितं प्रति बिंबं (प्रतिष्ठितं) श्री तपागछे श्री हरिविजयसूरिभिः।'

(२) ४७. १०६।१७१—'श्री सीतलनाथ (श्री शीतलनाथ)'। लेख में कोई तिथि अंकित नहीं है।

विमलनाथ

विमलनाथ ध्यान-मुद्रा में सिंहासन पर विराजमान हैं (सं० ४८.४।२५)। इनके दोनों ओर एक-एक तीर्थंकर कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं। आसन के नीचे उनका लाञ्छन शूकर या वराह के अतिरिक्त धर्म-चक्र सहित दो मृग तथा नवग्रह बने हैं। पृष्ठ भाग पर संवत् १५०२ का लेख उत्कीर्ण है—

'संवत् १५०२ वर्षे माघ सुदि १३ शुक्रे श्री श्रीमाल ज्ञातीय पं० लूणा भा० लूणादे सुत देईयाकेन भार्या देवल दे सु० मंडलिका दि युतेन पितृ भ्रातृ सालिगादि श्रेयसे श्री विमलनाथ पंचतीर्थी कारिता श्री आगम गछे श्री अमर सिंहसूरिपट्टे श्रीहेमरत्नसूरि गुरूपदेशेन प्रतिष्ठिता वापाढेय वास्तव्य ।' विमलनाथ की लेखयुक्त अन्य प्रतिमाएं भी उल्लेखनीय हैं—

(१) ४८ ४।३०—'सं० १५११ वर्षे भा० (माघ) शु० (सुदि) ९ प्राग श्रे० राम सी'''(राम सिंह भार्या) भर'''सुत श्रे० घनावीरा नात नास रो: निजसार श्रेयोर्थं श्री विमलनाथबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं तपा श्री रत्नशेखर''' श्री सोम सुन्दर सूरिभिर थे'''।'

(२) ४८।४।३१ —'संवत् १५१२ वर्षे मार्ग (शीर्ष) सुदि ५ श्री ब्रह्माण गछे श्री श्रीमाली दोसी सादा भा० (भार्या) स्तहव दे सुत अमीपाल हरपाल अमीपाल भा० (भार्या) हर्षू सुत धनाव बाम्यां पुत्रो श्रेयसे श्रीविमलनाथ बिंबं का० (कारितं) प्रति० (प्रतिष्ठितं) श्री पजू ज्ञ सूरिभिः। इथ (स्थान) अहिमदाबाद (अहमदाबाद) नगार (नगर) जीवित स्वामि ।'

(३) ४८।४।५—'सं० १५१६ वर्षे वि० व १२ शुक्रे उकेश ज्ञाती'''''' नारद भा० घरघति पुत्र वाघाकेन भा० वल्हादे भ्रा० पहि राजादिकुटुम्बयुतेन स्वपितृश्रेयोर्थं श्रीविमलनाथबिंबं का (कारितं) प्रतिष्ठितं श्रीसूरिभिः महिसाणा (महसाना) वासि ।'

अनन्तनाथ

अनंतनाथ त्रिछत्र के नीचे ध्यान मुद्रा में बैठे हैं और इनकी आंखों, श्रीवत्स तथा सिंहासन पर भी चांदी जड़ी हुई है (सं० ४८. ४।५२)। सिंहासन के किनारों पर यक्ष पाताल तथा यक्षी अनंतमती तथा सामने नव-ग्रह दिखाये गये हैं। पृष्ठ भाग पर संवत् १५०७ का लेख उत्कीर्ण है—

'सं० १५०७ वर्षे विशाष सु० ३ प्राग्वाट ज्ञा० (ज्ञातीय) म० सुरा भा० सीता दे सुत साजण (?) सिहेन भा० (भार्या) वरजू सुत सह'''करण भा० समति श्रेयोर्थं श्री अनंतनाथ बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं तपागछनायक श्री रत्नशेखरसूरिभिः ।'

अनंतनाथ की एक अन्य मूर्ति पर लेख उत्कीर्ण है (सं० ४८. ४।६१)—
'सं० १७७७ श्री थं जितसू बाई सारउं अरेण अनंत बिबं कारितं ।'

धर्मनाथ

धर्मनाथ ध्यान-मुद्रा में सिंहासन पर बैठे हैं तथा इनके दोनों ओर अन्य

दो-दो तीर्थंकरों की ध्यान व कायोत्सर्ग मुद्रा में प्रतिमाएं हैं (सं० ४८. ४।५०) सिंहासन के साथ ही यक्ष किन्नर तथा यक्षी कन्दर्पा तथा सामने लाञ्छन वज्र; दो मृगों के मध्य धर्म-चक्र तथा नवग्रह बनाये गये मिलते हैं। मूर्ति के पीछे संवत् १५०९ का लेख, जो काफी घिस चुका है, उत्कीर्ण है—

'संवत् १५०९ वर्ष माघ सुदि १० शनौ प्राग्वाट ज्ञातीय श्रेष्ठि राणा सं० ताने (न ?) श्रेष्ठि माडण भार्या सलषू पुत्र सूंटा भार्या रत्नू (?) पुत्र उगाकेन भा० (भार्या) हरषू पुत्र महिपालसहितेन आत्मश्रेयसे श्री धर्म्मनाथबिंबं कारितं प्र० (प्रतिष्ठितं) साधु......श्रीश्रीरामचन्द्रसूरिपट्टे श्रीपुण्यचं (द्र) सूरीणामुपदेशेन विधिना श्री वाक (?)।'

धर्मनाथ की द्वितीय मूर्ति पर भी लेख है जो इस प्रकार है (सं० ४८. ४।५०)—

'सं० १५७२ वर्षे विशाष सुदि ३ शनौ उकेश ज्ञातीय सा० नाम....भार्या नाम....दे सुत....जगमाल भा० हीरा दे हि० सा० ह प्ररदे कीका भा० दाडिम दे धरमा भा० वापलाद सु कुटुंबेन श्री धर्मनाथबिंबं कारितं बृहद् जहान..... गच्छे भ० (भट्टारक) श्री गुणसुंदरसूरि प्रतिष्ठिता।'

शान्तिनाथ

शान्तिनाथ सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में बैठे हैं और इनके दोनों ओर अन्य दो तीर्थंकरों की प्रतिमाएं हैं (सं० ४८. ४।४०)। सिंहासन के किनारों पर शासन देवता तथा मध्य में इनका चिह्न हरिण, नवग्रह आदि बने हैं। पृष्ठ भाग पर संवत् १५२९ का लेख उत्कीर्ण है—

'सं० १५२१ वर्ष ज्येष्ठ सु ६ प्राग्वाट ज्ञातीय श्रे० (श्रेष्ठि) अरसी भा० (भार्या) मोहाणि सुत (लाखाकेन) भा० (भार्या) लाषण दे (लाखण दे) पुत्र रता प्रमुख कुटुंब युतेन स्वश्रेयसे श्री शांति नाथ बिबं का० (कारितं) प्र० (प्रतिष्ठितं) तपागच्छे नायक श्रीलक्ष्मीसागरसूरिभिः साचिली ग्राम।'

शान्तिनाथ की एक अन्य प्रतिमा पर संवत् १५१२ का लेख उत्कीर्ण है परन्तु वह अनेक स्थानों पर अत्यधिक घिस जाने के कारण स्पष्ट नहीं है (सं० ४८. ४।७३)। इन्हीं तीर्थंकर की एक और मूर्ति भी है (सं० ४८. ४।५९)— जिस पर यह लेख है

'सं० अभाई ४५ सं० १६५६ वर्षे वैशाख सिदि (सुदि) ७ बुध व० (वासरे) काला भा० (भार्या) लाल बाई ना आ श्री शाति (शान्ति) बिबं का० कारितं) प्र० (प्रतिष्ठितं) च तपागच्छे श्रीविजयसितसूरिभिः।'

कुन्थुनाथ

राष्ट्रीय संग्रहालय में कुन्थुनाथ की कई प्रतिमाएं हैं जो उन पर उत्कीर्ण लेखों के अतिरिक्त प्रातः एक ही प्रकार की हैं। यह सभी सिंहासन पर ध्यान-मुद्रा में विराजमान हैं। सिंहासन के दोनों ओर यक्ष गन्धर्व तथा यक्षी बला के अतिरिक्त सामने लाञ्छन छाग भी बना मिलता है। इन पर लेख इस प्रकार उत्कीर्ण है—

(१) ४८।४।२४—'संवत् १५०७ वर्षे फा० (फाल्गुन) सु० (सुदि) ६ उ० (उकेश) ज्ञा० (ज्ञातीय) आदित्यनागगोत्रे सा० (सावक=श्रावक) नोल्हा भा (भार्या) वारु पु० (पुत्र) निउला सालिग···मातृपितृश्रेयोर्थं श्री कुंथनाथ-बिंबं का० (कारितं) उ० (उकेश) ग० (गच्छे) कुक० प्रति० (प्रतिष्ठितं) श्री कक्क सूरिभिः ।। शुभं भवतु ।।'

(२) ४८।४।३८—'सं० १५२२ वर्षे फाल्गुन सु ३ सोम उपकेश ज्ञाति श्रेष्ठि गोत्रे विद्यन्एा खायां मं० (मंडले) पांता भा (भार्या) प्रताप दे पुत्र मंत्रि सुरजन (सुरंजन) भा (भार्या) सूरमादेव्या पु० (पुत्र) कोला सम···सहितया आत्म श्रेएा से श्री कुंथु नाथ बिंबं का (कारितं) प्रतिष्ठितं श्री उपकेश गच्छे कउदाचार्य सन्ताने (न) श्रीकक्कसूरिभिः वउडासरः स्थाने।'

(३) ४८. ४।४२—'सं० १५२६ वर्षे फा० (फाल्गुन) वदि २ प्राग्वाट ज्ञाती० (ज्ञातीय)। श्र० करएा भा० टीबू सुत श्रे० सारं गेन भा० पूरी वृद्ध······श्रे० ना०······भा० लाढी सुत गेलाक भी दि (गेलाक मादि ?) कुटुम्बयुतेन सर्व पूर्वजा स्व श्रेयसे श्री कुंथुनाथबिंब कारितं प्रतिष्ठितं। श्री तपागच्छनायकश्रीलक्ष्मीसागरसूरिभिः। नागलपुरवास्तव्येन। श्रीः ।।'

(४) ४८. ४।४३—'संवत् १५२६ वर्ष ज्येष्ठ सुदि २ प्राग्वाटज्ञातीय गां·········श्रे० कालू भार्या कामल दे सुत·········केन भार्या सो भागिणि प्रमुख कुटुम्ब युतेन आत्मश्रेयोर्थं श्री कुंथनाथबिंब कारितं प्रतिष्ठितं श्री तपागच्छ नायक श्री रत्नशंकरसूरिपट्टे श्रीलक्ष्मीसागरसूरिभिः सलषपुर-वास्तव्य। श्री ।।'

(५) ४८. ४।४५—'संव (सम्वत्) १५३६ वर्षे माघ सुदि ४ शुक्रे श्री माल ज्ञातीय श्रे० पौमा भा० कामलदे सु० साल्हाकेन भा० चली सु० नरदे भा० नामला द (दि) श्रियोर्थं श्री कुंथनाथादि पंचतीर्थी कारिता प्र० श्री ब्र··· गच्छे श्रीबुद्धिसागरसूरिभिः महिसाएा वास्तव्य ।।'

(६) ४८. ४।४१—'संव (त्) १५८० वर्षे माह (माघ) वदि ५ बुधे

श्री उपकेश ज्ञा० (तीय) वोह···वर्धमान गोत्रे सा० साजण भा० (भार्या) तारु पु० (पुत्र) सा० शिवा भा० (भार्या) कील्ह द्वि० लीला दे पु० (पुत्र) सा० पेघा आत्मश्रेयसे स्वपुण्यार्थं श्री कुंथनाथबिबं का० (कारितं)···खरतरगच्छे। श्रीजिनसागर सूरिन्वयो···प्रतिष्टितं श्री जिनहर्षसूरिभिः ॥'

(७) ४८. ४।५६—'सम्वत् १६१८ वर्षे माघ सुदि १३ रवौ तरवाडा वास्तव्य उसवाल (ओसवाल) ज्ञातीय श्री दोस वा भार्या बा० लंगी भ्रात दो० हां सा···ई आसु० महिपा श्री कुंथनाथबिबं कारितं पुण्याथ श्री तपागछे श्री वजिदांनसूरिभिः प्रतिष्ठितं ॥'

मल्लिनाथ

मल्लिनाथ त्रिछत्र के नीचे ध्यान मुद्रा में बैठे हैं (सं० ४७. १०६।१७०)। दो तीर्थंकर कायोत्सर्ग मुद्रा में इनके दोनों ओर व अन्य दो ध्यान मुद्रा में शीश के पीछे बनी प्रभा के पास उत्कीर्ण हैं। सिंहासन के दोनों ओर यक्ष कुबेर तथा यक्षी धरणप्रिया तथा सामने नवग्रह बने हैं। मूर्ति के पीछे (विक्रम) सम्वत् १५६१ तथा (शक) सम्वत् १४२७ का लेख उत्कीर्ण है :

'सम्वत् १५६१ वर्षे शाके १४२७ प्रवर्त्तमाने चैत्र सुदि १३ बुधे श्री मंडय महादुर्ग्रे (दुर्गे) श्री माल-ज्ञातीय साहा तील्स भार्या नादूं पुत्र सा० पासा भा० (भार्या) वां पलदे पुत्र काली भा० वीरा···पारवती भगिनी वानुं पुत्री··· कुटुंव सहि ति न स्व श्रेया स (स्वश्रेयसे) श्री मल्लिनाथबिंबं कारितं श्री लघु तपागच्छे श्रीहेमविमलसूरिभिः प्रतिष्ठितं।'

मुनिसुव्रत

मुनिसुव्रत त्रिछत्र के नीचे सिंहासन पर ध्यान-मुद्रा में बैठे हैं (सं० ४८. ४।२७)। इनके दोनों ओर दो-दो अन्य तीर्थंकर दिखाये गये हैं। सिंहासन के समीप यक्ष व यक्षी वरुण एवं नरदत्ता बने हैं और सामने लाञ्छन कूर्म का अंकन है। पृष्ठ भाग पर संवत् १५०९ का एक दान लेख उत्कीर्ण है—

"सम्वत् १५०६ वर्ष मार्ग सिर (मार्ग शीर्ष) वदि ५ गुरु वा (वासरे) ·····नायकीया गोत्र सा० जयसिंह पुत्र जड्डा सुनु (सूनो) वेगो पुत्र भा० श्रा० छ······स्वपुन्यर्थं श्री मुनि सुव्रत बिंबं कारितं श्री स (सरस्वति) गछे श्री देव सुन्दरपटे सोमसुन्दरसूरिभिः प्रतिष्ठितं।"

मुनिसुव्रत की अन्य मूर्तियों पर निम्नलिखित लेख उत्कीर्ण हैं—

(१) ४८. ४।३९—'सम्वत् १५२३ वार्षे (वर्षे) वि० (विक्रम) व (वदि) ४ गुरौ श्री वायड ज्ञाति व तंस भादा। सुपुत्र संघाधिप भोजनामा। स्वश्रेयसे श्रीमुनिसुव्रत सराऽत (स रा ऽ ता ना) (सूरीनां) चचतुर्विंशति पट्टामतभ (पट्टमितम्) ॥१ शुभं भवतु ॥

आणंद ग्राम वा य उ ज्ञातीया श्र०सादा भा०···ह वदे पुत्र श्र०भा दा भा० कु अरि पुत्र मं० भोला केन भा० टबकू भातृ श्रे० ज···भा० रत्नादे श्रे० वर सा० भा० वना द पुत्र पुंआदात्-अशाणादि) कुटुम्ब श्री मुनि सुव्रत स्वामि चतुर्विंशति पादाः कारिताः प्र० तपाश्रीसामसुन्दरसूरि सन्तान श्री लक्ष्मी सागर-सूरिभिः ।। श्रीरस्तु ।।"

(२) ४८. ४।४८—"सं० १५५९ वर्ष वि० सु० (सुदि) १० दिने प्राग्बाट ज्ञातीय व्य० उधरण भा० (भार्या) पूजा पु० (पुत्र) भोला भा० (भार्या) अमरी पु० (पुत्र) व्य० नरसिंगेन (नरसिंहेन) भा० (भार्या) पाती मार्गं नी वारु प्रमुख कुटुंब युतेन स्वश्रेयसे श्रीमुनिसुव्रतबिंबं का (कारितं) प्र० (प्रतिष्ठितं) जा·················डीया गछे श्रीगुणचन्द्रसूरिभिः···············ति ग्रामे श्री।"

(३) ४८. ४।६४—"मन सौव्रत स्वामि (मुनि सुव्रत स्वामी) व्र० क्र० अस्त हर्ष।"

नेमिनाथ

नेमिनाथ की प्रतिमा में वह एक सिंहासन पर ध्यान-मुद्रा में विराजमान हैं (सं० ४८. ४।३६)। इनके दोनों ओर एक ध्यानी व एक कायोत्सर्ग मुद्रा में अन्य तीर्थंकर मूर्तियां हैं। नीचे के भाग में यक्ष गोमेध तथा यक्षी अम्बिका की मूर्तियों के अतिरिक्त इनका लाञ्छन शंख भी बना है। मूर्ति के पृष्ठ भाग पर निम्नलिखित लेख उत्कीर्ण हैं—

"सं० १५१८ वर्षे माघ सुदि २ शनौ षटतड गीत्रे सांदिपना (सांदीपन) ···त ना सा ठालण पुत्रा वीरं धली तत्पुत्रेण सारवेला केन मातृनाछी पुण्यार्थं श्री नमिनाथ (नेमिनाथ) बिबं का (कारितं) प्र० (प्रतिष्ठितं) तपागछे। श्री हेमहंससूरि···। श्री हेमसमुद्रसूरिभिः।"

नेमिनाथ की द्वितीय मूर्ति पर सम्वत् १२१२ का यह लेख है (सं० ६३. १०८२) :

'सम्वत् १२१२ ज्येष्ठं व (वदि) ९ रान्नोसीम सुतया सन्तो सया स्व पितृं श्रेयसे श्रीनेमिनाथप्रतिमा कारिता प्रतिष्ठिता श्रीहेमसूरिभिः।'

नेमिनाथ की तृतीय मूर्ति पर सम्वत् १३२७ का लेख उत्कीर्ण है (सं० ४८. ४।१४)—

"सम्वत् १३२७ वैशाष सुदि ७ सो० (सोम) व० (वासरे) चावा सील् पुन्या ही री श्रा विकया आत्मश्रेयोर्थं श्री नेमिबिंबं कारितं प्र० (प्रतिष्ठितं) श्रीश्रीचन्द्रसूरिशिष्यश्रीवर्धमानसूरिभिः ।।"

पार्श्वनाथ

इस संग्रहालय में पार्श्वनाथ की कई महत्त्वपूर्ण प्रतिमाएं हैं, जिनमें सबसे प्राचीन अकोटा से प्राप्त रेगत द्वारा भेंट की गई मूर्ति है (सं० ६८. १८६; चित्र ३२)। इस त्रितीर्थिक के मध्य में पार्श्वनाथ एक अलंकृत सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में विराजमान हैं। इनके दाहिनी ओर ऋषभनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं, जिसके दांये चक्रेश्वरी की त्रिभंग मुद्रा में खड़ी मूर्ति है। इसके ऊपर के हाथों में चक्र, निचला दाहिना हाथ वरद तथा निचला बांया बीजपूरक लिए है। मूल मूर्ति के बांये सम्भवतः महावीर की कायोत्सर्ग मुद्रा में मूर्ति है और उनके बांये वैरोटच देवी की मूर्ति है, जिनके ऊपर के हाथों में सर्प तथा निचले दो हाथों में तलवार व ढाल है। इन दोनों विद्या देवियों के शीश के पीछे भी प्रभा है। सिंहासन के दाहिनी ओर गजारूढ़ सर्वानुभूति अपने हाथों में बीजपूरक एवं थैली लिए है तथा बांयी ओर सिंह पर अम्बिका बैठी है, जिनके दाहिने हाथ में आम्रलुम्बि व बांये से गोद में बालक को पकड़े है। सिंहासन के सामने धर्म-चक्र सहित दो मृग, भक्त तथा ग्रहों का अंकन हुआ है। मूर्ति के पीछे एक संक्षिप्त लेख उत्कीर्ण है जिससे इसके निर्माण की सूचना मिलती है :

पंक्ति १. मालसुत रे गटेन कारापित
पंक्ति २. प्रतिमा।

प्रस्तुत प्रतिमा चौलुक्य कला ९वीं शती ई० का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।

पार्श्वनाथ की अन्य मूर्तियों के लेख इस प्रकार हैं—

(१) ६३. १०८१—'संवत् ११८० माघ सुदि १३ पुख (पुष्य) पार्श्वकिन प्रतिमा कारिता।'

(२) ४८. ४।२३—'सम्वत् १५०४ प्राग्वाट श्रे० हीरा भार्या……पुत्र तेबाकेन भा० नामल भ्रातृ वरपालादि कुटुंबपुतेन श्रीपार्श्वनाथबिंबं कारितं।'

(३) ६४. ३५५—'संवत् ११४४ श्री वर्धमाण बा ग्र गछे, पासिक शावृकेण णिः य से (निःश्रेयसे) कारिता।'

(४) ४८. ४।५१—'संवत् १५७७ वर्षे माघ व० रवौ श्री माली ज्ञातीय व्य० उ० धरण भा० महू पुत्र्यो पत्तन वासि व्य० उ० बा० भा० पोमी पुत्र लुगर भा० भर भी ना…या स्वश्रेयांस श्रीपार्श्वनाथबिंबं कारितं प्र० (प्रतिष्ठितं) तपागच्छे श श्री हेम विमल सुरिभिश्श्रीरस्तु।'

(५) ४८. ४।१६—'संवत् १३७६ माह बदि २ मे श्री बृहद् गच्छे दा० श्री दिवा यें (?) सं० उ किश ज्ञा० श्रा० आस चन्द्र स०। श्र० दिदारिसिंहेन

पितृ श्रेय से श्री पार्श्वनाथ बि० (बिबं) का० (कारितं) प्र० (प्रतिष्ठितं) श्री सूरिभिः ।'

(६) ४८।४।२०—'सम्वत् १४८७ वर्षे…३ प्राग्वाट ज्ञातीय सा० वीदा भार्या वाल्ह सुत सा० सादा भार्या गोपाल सुतेन उताकेन भार्या वांपू सुत भोजा धनपालादिपरिवारयुतेन श्री पार्श्वनाथ बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्री सूरि पुरंदर श्री श्री देव सुन्दर सूरि पाद धुरंधर श्री तपागच्छ नायक श्री सोम सुन्दर सूरिभिः ।'

(७) उपर्युक्त प्रतिमाओं के अतिरिक्त पार्श्वनाथ की पंचतीर्थिक भी है (चित्र ४७), जिसके मध्य में सप्त-फणों के नीचे वह कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं (सं० ६७. ७३)। इनके दोनों ओर दो-दो तीर्थंकरों की अन्य खड़ी मूर्तियां हैं, जिनके चरणों के पास बने लाञ्छनों के पूर्णतया घिस जाने के कारण उनकी पहचान करना कठिन है। इन मूर्तियों के ऊपर एक कलात्मक तोरण है, जैसा कि राजस्थान और गुजरात में उत्तर मध्यकालीन मन्दिरों के बाह्य भाग में मिलता है। पीठिका पर ग्रहों के अतिरिक्त भक्तों की भी लघु मूर्तियां हैं। मूर्ति के पृष्ठ भाग पर संवत् १५०० का लेख उत्कीर्ण है जिससे दान-कर्ताओं के सम्बन्ध में सूचना मिलती है—

'संवत् १५०० वर्षे वैसाष सुदि १४ सोमे श्री मूलसंघे बलात्कार गणे सरस्वती गच्छे श्रीकुंदकुंदाम्नाये भट्टारक श्री पद्म नंदिस्तत्पदे श्री सुभयं प्रतत षदे श्री जिन वंदन्नि। मंडलाचार्य श्री सकलकीर्तिप्रसादात् महाराज गोविन्द चन्द्र ज्ञातीय भा० नागल सुत श्रे० देवराज भा० मेघंत सुत वीरु सुत संदई राज आशांद। श्रे नागड भा० भाउ सुत श्रे० स्यधा। समवर सारंग भा० कांह्नी तीर्थी ५ नमस्कर (नमस्कार)।'

महावीर

२४वें तीर्थंकर महावीर एक सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में बैठे हैं, जिनके दोनों ओर एक-एक चंवरधारी सेवक हैं। सिंहासन के समीप यक्ष मातंग तथा यक्षी सिद्धायिका तथा मध्य में इनका लाञ्छन सिंह बने हैं (सं० ४८.४।१७)। मूर्ति की पीठिका पर संवत् १३९२ का दान-लेख उत्कीर्ण है—

'सं० १३९२ पौष वदि ५ गुरौ श्री क० पितृव्य श्रे० सागण श्रेयार्थं ठ० (ठक्कुर) का वका केन श्री महावीर बिंबं का० (कारितं) प्र० (प्रतिष्ठितं) श्री विद्यानन्दसूरि (भिः)।'

महावीर की एक अन्य प्रतिमा पर यह लेख खुदा है—

(१) ४८. ४-१३—'सं० १३२३ वर्षे माघरवौ मह० राजा श्रेयोर्थं

प्राग्वाटज्ञातीय सुत मह० (महाराज) देवपालेन श्री महावीरबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्रीसूरिभिः।'

उपर्युक्त प्रतिमाओं के अतिरिक्त ऐसी भी कुछ जैन मूर्तियां हैं, जिनको कला-शैली के आधार पर भारत के विभिन्न प्रदेशों का माना जा सकता है।

गुजरात—

अम्बिका

बड़ौदा के समीप अकोटा से प्राप्त अम्बिका की सुन्दर मूर्ति में यक्षी अपने वाहन सिंह पर ललितासन में बैठी है (सं० ६८. १६० ; चित्र ३३)। इनके दाहिने हाथ में आम्र-लुम्बि है और बांये से अपने छोटे पुत्र प्रियंकर को पकड़े हैं, जबकि इनका बड़ा पुत्र शुभंकर बांयी ओर खड़ा है। देवी के शीश के पीछे बनी प्रभा के ऊपर ध्यानी नेमिनाथ की मूर्ति ६वीं शती ई० की बड़ी सुन्दर कृति मानी जा सकती है।

पद्मावती

गुजरात-राजस्थान से प्राप्त पद्मावती की दो मूर्तियां भी यहां उल्लेखनीय हैं। इसमें प्रथम मूर्ति में यक्षी पद्मासन में सर्प के तीन फणों के नीचे बैठी है और ऊपर ध्यानी तीर्थंकर की मूर्ति है (सं० ४८. ४।२७३)। इनके ऊपर के दो हाथों में फल तथा कमल; नीचे का दाहिना हाथ वरद मुद्रा में तथा बाये में घट है। पैरों के समीप इनका वाहन कुर्कुट अंकित है। मूर्ति १७वीं शती ई० की है।

द्वितीय प्रतिमा में वह एक गोल आसन पर ललितासन में बैठी है। इनके ऊपर के हाथों में अंकुश तथा पाश; निचला दांया वरद मुद्रा में तथा बायें में फल है। १८वीं शती में बनी इस मूर्ति के ऊपरी भाग में ध्यानी तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं (सं० ४७. १०६।१२४)।

राजस्थान—

चौमुख

प्रतिहार काल लगभग १०वीं शती में बने इस चौमुख में चारों ओर तीर्थंकरों की ध्यान मुद्रा में प्रतिमाएं हैं, परन्तु लाञ्छन के अभाव में उनकी पहचान करना कठिन है (सं० ६३. ११८७)। स्तम्भों पर स्थित शिखर के मध्य में चैत्य खिड़की तथा ऊपर कलश का अलंकरण है। दूसरे चौमुख में भी इसी प्रकार से ध्यानी तीर्थंकर प्रदर्शित किये गये हैं (सं० ४७. १०६।२०७); परन्तु यह काफी खण्डित अवस्था में है।

परिकर

तीर्थंकर प्रतिमा का परिकर राजस्थान की चौहान कला १२वीं शती ई० की श्रेष्ठ कृति है (सं० ६७. १०३)। इसके मध्य में एक विशाल प्रभा के दोनों

ओर मकर-मुख हैं और उसके दोनों ओर मालाधारी गन्धर्व-युग्म, गज-वाहक, तथा छत्र के ऊपर दिव्य वादकों का सुन्दर अंकन है (चित्र ४२)।

अम्बिका (सं० ४८. ४।३४१)

अम्बिका की एक कलात्मक मूर्ति के पृष्ठ भाग पर खुदे लेख से संवत् १३८० में उसके निर्माण की सूचना मिलती है—

'सं० १३८० वर्षे माघ सुदि ६···बलीसर ग्राम सह सामतस देव (देवी) अंबिका कारिता।'

उत्तर-प्रदेश—

चक्रेश्वरी

चक्रेश्वरी एक पूर्ण विकसित कमल पर ललितासन में विराजमान है (सं० ६७. १५२)। इनके आठ हाथों में से ६ हाथों में चक्र है; निचला दाहिना वरद में व बांये में फल है; शीश के पीछे बनी प्रभा में ध्यानी आदिनाथ की मूर्ति है। इनका वाहन गरुड़ आलीढ़ मुद्रा में पीठिका पर अङ्कित है। यह मूर्ति प्रतिहार कला १०वीं शती ई० की बनी प्रतीत होती है (चित्र ३६)।

पद्मावती

पद्मावती की मूर्ति में देवी पद्म पर ललितासन में बैठी है (सं० ७४. २८२)। इनके दांये हाथ में एक फल व बांये से सर्प पकड़े हैं। शीश के ऊपर सर्प के नौ फण बने हैं और इनका वाहन जो सर्प ही है, बांये पैर के पास अङ्कित है। गाहड़वाल कालीन १२वीं शती ई० की यह मूर्ति कला का अच्छा उदाहरण है (चित्र ३५)।

मध्य प्रदेश—

पार्श्वनाथ

मध्य प्रदेश से प्राप्त पार्श्वनाथ की इस दुर्लभ मूर्ति में उन्हें सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में दिखाया गया है। यहाँ विशेष रूप से यह उल्लेखनीय है कि पार्श्वनाथ के दोनों ओर न केवल यक्ष सर्वानुभूति और यक्षी अम्बिका का ही अङ्कन है वरन् साथ में धरणेन्द्र और पद्मावती को एक-एक सर्प के नीचे दिखाया गया है जिनके हाथ अञ्जली मुद्रा में है। लगभग ९वीं शती ई० में बनी इस प्रतिमा का ऊपरी एवं सिंहासन का कुछ भाग खण्डित हो गया है (सं. ६८. ८१)।

अम्बिका

मालवा क्षेत्र में निर्मित परमारकालीन इस मूर्ति में अम्बिका अपने वाहन सिंह पर ललितासन में बैठी है (सं० ४८. ४।११)। इनके ऊपर के दोनों हाथों में आमों के गुच्छे; नीचे वाले दांये हाथ में फल व बांये से बालक को पकड़े

हैं। इनका दूसरा बालक इनकी दांयी ओर खड़ा है। परिकर के ऊपरी भाग में ध्यानी नेमिनाथ की लघु मूर्ति स्थित है। मूर्ति के पृष्ठ भाग पर सम्वत् १२०३ का निम्नलिखित लेख उत्कीर्ण है—

'सम्वत् १२०३ वैशाख वदि ६ श्री नागर गच्छे श्री मदानदाचार्या: सव देवेन आत्मश्रेयोर्थं कारितं भ० (भगवती) अम्बिका देवि।'

बिहार—

अम्बिका

बिहार से प्राप्त अम्बिका की इस मूर्ति में यक्षी आमों से लदे पेड़ के नीचे खड़ी हैं (सम्वत् ४९. १२।३)। देवी ने पत्र-कुण्डल, विभिन्न आभूषण तथा घुटनों तक लटकती साड़ी पहन रखी है। इनके दांये हाथ में आम्र-लुम्बि व बांये से छोटे पुत्र प्रियंकर को पकड़ रखा है। इनका द्वितीय पुत्र शुभंकर, जिसके दोनों हाथ खण्डित हैं उनके दाहिनी ओर खड़ा है। इनका वाहन सिंह पद्मासन के पास बैठा है। यह सुन्दर मूर्ति पाल कला १०वीं शती में बनी प्रतीत होती है।

बंगाल—

युगलिया

युगलिया, जिसको कुछ विद्वानों ने गोमेघ एवं अम्बिका की भी संज्ञा दी है, पूरण विकसित कमलों पर ललितासन में विराजमान हैं। इन्होंने सुन्दर मुकुट, आभूषण आदि धारण कर रखे हैं। इनके दाहिने हाथों में फल व बांये में एक-एक बालक है। शीश के पीछे प्रभा है और मध्य में ध्यानी 'जिन' के ऊपर बने वृक्ष पर अन्य तीर्थंकर की ध्यान मुद्रा में मूर्ति है। पीठिका पर पांच भक्तों का अङ्कन प्राप्त है। यह मूर्ति पाल कला ११वीं शती का महत्त्वपूर्ण उदाहरण है (सं० ७५. १९६)।

कर्णाटक—

ऋषमनाथ की एक चतुर्विंशति मूर्ति के मध्य में आदिनाथ एक सिंहासन पर ध्यान-मुद्रा में विराजमान है और इनके दोनों ओर तथा ऊपर अन्य तेईस जिनों की ध्यानी मूर्तियां हैं (सम्वत् ७४. २९०; चित्र ११)। पीठिका के मध्य बने वृक्ष के दोनों ओर यक्ष एवं यक्षी खड़े हैं; बांये लाञ्छन वृषभ है और कोनों में एक-एक भक्त की लघु मूर्ति उत्कीर्ण है। यह मूर्ति उत्तर-पश्चिमी चालुक्य युगी, १०वीं श० की बनी प्रतीत होती है।

पार्श्वनाथ

कायोत्सर्ग मुद्रा में उत्कीर्ण मूर्ति के पैरों के समीप दोनों ओर एक-एक

अर्हि' का अङ्कन है जिसके आधार पर इसे पार्श्वनाथ की मूर्ति माना जा सकता है (सम्वत् ७१. ७६)। मूर्ति नग्न है और इसके पीछे एक गोल प्रभा है। समय लगभग ६वीं शती ई०।

जिन

जिन की एक मूर्ति उपर्युक्त प्रतिमा की ही भांति पद्म पर नग्न खड़ी है (सं० ६४. ४४४)। १२वीं शती के उत्तरार्द्ध में बनी इस प्रतिमा को लाञ्छन के अभाव में पहचानना कठिन है। मूर्ति सुडौल एवं भव्य है।

अम्बिका

अम्बिका की दो प्रतिमाएं हैं जिसमें वह आम के वृक्ष के नीचे, जिसके ऊपर नेमिनाथ अङ्कित है, त्रिभंग मुद्रा में खड़ी हैं। दोनों ही मूर्तियों में इनका एक पुत्र दांयी ओर सिंह पर बैठा है और दूसरा बांयी ओर खड़ा है। एक मूर्ति के दाहिने हाथ में आम्रलुम्बि है और बायां खण्डित है (सं० ७४.१२७); जबकि दूसरी मूर्ति का दाहिना हाथ टूटा है और वह बांये में फल लिए है (सं० ४८. ४।२१)। १२वीं शती में बनी इन दोनों मूर्तियों में कला की दृष्टि से भी पर्याप्त रूप से समानता है।[1]

---

१. जैन प्रतिमाओं पर उत्कीर्ण लेखों की प्रतिलिपि श्री शीतलप्रसादतिवारी, राष्ट्रीय संग्रहालय, ने तैयार की है और इसके लिए हम उनके आभारी हैं

अध्याय ६

प्रिन्स आफ वेल्स संग्रहालय, बम्बई में जैन प्रस्तर प्रतिमाएं

स्वर्गीय डा० मोतीचन्द्र जी के महान् व्यक्तित्व एवं उनके कठिन परिश्रम के फलस्वरूप बम्बई का प्रिन्स आफ वेल्स संग्रहालय संसार के प्रमुख संग्रहालयों में से एक माना जाता है। इस संग्रहालय में मूर्तियों, लघुचित्रों, काष्ठ एवं हाथी-दांत एवं अन्य कला-कृतियों का अमूल्य संग्रह है जिसको अध्ययन करने हेतु देश-विदेश के अनेक विद्वान समय-समय पर यहाँ आते रहते हैं। यहां के मूर्ति कला कक्षों में अनेक दुर्लभ जैन प्रस्तर प्रतिमाएं भी हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत है। भारत के विभिन्न भागों से प्राप्त जैन मूर्तियां लगभग दूसरी शती ई० से लेकर १२वीं शती ई० की यहाँ पर प्रदर्शित हैं।

प्राचीनतम जैन प्रतिमाओं में जो कि संग्रहालय के मुख्य हाल में प्रदर्शित हैं, मथुरा से प्राप्त कुषाण कालीन लगभग दूसरी शती ई० के जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाओं के छः शीर्ष हैं (सं० ९३, ९४, ९७, ९८, १०० और १०२)। इनमें से अधिकतर के केश घुंघराले ढंग में सजे हैं और केवल दो में उनका केश विन्यास इस तरह का है कि जैसे मानो कलाकार ने (मारवाड़ी) ढंग की पगड़ी पहिना रखी हो जैसा कि मथुरा एवं लखनऊ के संग्रहालयों में रखी कुछ जैन प्रतिमाओं में देखने को मिलता है। इनमें अधिकतर मूर्तियो की नाक खण्डित हो चुकी हैं परन्तु भरे मुख और सुन्दर आखों से उस प्राचीन युग की महान कला का सहज ही में आभास हो जाता है। यह सभी शीर्ष चिटकीदार लाल बलुए पत्थर के बने हैं।

मथुरा से मिले इन जैन शीर्षों क अतिरिक्त शेष जैन मूर्तियां राजस्थान, गुजरात व दक्षिण भारत से प्राप्त हैं और उत्तर मध्य काल के लगभग १२वीं शती ई० की हैं। इनमें पहली मूर्ति प्रथम तीर्थंकर भगवान आदिनाथ की है (सं० १३३)। दक्षिण-पश्चिमी राजस्थान अथवा गुजरात में बनी १२वीं शती ई० की श्वेत सङ्गमरमर की इस प्रतिमा में ऋषभनाथ एक सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में विराजमान हैं। इनके वक्ष पर श्री वत्स चिह्न अङ्कित है। तथा दोनों ओर एक-एक चंवरधारी सेवक खड़ा है। शीर्ष के पीछे उत्कीर्ण कमल-रूपी

प्रभा के दोनों ओर एक-एक तीर्थंकर की ध्यान मुद्रा में अन्य मूर्तियां हैं और उनके ऊपर मालाधारी गन्धर्व उड़ते हुए दीखते हैं। मूल मूर्ति के शीर्ष के ऊपर बने त्रिछत्र के दोनों ओर गज सवार हैं, जिनके हाथ अंजली मुद्रा में हैं और उनके मध्य आदिनाथ की कैवल्य प्राप्ति पर शंख बजाता एक दिव्य बादक दिखाया गया है। आदिनाथ की मूर्ति के दोनों ओर शार्दूलों का भी अंकन है। भगवान् के सिंहासन के दोनों ओर यक्ष एवं यक्षी की आसन मूर्तियां बनी हैं। यह मूर्ति १२वीं शती ई० की बनी प्रतीत होती है।

गुजरात या राजस्थान से ही प्राप्त एक अन्य संगमरमर की मूर्ति में तीर्थंकर को ध्यान मुद्रा में दर्शाया गया है (सं० २४८)। इनके हाथ व पैरों की उंगलियां तथा नासिका खण्डित हो गई हैं।

राजस्थान में लगभग १०वीं शती ई० में निर्मित हुई एक मूर्ति में तीर्थंकर को एक आले में कायोत्सर्ग मुद्रा में दिखाया गया है जिसके ऊपरी भाग में कीर्तिमुख बना है (सं० २३५-४२६)। इस अत्यन्त सुन्दर एवं कलात्मक मूर्ति में वह धोती धारण किए हैं जिससे विदित होता है कि श्वेताम्बर सम्प्रदाय के जैनियों द्वारा इस मूर्ति की पूजा हेतु प्रतिष्ठापना की गई थी। मूर्ति के बांयी ओर गज बना है और उसके साथ शार्दूल भी अङ्कित है।

राजस्थान की सङ्गमरमर में उत्कीर्ण एक लेख-युक्त मूर्ति में तीर्थंकर कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं (सं० ११७-२३०)। इनके दोनों ओर चंवरधारी सेवकों के अतिरिक्त चार-चार बैठी देवियों को भी अङ्कित किया गया है। मुख्य मूर्ति के सिर के दोनों ओर गन्धर्व युग्म के अतिरिक्त दो पंक्तियों में दिव्य गायकों का भी सुंदर चित्रण है तथा पैरों के समीप दानकर्ता एवं उसकी पत्नी की मूर्तियां हैं। १२वीं शती ई० की इस श्वेताम्बर-मूर्ति में तीर्थंकर की धोती पर पहनी गई मेखला के ऊपर कीर्ति-मुख बना है।

तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ की प्रतिमाएं सामान्यतः दुर्लभ हैं। जैसलमेर के पीछे पत्थर की एक ध्यानस्थ मूर्ति में उनकी विशाल आंखें एवं श्रीवत्स चिह्न बनाया गया है। १२वीं शती ई० की इस मूर्ति की पीठिका के पृष्ठ भाग पर एक सक्षिप्त लेख भी उत्कीर्ण है (सं० १२८)।

नासिका जिले में स्थित अंकयगढ़ (दुर्ग) से प्राप्त १२वीं शती ई० की कई जैन मूर्तियां भी इसी संग्रहालय में प्रदर्शित हैं। इसमें ऋषभनाथ की त्रितीर्थी पर्याप्त रूप से खण्डित होने पर भी काफी सुन्दर है। इसमें मुख्य मूर्ति के अगल-बगल में जो तीर्थंकर प्रतिमाएं हैं, उनके केश भी कन्धों पर पड़े हैं तथा प्रत्येक के वक्ष पर श्री वत्स चिह्न बना है। मध्य में स्थित प्रतिमा के

ऊपर त्रिछत्र है व उसके दोनों ओर गज सवार व मध्य में शंख वादक बना है। सामने नीचे मूर्ति के दानकर्ताओं की लघु प्रतिमाएँ हैं। यह प्रतिमाएँ दिगम्बर सम्प्रदाय के लिए बनी प्रतीत होती हैं।

उपर्युक्त मूर्ति के समीप ही ऋषभनाथ की पंचतीर्थी भी प्रदर्शित है (सं० १११)। इसमें भी उपर्युक्त मूर्ति की ही भांति प्रत्येक के वक्ष पर श्रीवत्स चिह्न है तथा केश कन्धों पर लटक रहे हैं। दोनों ओर चंवरधारी सेवक व दानकर्ता अपनी पत्नी सहित बैठे दिखाए गए हैं। यह मूर्ति भी काफी खण्डित है।

अंकयगढ़ से प्राप्त एक अन्य पंचतीर्थी प्रतिमा में मूल प्रतिमा मध्य में ध्यानस्थ मुद्रा में है तथा उसके दोनों ओर एक-एक खड़े व बैठे तीर्थंकरों की अन्य चार मूर्तियां हैं। इसके भी ऊपरी भाग पर त्रिछत्र, गजवाहक व शंख वादक बने हैं। सिंहासन को दो सिंह व एक गज उठाए हैं तथा सामने एक चक्र के दोनों ओर एक-एक मृग बना है (सं० ११५)।

२३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की एक मूर्ति में उनको सात फणों की छाया में कायोत्सर्ग मुद्रा में दिखाया गया है। इनके पीछे भी सर्प का अङ्कन है (सं० १२३)। शीर्ष के पीछे प्रभा बनी है तथा पैरों के समीप चंवरधारी सेवकों के अतिरिक्त इनके यक्ष धरणेन्द्र एवं यक्षी पद्मावती की शीश रहित मूर्तियां हैं। मूर्ति दिगम्बर जैन सम्प्रदाय की है।

पार्श्वनाथ की एक पंचतीर्थी के मध्य में पार्श्वनाथ ध्यान मुद्रा में फणों के नीचे बैठे हैं तथा दोनों ओर एक-एक दिगम्बर तीर्थंकर खड़े हैं (सं० १२२)। मुख्य मूर्ति के हाथ खण्डित हो गए हैं। इनके शीश के दोनों ओर एक-एक तीर्थंकर की अन्य ध्यान मुद्रा में मूर्तियां है।

पार्श्वनाथ की एक महत्त्वपूर्ण प्रतिमा में जो अब काफी टूटी हुई है उनको सर्प के सात के स्थान पर केवल तीन फणों के नीचे ध्यान मुद्रा में बिठाया गया है। इनके पीछे भी सर्प के शरीर का भाग स्पष्ट दीखता है (सं० १४१)। इनके दोनों ओर एक-एक नग्न तीर्थंकर कायोत्सर्ग मुद्रा में व उनके ऊपर एक-एक अन्य तीर्थंकर ध्यान मुद्रा में विराजमान हैं। सिंहासन पर जिसका सामने का भाग हाथी उठाएं हैं, धर्म-चक्र की पूजा करता हुआ एक-एक उपासक बना हुआ है। यह पंचतीर्थी भी अङ्कयगढ़ से प्राप्त हुई थी।

२४वें तीर्थंकर भगवान् महावीर की चालुक्य कालीन १२वीं शती ई० की काले चमकदार पत्थर की मूर्ति में वह एक पद्म पर कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं। (सं० ११६)। पीठिका पर इनका लाञ्छन सिंह अङ्कित है। मूर्ति के दाहिनी

ओर इनका यक्ष मातंग बना है, जिसका दाहिना हाथ वरद मुद्रा में है तथा वह बाँये में बीजपूरक लिए है। यक्षी सिद्धायिका की मूर्ति बांयी ओर है। उसने आभूषण पहन रखे हैं। उसका भी दाहिना हाथ वरद मुद्रा में है तथा वह बांये में पुस्तक पकड़े हुए है। मुख्य मूर्ति के ऊपर बने त्रिछत्र के ऊपर कीर्ति मुख बना है।

उपर्युक्त तीर्थंकर प्रतिमाओं के अतिरिक्त कई जैन यक्ष-यक्षियों की भी मूर्तियां प्रदर्शित हैं। इनमें एक मूर्ति में यक्ष को सुखासन में बैठा दिखाया गया है (सं० २८१)। परन्तु उनका वाहन नहीं है। इस चतुर्भुजी मूर्ति ने क्रमशः पद्म, अंकुश, पाश ले रखा है तथा उनका निचला बाँया हाथ वरद-मुद्रा में है। आभूषणों से पूर्ण रूप से सुसज्जित इस मूर्ति के करण्ड-मुकुट के ऊपर एक सर्प फण बना है। मूर्ति चालुक्य कला १२वीं शती ई० की कृति है।

उपर्युक्त प्रतिमा के समीप एक बैठी यक्षी की मूर्ति है। यह भी चतुर्भुज है (सं० २१५) और अपने ऊपर के दोनों हाथों में दो सर्प लिए है तथा इनके नीचे के दोनों हाथ वरद मुद्रा में हैं। इनका वाहन कच्छप (कछुआ) बांये घुटने के नीचे अङ्कित है। इन्होंने भी कुण्डल, आभूषण आदि धारण कर रखा है। इनके करण्डमुकुट पर एक तीर्थंकर की ध्यानस्थ मूर्ति है तथा सबसे ऊपर सर्प के तीन फण बने हैं। यह मूर्ति भी चालुक्य कला की १२वीं शती ई० की बनी प्रतीत होती है।

चालुक्य शैली की एक अन्य मूर्ति में यक्षी को ललितासन में दिखाया गया है। इनके ऊपर के दो हाथों में खण्डित अंकुश तथा पाश है, सामने के दाहिने हाथ में कमल है, जबकि सामने का बांया हाथ खण्डित है। देवी ने अनेक आभूषण पहन रखे हैं तथा शीश पर धारण किए करण्ड मुकुट पर सर्प फण बना है। देवी के दोनों ओर मकर मुखों से लताएं निकल रही है। १२वीं शती ई० की इस मूर्ति में जिन प्रतिमा नहीं बनी है परन्तु कला की दृष्टि से यह पूर्णतया अन्य यक्षी मूर्तियों से साम्य रखती है (सं० १२१)।

जैन यक्षिणी की काले पत्थर की एक अन्य १२वीं शती ई० की बैठी मूर्ति में उनके ऊपर के दो हाथों में अंकुश व पाश है, निचला दाहिना हाथ वरद मुद्रा में है तथा बांये में सर्प है। यह मूर्ति भी अनेक आभूषणों से युक्त है। इनके करण्ड-मुकुट पर एक लघु जिन मूर्ति है तथा सबसे ऊपर सर्प का एक फण भी बना है (सं० १३०)। देवी के शीश के पीछे प्रभा है। देवी का वाहन जो सम्भवतः एक पक्षी प्रतीत होता है, पूर्णतया स्पष्ट नहीं है।

इन प्रतिमाओं के अतिरिक्त राजस्थान एवं गुजरात से प्राप्त श्वेत सङ्गमरमर की कई अन्य मूर्तियां हैं जो प्रायः सभी लगभग १२वीं शती ई० की

लगती हैं । इनमें ही एक किसी लघु जैन देवालय के शिखर का भाग है जिसके मध्य तीर्थंकर की ध्यान मुद्रा में मूर्ति बनी है । इनके वक्ष पर पद्म रूपी श्री वत्स चिह्न बना है । शिखर के दोनों ओर मकर-मुखों से कल्प-वल्ली निकल रही है (सं० ४००) ।

अन्य प्रतिमाओं के अतिरिक्त एक जैन उपासक की मूर्ति भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है जो कि एक ऊंचे आसन पर बैठे हैं । इनके ऊपर सुन्दर तोरण है जिसके मध्य में तीर्थंकर की ध्यानस्थ प्रतिमा है तथा दाहिनी ओर ब्रह्मा व बांयी ओर सरस्वती की खण्डित मूर्ति स्थित है । उपासक के दोनों ओर उड़ते हुए गन्धर्व बने हैं । मूर्ति की पीठिका पर सम्वत् १२४२ का लेख उत्कीर्ण है (सं० १२७) ।

उपासक की एक अन्य मूर्ति में वह मध्य में खड़े हैं तथा उनके हाथ अंजली मुद्रा में हैं । इनके पैरों के समीप दानकर्त्ता एवं उसकी पत्नी की लघु प्रतिमाएं भी हैं जो हाथ जोड़े बैठे हैं (सं० १२४) ।

उपासक की एक अन्य मूर्ति दोहद, जिला पंचमहल, से काले पत्थर की १२वीं शती ई० की मूर्ति भी यहाँ प्रदर्शित है इनके बांयी ओर एक सेविका आदर भाव से खड़ी दिखाई गई है (सं० १२६) । उत्तर भारत के प्रायः सभी जैन मन्दिरों में इस प्रकार की प्रतिमाएं देखने को मिलती हैं ।

अध्याय ७

प्रिन्स आफ वेल्स संग्रहालय, बम्बई में जैन कांस्य प्रतिमाएं

प्रिन्स आफ वेल्स संग्रहालय, बम्बई में जैन कांस्य प्रतिमाओं का बड़ा महत्त्वपूर्ण संग्रह है। इन प्रतिमाओं में केवल दो को छोड़कर जो चोपड़ा तथा श्रवणबेलगोला से प्राप्त हुई थीं अन्य मूर्तियां पश्चिमी भारत में बनी प्रतीत होती हैं। इस संग्रहालय की सबसे प्राचीन जैन कांस्य मूर्ति प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ का चौबीस-पट्ट है (सं० ४२), जो चोपड़ा, जिला खानदेश में कई वर्ष पूर्व प्राप्त हुआ था। दो फीट ऊँची एवं आठवीं शती ई० में निर्मित इस अत्यन्त कलात्मक मूर्ति के मध्य में आदिनाथ एक पद्म पर जो त्रिरथ पीठिका पर स्थित है, कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं। इनके घुंघराले केश दोनों ओर कन्धों पर लटक रहे हैं। इनके वक्ष पर सोने का श्री-वत्स चिह्न अङ्कित है तथा वह नीचे के अधोभाग में धोती पहने हैं जिसकी गांठ सामने लगी है। इनके शीश के पीछे एक सुन्दर प्रभा बनी है तथा दोनों ओर एक-एक चंवरधारी सेवक खड़ा है। इनके अतिरिक्त दोनों ओर ही तीन-तीन तीर्थंकर ध्यान मुद्रा में हैं। आदिनाथ के शीर्ष के पीछे प्रभा के दोनों ओर चार-चार तीर्थंकर विराजमान हैं। इनके ऊपर एक पंक्ति में छः तथा उनके ऊपर अन्य पंक्ति में तीन अन्य तीर्थंकरों की ध्यानस्थ प्रतिमाएं हैं। सबसे ऊपर की पंक्ति में मध्य में पांच फणों की छाया में तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की मूर्ति है। मूल प्रतिमा के बाह्य भाग पर दोनों ओर नीचे से ऊपर तक क्रमशः गज-शार्दूल, वीणावादक, मृदङ्गवादक, ढपली-वादक, तथा हाथ जोड़े दिव्य उपासिकाएं तथा माला-धारी गन्धर्व उड़ते दिखाए गए हैं और सबसे ऊपर मध्य में त्रिछत्र के ऊपर कलश बना है।

सिंहासन के दाहिनी ओर एक पेड़ के नीचे किरीटधारी यक्ष है जो देखने में कुबेर प्रतीत होता है। इसके दाहिने हाथ में बीजपूरक व बांये में नकुल है। इसी प्रकार दूसरी ओर सम्भवतः यक्षी अम्बिका की मूर्ति है जो आम्रवृक्ष के नीचे दाहिने हाथ में एक आम्रलुम्बि तथा बांये से एक बालक को पकड़े है परन्तु इनका वाहन सिंह नहीं दर्शाया गया है। सिंहासन के मध्य में धर्म-चक्र

स्थित है और इसके दोनों ओर एक-एक मृग है। इसके निचले भाग पर नवग्रह बने हैं। यह प्रतिमा जैन मूर्तियों में अद्वितीय है।

दूसरी दुर्लभ जैन प्रतिमा बाहुबलि की है जो कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं (सं० १०५)। यद्यपि एलोरा, बादामी, म य प्रदेश तथा अन्यस्थानों में भी ऐसी मूर्तियाँ हैं, परन्तु श्रवणबेलगोला क्षेत्र से मिली चालुक्य युगीन ६वीं शती ई० की यह कांस्य मूर्ति जैन मूर्ति कला के क्षेत्र में अद्वितीय स्थान रखती है। श्रवणबेलगोला जैन धर्म के अनुयायियों के लिए एक पुनीत स्थल है और यहां ही विश्व प्रसिद्ध लगभग ५७ फीट ऊँची गोम्मटेश्वर की विशाल मूर्ति स्थित है (चित्र ५०), जिसका निर्माण गंग सेनापति चामुण्डराय ने लगभग ९८३ ई० में करवाया था।

एक फुट आठ इंच ऊंची इस नग्न कांस्य मूर्ति में उनके केश ऊपर की ओर हैं तथा जटाएं कन्धों पर पड़ी हुई हैं। संसार त्यागने पर घोर तपस्या में लीन होने के कारण उनके शरीर से अनेक लताएं लिपट गई थीं, जिसको इस मूर्ति में बड़ी सुन्दरता से कुशल कलाकार ने दर्शाया है। उनकी सीधी नासिका, नीचे का भारी होंट, लम्बे कान, एवं सुडोल शरीर की बनावट के कारण प्रायः सभी कलाविदों ने इस मूर्ति की भरपूर प्रशंसा की है (चित्र १३)।

मध्यकाल में राजस्थान तथा गुजरात में जैन धर्म का अत्यधिक प्रचार था, जिसके फलस्वरूप अनेक जैन धर्म से सम्बन्धित देवी-देवताओं की मूर्तियों का पूजा हेतु निर्माण हुआ। इस काल में अधिकतर लघु कांस्य मूर्तियों का ही विशेष रूप से निर्माण हुआ जो कि न केवल मन्दिरों में ही वरन् जैन उपासकों के घरों में भी प्रतिष्ठापित की गईं। कला की दृष्टि से ये मूर्तियां एक ही प्रकार की हैं और अधिकतर पीतल की हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कलाकारों ने मूर्तियों की बाह्य रचना पर विशेष ध्यान न देकर उन्हें केवल पूजा की वस्तु मानकर ही उनकी रचना की। यही कारण है कि राजस्थान व गुजरात में बनी असंख्य मूर्तियां अधिकतर एक ही प्रकार की हैं। राजस्थान में वसन्तगढ़ तथा गुजरात में अकोटा से जो धातु की प्रतिमाएं मिली हैं उनमें मूर्तिकला की दृष्टि से प्रायः अधिकतर विशेषताएं सामान्य ही हैं। अधिकतर मूर्तियों में बाह्य आडम्बर का अभाव प्रतीत होता है। इन मूर्तियों में तीर्थंकर को त्रिछत्र के नीचे आसन अथवा सिंहासन पर विराजमान दिखाया गया है और उनके दोनों ओर चंवरधारी सेवक व ऊपर उड़ते गन्धर्वों का अङ्कन है। पीठिका पर सामने धर्म-चक्र को घेरे दो मृगों के अतिरिक्त नवग्रह का भी

अङ्कन मिलता है। इनके अतिरिक्त प्रत्येक तीर्थंकर का यक्ष एवं यक्षिणी उनके आसन के दोनों ओर दिखाए गए हैं। आदिनाथ, पार्श्वनाथ, सुपार्श्वनाथ की प्रतिमाओं के अतिरिक्त शेष तीर्थंकरों की पहचान के लिए मूर्तियों के पृष्ठ भाग पर उत्कीर्ण लेखों से ही सहायता लेनी होती है। इन लेखों में मूर्ति के निर्माण तिथि के अतिरिक्त मूर्तियों के दानकर्त्ता की वंशावली तथा कभी-कभी कुछ विशेष 'गच्छों' के नामों का भी पता चलता है जो कि उस समय पनप रहे जैन धर्म के इतिहास के लिए भी परम उपयोगी है। ऐसी मूर्तियाँ जैन मन्दिरों के अतिरिक्त भारत एवं विदेशों के अनेक संग्रहालयों में भी प्रदर्शित हैं। जो स्थिति मध्य युग में बौद्ध धर्म की पूर्वी भारत में थी, लगभग वही स्थिति इस काल में जैन धर्म की पश्चिमी भारत में भी थी। नालन्दा, कुर्कीहार, फतेहपुर तथा अन्य स्थानों से असंख्य बौद्ध कांस्य एवं पाषाण मूर्तियां पूर्वी भारत से प्राप्त हुई हैं। राजस्थान व गुजरात के अनेक जैन भण्डारों में तथा जैन मन्दिरों में तिथि युक्त जैन मूर्तियां उपलब्ध हैं जिनका विस्तार से अध्ययन आवश्यक है।

प्रिन्स आफ वेल्स संग्रहालय में इस समय पश्चिमी भारत से प्राप्त लगभग इक्कीस जैन प्रतिमाएं उपलब्ध हैं जो ईस्वी ८८७ से १४२७ के समय की बनी है। कला की दृष्टि से भी इन मूर्तियों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। इनमें तीर्थंकरों के अतिरिक्त कई त्रितीर्थी तथा पंचतीर्थी प्रतिमाएं भी हैं। पीतल की बनी इन सभी मूर्तियों में तीर्थंकर को ध्यान मुद्रा में बैठे दिखाया गया और साथ में उनके यक्ष एवं यक्षिणियों का अङ्कन है। इनका संक्षेप में वर्णन इस प्रकार है—

प्रथम तीर्थंकर मूर्ति में 'जिन' एक सिंहासन पर विराजमान हैं और इनके दोनों ओर एक-एक चंवरधारी सेवक खड़ा है (सं० ६७,१)। पीठिका से निकलते हुए कमल के ऊपर दाहिनी ओर यक्ष एवं बांयी ओर यक्षिणी का अङ्कन है तथा सामने अष्ट-ग्रहों व प्रभा के ऊपर मालाधारी गन्धर्व है। मूर्ति के पृष्ठ भाग पर उत्कीर्ण लेख से ज्ञात होता है कि यह वि० सं० ९४४ (८८७ ई०) में बनी थी।

उपर्युक्त जिन प्रतिमा से काफी साम्यता रखती हुई भगवान ऋषभनाथ की मूर्ति जिनकी पहचान कन्धों पर पड़े हुए उनके केशों से की जा सकती है (सं० ६७. ६८) अब पर्याप्त रूप से नष्ट हो चुकी है। सिंहासन के दोनों ओर इनका यक्ष गोमुख तथा यक्षी चक्रेश्वरी की लघु मूर्तियां हैं। यह भी लगभग ९वीं शती ई० की कृति है।

प्रिन्स आफ वेल्स संग्रहालय में पार्श्वनाथ की नौ मूर्तियां विद्यमान हैं। इसमें सबसे प्राचीन प्रतिमा ९वीं शती ई० की है (सं० ६७. ६), पार्श्वनाथ सर्प फणों की छाया में ध्यान मुद्रा में विराजमान हैं। पार्श्वनाथ की १०वीं शती ई० की एक मूर्ति में (सं० ६७. २३) वह पांच फणों के नीचे बैठे हैं और यक्ष धरणेन्द्र तथा यक्षी पद्मावती जो तीर्थंकर मूर्ति के दोनों ओर हाथ जोड़े हैं, के शरीर के नीचे का आधा भाग सर्प रूपी बना है जो सामान्यतया प्रस्तर प्रतिमाओं की अपेक्षा कांस्य प्रतिमाओं में कम ही मिलता है।

पार्श्वनाथ की एक त्रितीर्थी प्रतिमा, जिसके पृष्ठ भाग पर वि० सं० ११११० (१०५३ ई०) का अस्पष्ट लेख उत्कीर्ण है के दोनों ओर ऋषभनाथ एवं महावीर की कायोत्सर्ग मुद्रा में मूर्तियां स्थित हैं और उनके पैरों के समीप पीठिका से निकलते हुए पद्मों पर धरणेन्द्र एवं पद्मावती की आसन मूर्तियां बनी हैं। मूल प्रतिमा के शीश के ऊपर बने सर्प के सप्त फणों का अङ्कन बड़ी सुन्दरता से हुआ है। पार्श्वनाथ के वक्ष पर अंकित श्रीवत्स चिह्न में चांदी का प्रयोग हुआ है (सं० ६७. १०)।

पार्श्वनाथ की कई त्रितीर्थी प्रतिमाओं के अतिरिक्त एक पंचतीर्थी प्रतिमा भी इस संग्रहालय में विद्यमान है (सं० ६७. २४)। लगभग १२वीं शती ई० में निर्मित हुई इस मूर्ति के मध्य में पार्श्वनाथ सर्प फणों के नीचे ध्यान मुद्रा में विराजमान हैं। इनके दोनों ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े आदिनाथ एवं महावीर की मूर्तियों के ऊपर एक-एक अन्य तीर्थंकर की ध्यान मुद्रा में लघुमूर्ति स्थित है। नीचे सामने वाले भाग पर धरणेन्द्र व पद्मावती का अन्य मूर्तियों की भांति अंकन है।

इसी संग्रहालय में नेमिनाथ की मूर्ति भी है जिसके पृष्ठ भाग पर वि० सं० १२२८ (११७१ ई०) का लेख उत्कीर्ण है (सं० ६७. २०)। अन्य मूर्तियों की ही भांति इस मूर्ति में नेमिनाथ के दोनों ओर चंवरधारी सेवकों के अतिरिक्त उनके यक्ष एवं यक्षी का अंकन प्राप्त है। नेमिनाथ की इस प्रकार की मूर्तियां कम ही प्रकाश में आई हैं।

उपर्युक्त नेमिनाथ की मूर्ति से साम्यता रखती २४वें तीर्थंकर महावीर की भी मूर्ति है। इसमें इनके शीश के पीछे पद्म-रूपी प्रभा है तथा इनकी आंखों में चांदी लगी हुई है। कला की दृष्टि से यह मूर्ति कोई अच्छा उदाहरण नहीं मानी जा सकती है। मूर्ति के पीछे सं० १२४३ (११८६ ई०) के लेख से ज्ञात होता है कि इसका निर्माण बोधरदेव एवं पूनसिरि के पुत्र बहुड़क ने किया था तथा धीरप्रभ सूरि ने इसकी प्रतिस्थापना की थी (सं० ६७. १९)।

यहाँ पर पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ की चौबीसी भी उल्लेखनीय है (सं० ६७. १७), जिसका निर्माण १५वीं शती ई० के पूर्वार्द्ध में हुआ था। मध्य में धर्मनाथ एक गज-सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में विराजमान हैं। इनके दोनों ओर एक-एक तीर्थंकर जो पार्श्वनाथ तथा सुपार्श्वनाथ प्रतीत होते हैं, सर्पफणों के नीचे कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं। शेष तीर्थंकर पंक्तियों में प्रभा तोरण के ऊपरी भाग पर ध्यान मुद्रा में प्रदर्शित किए गए हैं। मूल मूर्ति के दोनों ओर यक्ष, किन्नर तथा यक्षिणी कन्दर्पा का सुन्दर अंकन प्राप्त है। मकर-तोरण के ऊपरी भाग में कलश बना है। मूर्ति के पीछे वि० सं० १४८४ (१४२७ ई०) का लेख उत्कीर्ण है।
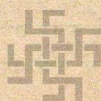
अध्याय ८

राजस्थान के संग्रहालयों में जैन प्रतिमाएं

राजस्थान का जैन धर्म एवं कला के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान है। यद्यपि राजस्थान से जैन धर्म से सम्बन्धित कुषाण कालीन कोई विशेष महत्त्वपूर्ण अवशेष उपलब्ध नहीं हैं, तो भी गुप्त काल के एवं मध्यकालीन अनेक देवालयों में पाषाण एवं धातु की प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं। ओसिया, आबू, राणकपुर, चित्तौड़गढ़, सांगानेर आदि स्थानों पर बने अनेक जैन मन्दिर आज भी जैन धर्म एवं कला की गौरव गाथा बताते हैं। पारानगर आदि स्थानों से जो विशालकाय जैन मूर्तियां प्राप्त हुई हैं, वह भारतीय कला के क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। सम्पूर्ण राजस्थान ही एक प्रकार से संग्रहालय है क्योंकि वहां के प्रत्येक भाग पर पुरातत्त्व के कुछ-न-कुछ अवशेष आज भी विद्यमान हैं। मध्यकाल में हरिभद्र सूरि, उद्योतन सूरि आदि महान् प्रचारकों के कारण एवं राजपूत राजाओं की धार्मिक सहिष्णुता के कारण जैन धर्म वहां काफी प्रचलित हो गया और जैन धर्म के अनुयायियों ने अनेक मूर्तियों का निर्माण करवाया जो देवालयों के अतिरिक्त वहां के अनेक संग्रहालयों में भी प्रदर्शित हैं। इन मूर्तियों को समय-समय पर देखने एवं अध्ययन करने का जो हमें अवसर मिला, उसी के आधार पर कुछ निम्नलिखित पंक्तियां यहां प्रस्तुत कर रहे हैं।

साहित्यिक एवं शिलालेखों के आधार पर यह प्रतीत होता है कि राजस्थान में जैनियों के २३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की पूजा विशेष रूप से प्रचलित थी। पार्श्वनाथ की कई पाषाण मूर्तियां वहां के संग्रहालयों में प्रदर्शित हैं। उदाहरणार्थ कोटा संग्रहालय में पार्श्वनाथ की चार मूर्तियां हैं, जो लगभग ९वीं शती ई० की बनी प्रतीत होती हैं। आबू से प्राप्त मूर्ति में, पार्श्वनाथ एक पूर्ण विकसित पद्म पर कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं। इनके शीश के ऊपर सप्त सर्प फण दर्शाए गए हैं तथा दोनों ओर नागों की मूर्तियां प्रदर्शित हैं। ऐसी ही एक सुन्दर मूर्ति राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में भी प्रदर्शित है। प्रस्तुत मूर्ति में अन्य तीर्थंकर ध्यान मुद्रा में दिखाए गए हैं। ऐसी

प्रतिमाओं को 'त्रितीर्थी' कहा जाता है। आबू क्षेत्र से ऐसी ही पार्श्वनाथ की एक अन्य त्रितीर्थी में उनके पैरों के समीप यक्ष एवं यक्षी का भी सुन्दर अंकन किया गया मिलता है। रायगढ़ से भी इसी की एक समकालीन मूर्ति कोटा संग्रहालय में रखी है। कोटा जिले में बरन नामक स्थान से भी पार्श्वनाथ की मूर्ति मिली है परन्तु यहां वह सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में विराजमान हैं और इनके दोनों ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में तीर्थंकर दर्शाए गए हैं।

भरतपुर संग्रहालय में भी पार्श्वनाथ की कई कलात्मक पाषाण मूर्तियां विद्यमान हैं। इनमें से सबसे प्राचीन मूर्ति बच्चेन नामक स्थान से प्राप्त हुई है। मूर्ति पर सम्वत् १०७७ (१०२० ई०) का एक पंक्ति का लेख उत्कीर्ण है। पार्श्वनाथ एक सुन्दर आसन पर सर्प-फणों की छाया में, जो काफी टूट गए हैं, ध्यान मुद्रा में बैठे हैं। इनके घुंघराले केश, वक्ष पर श्रीवत्स चिह्न तथा सुन्दर शरीर की बनावट से स्पष्ट होता है कि इसकी रचना किसी बड़े कुशल शिल्पी ने की थी। इनके दोनों ओर एक-एक चंवरधारी सेवक है। पार्श्वनाथ की एक दूसरी मूर्ति, उपर्युक्त वर्णित मूर्ति की ही भांति ध्यान मुद्रा में विराजमान है। इनके दोनों ओर चंवरधारी सेवकों के अतिरिक्त, सर्प-फणों के दोनों ओर मालाधारी गन्धर्व तथा उसके समीप ही दो गजों के मध्य दिव्य वादक, जिन की कैवल्य प्राप्ति पर हर्ष-ध्वनि के लिए मृदंग बजाता दिखाया गया है। मूर्ति पर वि० सं० ११०९ (१०५२ ई०) का तीन पंक्तियों का लेख उत्कीर्ण है। इन्हीं तीर्थंकर की एक विशालकाय मूर्ति में, जो जघीना से प्राप्त हुई है, सर्प-फणों के चिह्न स्पष्ट दीखते हैं। यह मूर्ति लगभग ११वीं शती ई० की है।

मेड़ता से प्राप्त पार्श्वनाथ की ध्यान मुद्रा में बैठी मूर्ति आजकल जोधपुर संग्रहालय में रखी हुई है। श्वेत संगमरमर की बनी इस मूर्ति की पीठिका पर सम्वत् १६७७ का पांच पंक्तियों का लेख खुदा है जिससे इस प्रतिमा के बारे में अन्य सूचना भी प्राप्त होती है।

भरतपुर संग्रहालय में जघीना से प्राप्त किसी तीर्थंकर मूर्ति का वक्ष प्रदर्शित है। इनके घुंघराले केश कन्धों पर पड़े तथा लम्बे कान हैं। यह प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ का वक्ष प्रतीत होता है और हमें उत्तर भारत से प्राप्त तथा अब कला संग्रहालय, बोस्टन में प्रदर्शित आदिनाथ के वक्ष की याद दिलाता है जिसे वर्षों पूर्व डा० आनन्द कुमार स्वामी ने महावीर की मूर्ति बताकर प्रकाशित किया था। कला की दृष्टि से भरतपुर संग्रहालय की मूर्ति गुप्त युगीन, लगभग ५वीं शती ई० में बनी प्रतीत होती है। आदिनाथ की एक अन्य मूर्ति

जो जैसलमेरी पीले पत्थर की बनी है, बीकानेर संग्रहालय में सुरक्षित है। इस मूर्ति पर सम्वत् १५०० का लेख उत्कीर्ण है। जैसलमेरी पत्थर की बनी एक अन्य तीर्थंकर मूर्ति प्रिंस ग्राफ वेल्स संग्रहालय, बम्बई में भी प्रदर्शित है।

राजस्थान से नेमिनाथ की भी कई पाषाण प्रतिमाएं मिली हैं। इनमें सम्भवतः सबसे अधिक सुन्दर मूर्ति कुछ वर्ष पूर्व नरहड़ नामक स्थान से प्राप्त हुई थी जो अब राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में प्रदर्शित है (चित्र १०, ब)। कसौटी पत्थर की इस मूर्ति में तीर्थंकर को कायोत्सर्ग मुद्रा में दिखाया गया है। इनके पैरों के समीप एक-एक चंवरधारी सेवक खड़ा है तथा मूर्ति के दानकर्ता एवं उसकी पत्नी हाथ जोड़े बैठे हैं। मूर्ति के वक्ष पर श्रीवत्स चिह्न है। उन्होंने धोती पहिन रखी है जिससे ज्ञात होता है कि यह मूर्ति श्वेताम्बर जैनियों द्वारा निर्मित हुई होगी। पद्मपीठ पर उनका लांछन शंख बना है। यह मूर्ति चौहान कला लगभग १२वीं शती ई० का उत्कृष्ट उदाहरण है।

नेमिनाथ की एक पूर्वमध्ययुगीन मूर्ति भरतपुर संग्रहालय में भी प्रदर्शित है। इसमें उनकी अधखुली आंखें बड़ी सुन्दरता से उकेरी गई हैं। वक्ष पर श्रीवत्स चिह्न है। इसका लांछन शंख मूर्ति की पीठिका पर स्पष्ट है। भुसावर नामक स्थान से मिली नेमिनाथ की लगभग १०वीं शती की एक शीश-रहित मूर्ति भी इसी संग्रहालय में रखी है। काले पत्थर में निर्मित इस मूर्ति की पीठिका पर सामने की ओर सम्वत् ११११० (१०५३ ई०) का एक पंक्ति का लेख उत्कीर्ण है और उसमें भी उनका नाम नेमिनाथ ही मिलता है। नेमिनाथ की एक अन्य पाषाण प्रतिमा, जो अमरसर से मिली थी, इस समय बीकानेर संग्रहालय में सुरक्षित है। इसमें भी वह उपर्युक्त मूर्तियों की भांति ध्यान मुद्रा में बैठे हैं, तथा उनका लांछन शंख उनके आसन के नीचे अंकित है। यह मूर्ति १२वीं शती ई० के मध्य में बनी प्रतीत होती है।

भगवान महावीर की पूजा भी मध्यकाल में पर्याप्त रूप से प्रचलित थी। जोधपुर के समीप ओसिया नामक ग्राम में भगवान महावीर के निमित्त बना मध्यकालीन देवालय है जिसके गर्भगृह में इनकी रत्नों से सुसज्जित एक कलात्मक मूर्ति आज भी पूजी जाती है। महावीर की एक मूर्ति अमरसर नामक स्थान से मिली थी और उसे बाद में बीकानेर संग्रहालय को हस्तान्तरित कर दिया गया था। मकराना पत्थर में बनी इस सुन्दर मूर्ति में महावीर को ध्यान मुद्रा में बैठे दिखाया गया है। मूर्ति पर सम्वत् १२३२ (११७५ ई०)

के उत्कीर्ण लेख से ज्ञात होता है कि इसकी स्थापना रत्नप्रभा सूरि द्वारा की गई थी।

जैनियों के तीसरे तीर्थंकर सम्भवनाथ की एक श्वेत संगमरमर की कलात्मक मूर्ति जो बहादुरपुर से मिली थी, अलवर संग्रहालय में प्रदर्शित है। इसमें उनको ध्यान मुद्रा में विराजमान दिखाया गया है। इनका लांछन एक घोड़ा सामने की ओर अंकित है। मूर्ति की पीठिका पर वि० सं० १५१० (१४५३ ई०) का तीन पंक्तियों का लेख उत्कीर्ण है जिससे मूर्ति की प्रतिस्थापना के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। लगभग इसी की समकालीन और जैसलमेर के पीले पत्थर में निर्मित सम्भवनाथ की एक अन्य मूर्ति बीकानेर संग्रहालय में भी प्रदर्शित है। परन्तु इसमें उनकी नासिका खण्डित हो गई है। उनका लांछन घोड़ा स्पष्ट दीखता है। मूर्ति की पीठिका पर वि० सं० १५०१ (१४४४ ई०) का लेख खुदा हुआ है।

राजस्थान के गुलाबी नगर जयपुर के समीप स्थित आम्बेर संग्रहालय में नरहड से मिली चौहान कालीन १२वीं शती ई० की बनी बीसवें तीर्थंकर मुनि सुव्रत की अत्यन्त भव्य मूर्ति प्रदर्शित है (चित्र १० अ)। काले कसौटी पत्थर की इस प्रतिमा में वह कायोत्सर्ग मुद्रा में एक पद्मासन पर खड़े दिखाए गए हैं। उनके घुंघराले केश, सीधी नासिका, लम्बे कान, आजानुबाहु तथा शरीर की बनावट आदि देखने से विदित होता है कि कलाकार ने कितने परिश्रम एवं धैर्य से इसका निर्माण किया होगा। मूर्ति के वक्ष पर श्रीवत्स चिह्न अंकित है। शरीर के निचले अधो-भाग में वह सुन्दर धोती धारण किए हैं जिससे अनुमान किया जा सकता है कि यह मूर्ति श्वेताम्बर जैनियों की पूजा हेतु निर्मित की गई होगी। मूर्ति के दोनों ओर खड़ा चंवरधारी सेवक करण्ड-मुकुट तथा अनेक आभूषणों से सुसज्जित है। उन्हीं के समीप उपासक एवं उपासिका बैठे हैं और उनके हाथ अंजलि मुद्रा में हैं। मूर्ति के सामने पीठिका पर दो कमलनालों के मध्य मुनि सुव्रत का लांछन कच्छप बना हुआ है। दुर्भाग्यवश मूर्ति के दाहिने हाथ की उंगलियां खण्डित हो गई हैं।

जैन धर्म में चौमुख, जिसे 'सर्वतोभद्र-प्रतिमा' भी कहते हैं, की पूजा अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित है। ऐसी प्राचीनतम मूर्तियां जो कुषाण काल, दूसरी शती ई० की हैं, मथुरा से प्राप्त हुई हैं। गुप्तकाल और मध्य-काल में भी यह पूजा की वस्तु रहीं। जघीना नामक स्थान से प्राप्त एक सर्वतोभद्र मूर्ति भरतपुर संग्रहालय में सुरक्षित है। इसमें चारों ओर आदिनाथ की नग्न कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ी मूर्तियां बनी हैं। प्रत्येक मूर्ति में आदिनाथ के

केश उनके कन्धों पर पड़े हैं। मूर्तियों के मुख तथा हाथ कहीं-कहीं खण्डित हो गए हैं। इनके पैरों के समीप सेवकों को दर्शाया गया है और शीश के दोनों ओर मालाधारी गन्धर्वों का अंकन है। मूर्तियों के नग्न होने से ज्ञात होता है कि दिगम्बर जैनियों द्वारा पूजा हेतु इसकी प्रतिस्थापना करवाई गई होगी। कला की दृष्टि से यह मूर्ति प्रतिहार युगीन लगभग १०वीं शती ई० की बनी प्रतीत होती है।

उदयपुर संग्रहालय में बांसी से प्राप्त एक जैन कुबेर की दुर्लभ मूर्ति विद्यमान है। इसमें वह अपने वाहन गज पर सुखासन में विराजमान है। (चित्र २०)। इनके दाहिने हाथ में बीज पूरक तथा बाएं में धन की थैली है। इन्होंने सुन्दर मुकुट, कुण्डल, हार आदि धारण कर रखा है। तीर्थंकर की एक ध्यानस्थ मूर्ति उनके मुकुट पर तथा दूसरी मूर्ति शीश के ऊपर बनी हुई है। यद्यपि कुबेर की अनेक प्रतिमाएं प्राप्त हैं तथापि किसी में भी तीर्थंकर की मूर्ति उनके साथ इस प्रकार प्रदर्शित नहीं की गई है। कुबेर धन के देवता हैं और धनी जैनियों द्वारा उनकी पूजा करने के लिए ही सम्भवतः इस मूर्ति की प्रतिस्थापना की गई होगी। कला की दृष्टि से यह मूर्ति प्रतिहार काल ८वीं शती ई० का अत्यन्त सुन्दर उदाहरण है।

खिन्वसर से प्राप्त जीवन्तस्वामी की एक अद्वितीय स्थानक मूर्ति जोधपुर संग्रहालय में प्रदर्शित है (चित्र १४)। इसमें वह मुकुट, हार, माला तथा अन्य आभूषणों से सुसज्जित हैं। नीचे के अधोभाग में धोती पहिने हैं जिस पर सुन्दर मेखला बन्धी है। वक्ष पर श्री वत्स चिह्न बना है। इनके पैरों के समीप दोनों ओर एक-एक चंवरधारी सेवक तथा सेविका त्रिभंग मुद्रा में प्रदर्शित हैं। प्रतिमा के दोनों ओर माला पकड़े उपासक तथा गज-शार्दूल बने हैं। शीर्ष के पीछे सुन्दर प्रभा है और उसके दोनों ओर मालाधारी गन्धर्व-युग्म उड़ते हुए दिखाए गए हैं। इनके ऊपर दो पद्मों पर गज बने हैं जिन पर दुन्दुभि बजाते दिव्य गायक बैठे हैं। सबसे ऊपर त्रिछत्र पर एक अन्य दिव्य गायक जीवन्त-स्वामी के कैवल्य प्राप्ति पर हर्ष ध्वनि करता दिखाया गया है। यह आदमकद मूर्ति चौहान कला, १२वीं शती ई० का अत्यन्त सुन्दर उदाहरण है।

हिन्दुओं की भांति जैनियों ने भी सरस्वती देवी की पूजा को अपनाया। अभी तक सबसे प्राचीन जैन सरस्वती की मूर्ति मथुरा से मिली है जो लखनऊ संग्रहालय में प्रदर्शित है (चित्र २८)। बीकानेर के समीप पल्लु ग्राम से भी दो सफेद संगमरमर की सरस्वती प्रतिमाएं मिली थीं जिनमें से एक अब राष्ट्रीय

संग्रहालय, नई दिल्ली में प्रदर्शित है और दूसरी बीकानेर संग्रहालय में है। चौहान कालीन १२वीं शती ई० की यह दोनों ही मूर्तियां त्रिभंग मुद्रा में पद्म-पीठ पर खड़ी हैं। इनके चार हाथों में अक्षमाला, पद्म, पुस्तक तथा पूर्ण घट है। इन्होंने सुन्दर मुकुट, तथा विभिन्न आभूषण और पारदर्शक साड़ी पहन रखी है। इनके पैरों के समीप दो सेविकाएं वीणा लिए खड़ी हैं तथा दान कर्ता एवं उसकी पत्नी हाथ जोड़े बैठे हुए हैं। पीठिका पर सामने उनका वाहन हंस बना है। मूर्ति के मुकुट के पीछे कमलरूपी प्रभा है और उसके ऊपर तीर्थंकर की ध्यान मुद्रा में मूर्ति है। मूर्ति के पीछे एक प्रभा तोरण है जिसकी ताखों में तीन तीर्थंकरों के अतिरिक्त अन्य जैन देवियों की आसन मूर्तियां हैं। यह मूर्ति भारतीय कला में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है और प्रत्येक कला के विद्यार्थी के लिए दर्शनीय है।

अध्याय ६

भारतीय संग्रहालयों में जैन प्रतिमाएं

जैन प्रतिमाओं का भारतीय कला के क्षेत्र में अद्वितीय स्थान है। जैन तीर्थंकरों की मूर्तियां केवल दो ही प्रकार की बनी होती हैं—ध्यान मुद्रा में तथा कायोत्सर्ग मुद्रा में। यह दोनों ही मुद्रायें तीर्थंकरों द्वारा कैवल्य प्राप्ति के लिए की गई घोर तपस्या का परिचायक हैं। ऐसी प्रतिमाएं भारत के प्रायः सभी भागों से प्राप्त हुई हैं। प्राचीनतम तीर्थंकर मूर्तियां अधिकतर नग्न हैं और दिगम्बर सम्प्रदाय के उपासकों द्वारा बनाई प्रतीत होती हैं। अब तक जितनी भी जैन मूर्तियां मिली हैं उनमें सबसे अधिक संख्या मथुरा से प्राप्त मूर्तियों की है, जो प्राचीन काल में कला के सबसे महत्वपूर्ण केन्द्रों में से एक था। यहां से उपलब्ध जैन मूर्तियां भारत के अतिरिक्त अनेक विदेशी संग्रहालयों में भी विद्यमान हैं।

राज्य संग्रहालय, लखनऊ

राज्य संग्रहालय, लखनऊ में द्वितीय शती ई० पू० से लगभग १२वीं-१३वीं शती ई० के मध्य बनी जैन प्रतिमाओं का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संग्रह है। इसमें प्राचीनतम जैन मूर्तियां विशेषतया मथुरा के कंकाली टीले से प्राप्त हुई थीं, जिनका विस्तृत वर्णन डा० विन्सेन्ट ए० स्मिथ ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ **दी जैन स्तूप एण्ड अदर एन्टीक्यूटीज आफ मथुरा** (इलाहाबाद, १९०१) में किया है। यहीं पर कई-कई प्राचीन आयागपट्ट भी हैं, जिनमें सर्व प्रसिद्ध क्षत्रप षोडास के ४२वें वर्ष में उत्कीर्ण एवं आर्यवती की मूर्ति से अंकित तथा आमोहिनी द्वारा प्रतिष्ठापित पट्ट है (चित्र २१)। कुषाण काल में ही निर्मित कई तीर्थंकर प्रतिमाएं (चित्र २६) तथा चौमुख आदि (चित्र २७) के अतिरिक्त शीश रहित सरस्वती की बैठी प्रतिमा भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है (चित्र २८)। इस मूर्ति की पीठिका पर उत्कीर्ण लेख से विदित होता है कि सिंह के पुत्र गोव ने दान हेतु इसका निर्माण कराया था। लेख इस प्रकार है—

१. (सि) द्धम् संव ५४ हिमन्तमासे चतु (र्थे) ४ दिवसे १० अ
२. स्य पूर्वायाँ कोट्टियातो (ग) णातो स्थानी (य) तो कुलातो
३. वैरातो शाखातो श्रीगृह (ा) तो सम्भोगातो वाचकस्यार्य्या
४. (ह) अस्तहस्तिस्य शिष्यो गणिस्य अर्य्य माघहस्तिस्य श्रद्धचारो वाच-
कस्य अ
५. र्य्य देवग्य निर्वतने गोवस्य सीहपुत्रस्य लोहिक कारुकस्य दानं
६. सर्वसत्त्वानं हितसुखा एक (सर) स्वती प्रतिष्ठापिता अवतले रँग (?)
नत्तनो
७. मे·········

कुषाण कालीन प्रतिमाओं में ही एक वर्तुलाकार पट्ट, जिस पर नेगमेष, देवी, तीर्थंकर, स्तूप आदि का अंकन है (चित्र २३) तथा एक खण्डित मूर्ति जिसके एक ओर नेगमेष सहित महावीर का गर्भ संक्रमण तथा दूसरी ओर नृत्य एवं गान आदि का दृश्य उत्कीर्ण है (चित्र २४-२५) विशेष प्रसिद्ध हैं।

मथुरा से प्राप्त अनेक गुप्तकालीन प्रतिमाओं में नेमिनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ी मूर्ति (चित्र २९), महावीर, आदिनाथ तथा चौमुख की प्रतिमायें कला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

राज्य संग्रहालय में मथुरा के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश के विभिन्न भागों से प्राप्त अनेक जैन प्रतिमाएं भी प्रदर्शित हैं। इनमें गोंडा ज़िले से मिली प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ की चौबीसी, बटेश्वर (आगरा) से प्राप्त लेख युक्त कुन्थुनाथ की ध्यानी प्रतिमा (चित्र ३८), श्रावस्ती से पार्श्वनाथ, महोबा से प्राप्त काले पत्थर की बनी तिथियुक्त नग्न तीर्थंकर मूर्तियां, बाहुबलि एवं नेमिनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ी मूर्ति जिसके एक ओर कृष्ण व दूसरी ओर बलराम खड़े हैं आदि, जैन कला के विद्यार्थियों के अध्ययन हेतु अत्यन्त उपयोगी हैं। इन्हीं के साथ एक अन्य तीर्थंकर मूर्ति का निचला भाग भी प्रदर्शित है, जिसकी पीठिका पर गाहड़वाल राजा गोविन्दचन्द्र के समय का तिथियुक्त लेख उत्कीर्ण है। यहीं पर इलाहाबाद से प्राप्त एक विशाल मध्यकालीन मान स्तम्भ है, जिस पर आठ विभिन्न तीर्थंकरों का अंकन है (चित्र ४१)।

राजकीय संग्रहालय, मथुरा

राज्य संग्रहालय, लखनऊ की भांति मथुरा संग्रहालय में भी अनेक प्राचीन जैन मूर्तियों का दुर्लभ संग्रह है जिनको एक केटलाग के रूप में डा० वासुदेव शरण जी अग्रवाल ने **जर्नल आफ दी यू० पी० हिस्टोरिकल सोसाइटी,**

लखनऊ, जिल्द XI (१९५०) में प्रकाशित किया था। इसी संग्रहालय में प्रारम्भिक कुषाण कालीन पट्ट भी रखा है जिस पर उत्कीर्ण लेख से विदित होता है कि इसकी स्थापना लवण शोभिका की पुत्री वासु ने की थी (स० ०२; चित्र २२)। इनके अतिरिक्त अनेक महत्त्वपूर्ण जैन प्रतिमाएं, पट्ट व जिन शीर्ष भी सग्रहालय में प्रदर्शित हैं, जिन पर पुनः विस्तार से अध्ययन की आवश्यकता है।

इलाहाबाद सग्रहालय, इलाहाबाद

इस संग्रहालय में उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं बिहार से प्राप्त प्रस्तर, प्रतिमाओं का काफी अच्छा संग्रह है। कुछ वर्ष पूर्व डा० प्रमोद चन्द्र ने सभी मूर्तियों को एक महत्त्वपूर्ण केटलाग के रूप में प्रकाशित किया है (बम्बई १९७१)।

गया से मिली काले पत्थर की मूर्ति में आदिनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं (सं० २८०)। इनके दोनों ओर एक-एक चंवरधारी सेवक तथा २४ तीर्थंकरों का अंकन किया गया है, जिनकी पहचान उनकी पीठिकाओं पर उत्कीर्ण लांछनो से हो सकती है। मूर्तियां नग्न हैं। प्रस्तुत प्रतिमा लगभग ९वीं शती ई० की बनी प्रतीत होती है।

मध्य प्रदेश में गुर्गी नामक स्थान से मिली पार्श्वनाथ (सं० ४९९) एवं नेमिनाथ (सं० ४९८) की दोनों प्रतिमायें चेदि कला, लगभग १०वीं शती ई० की बनी प्रतीत होती है। पार्श्वनाथ सप्त-फणों के नीचे कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं और नेमिनाथ की पहचान पीठिका पर बने शंख द्वारा की जा सकती है। दोनों मूर्तियां अत्यधिक खण्डित हो गई हैं और दिगम्बर सम्प्रदाय की प्रतीत होती हैं। इन्हीं की समकालीन जसो से प्राप्त आदिनाथ की मूर्ति भी है जिसमें वह सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में बैठे दिखाये गये है (सं० ५२०)। इनके दोनों ओर चंवर पकड़े एक-एक सेवक तथा प्रभा के पास दो-दो अन्य तीर्थंकरों की ध्यानी मूर्तियां हैं। सिंहासन के दोनों ओर इनके शासन देवता एवं भक्तों की लघु मूर्तियां स्थित हैं।

इलाहाबाद के पास कौशाम्बी से प्राप्त जैन चौमुख, जिसका नीचे का कुछ भाग खण्डित है (सं० ९४३) तथा ५ तीर्थंकर मूर्तियां, जिनमें चन्द्रप्रभ, जिनकी पहचान सिंहासन पर उत्कीर्ण अर्ध-चन्द्र द्वारा की जा सकती है (सं० २९५), प्रतिहार कला, ९वीं-१०वीं शती ई० की निर्मित हुई लगती हैं। यह काफी खण्डित है तथा कला की दृष्टि से काफी समान है। पभोसा से प्राप्त

एक मूर्ति में शान्तिनाथ एक सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में विराजमान हैं और इनके दोनों ओर एक-एक नग्न तीर्थंकर कायोत्सर्ग मुद्रा में तथा अन्य दो प्रभा के दोनों ओर ध्यान मुद्रा में उत्कीर्ण हैं। सिंहासन के मध्य में शान्तिनाथ का लांछन मृग तथा किनारों पर यक्ष एवं यक्षी की मूर्तियां खुदी हैं (सं० ५३३)। मूर्ति ११वीं शती ई० की है।

यहां पर लच्छगीर (सं० २४४) तथा जसो (सं० ५३७) से मिली 'युगलिया' अथवा जिन के माता-पिता की मूर्तियां भी पूर्वमध्ययुगीन जैन कला का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। स्त्री-पुरुष की मूर्तियां एक वृक्ष के नीचे बालकों सहित बैठी हैं, जिसमें ऊपर ध्यानी जिन का अंकन है। नीचे पीठिका पर भक्त गण दिखाये गये हैं।

जैन मूर्तिकला की दृष्टि से इलाहाबाद संग्रहालय की सबसे महत्त्वपूर्ण मूर्ति नेमिनाथ की यक्षी अम्बिका की है (सं० २९३), जो कभी सतना ज़िले के पतियान-दाई के एक प्राचीन देवालय में प्रतिष्ठित थी। यह आदमकद मूर्ति एक आम के वृक्ष के नीचे, जो टूट गया है, खड़ी है। इनके चारों हाथ भी खण्डित हैं। सिंह पर सवार एक बालक इनके दाईं ओर तथा दूसरा बाईं ओर खड़ा है। मूर्ति के परिकर पर अन्य यक्षियों तथा तीर्थंकरों की खड़ी मूर्तियां हैं और सबसे ऊपर ध्यानी नेमिनाथ अंकित हैं। इन यक्षियों ने अपने विभिन्न आयुध ले रखे हैं तथा इनके नाम पीठिकाओं पर इस प्रकार उत्कीर्ण है : जया, अनन्तमती, वैरोटा, गौरी, महाकाली, काली, पुष्पदन्ती, अपराजिता, महामानसी, अनन्तमती, गान्धारी, मानसी, जालमालिनी, मनूजा, बहुरूपिणी, चामुण्डा, सरस्वती, पद्मावती, विजया आदि। यह मूर्ति चेदिकला ११वीं शती ई० की कृति है।

पुरातत्त्व संग्रहालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार के पुरातत्त्व संग्रहालय में भी कई जैन मूर्तियां हैं, जिनमें से चार वर्णन करने योग्य हैं।

प्रथम मूर्ति शीर्षहीन तीर्थंकर की है जिसमें वह एक सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में बैठे हैं (सं० २८४)। द्वितीय मूर्ति एक प्रतिहार युगीन चौमुख है, जिसके चारों ओर आलों में ध्यानी तीर्थंकर प्रतिमाएँ स्थित हैं। यह भी काफी खण्डित है। शेष दो मध्य काल में बनी जैन मूर्तियों के खण्डित भाग हैं। इनमें से एक में ध्यानी और कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े तीर्थंकरों की मूर्तियां हैं और दूसरे में तीन पंक्तियों में ध्यानी तीर्थंकर मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

पुरातत्त्व संग्रहालय, सारनाथ

इस संग्रहालय में बौद्ध एवं हिन्दू देव प्रतिमाओं का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संग्रह है। इस संग्रहालय में जैन तीर्थंकर विमलनाथ की भी प्रतिमा विद्यमान है (सं० २३६)। चुनार के बलुए पत्थर की बनी इस शीश रहित मूर्ति में 'जिन' पद्म पर कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं जिनके नीचे इनका चिह्न शूकर बना है। इनके वक्ष पर श्रीवत्स चिह्न अंकित है। 'जिन' के दोनों ओर एक-एक चंवरधारी सेवक खड़ा है जिनके शीश खण्डित हो चुके हैं। प्रस्तुत प्रतिमा प्रतिहार कला ९वीं शती ई० में बनी प्रतीत होती है।

केन्द्रीय पुरातत्त्व संग्रहालय, ग्वालियर

ग्वालियर के सुप्रसिद्ध दुर्ग के गूजरी महल में स्थित यह संग्रहालय पुरातत्त्व की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें संगृहीत प्राचीनतम जैन प्रतिमाओं में सबसे मुख्य सांची के समीप स्थित विदिशा नामक स्थान से प्राप्त गुप्तकालीन लगभग ५वीं शती ई० की तीर्थंकर मूर्ति है, जिसमें वह कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं। शीश के पीछे कमल-रूपी प्रभा है तथा पैरों के निकट भक्त पुष्पहार भेंट करते दिखाये गये हैं (सं० ३३)।

दूसरी मूर्ति लश्कर से मिला आदिनाथ का वक्ष है (सं० ५५)। तीसरी गुप्तकालीन मूर्ति जो तुमैन (प्राचीन तुम्बवन) से प्राप्त हुई थी, देवी अम्बिका की है जिसमें वह अपने वाहन सिंह पर एक वृक्ष के नीचे बैठी दिखाई गई हैं। इनका एक पुत्र गोद में है तथा दूसरा दाहिनी ओर खड़ा है (सं० ४९)।

उपर्युक्त प्रतिमाओं के अतिरिक्त यहाँ पर कई पूर्वमध्यकालीन तीर्थंकर मूर्तियां भी हैं; परन्तु इन पर लांछन न होने के कारण उचित पहचान करना कठिन है। इसी समूह में आदिनाथ का चतुर्विंशति-पट्ट भी है जिसमें मूल प्रतिमा के अतिरिक्त उसके परिकर पर आठ अन्य 'जिन' मूर्तियां उत्कीर्ण हैं (सं० १२८)।

शान्तिनाथ की पंच-तीर्थिक प्रतिमा में उनके दोनों ओर दो-दो तीर्थंकरों का अंकन है तथा पीठिका पर लांछन मृग बना है। बारहवीं शती ई० की यह मूर्ति पधावली नामक स्थान से प्राप्त हुई थी (सं० १२७)। पधावली से ही अजितनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा में बनी मूर्ति, जिसकी पीठिका पर उनका लांछन हाथी उत्कीर्ण है (सं० १२९) तथा ध्यानी पार्श्वनाथ की भी मूर्ति मिली है (सं० १२४)। यहीं से प्राप्त दो अन्य प्रतिमाएँ भी उल्लेखनीय हैं। इनमें से एक तो किसी तीर्थंकर प्रतिमा का परिकर है जिस पर लघु जिन

मूर्तियां उत्कीर्ण हैं और दूसरा एक मान स्तम्भ है, जिसके आलों में तीर्थंकर मूर्तियां स्थित हैं। इस संग्रहालय में एक अन्य मान-स्तम्भ भी है जिस पर कुल मिलाकर १३६ तीर्थंकर मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

चौमुख अथवा सर्वतोभद्र प्रतिमाओं का भी जैन कला में विशेष महत्त्व है। इस संग्रहालय में भी कई अच्छे ऐसे चौमुख विद्यमान हैं। इनमें से एक में दो तरफ आदिनाथ तथा पार्श्वनाथ का व अन्य शेष दो भागों पर अन्य 'जिन' मूर्तियों का अंकन है (सं० १।४)। यह सभी तीर्थंकर कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं। ऐसी ही अन्य दो मूर्तियां भी हैं जिन पर इसी प्रकार से 'जिन' मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

मध्यकालीन यक्षी प्रतिमाओं में विशेषतया अम्बिका और चक्रेश्वरी की मूर्तियां हैं (सं० १८ तथा १४६)। इनके अतिरिक्त 'जिन' के माता-पिता की भी प्रतिमाएं (युगलिया) सुरक्षित हैं (सं० २६४ तथा ३७७)।

पुरातत्त्व संग्रहालय, रायपुर

इस पुरातत्त्व संग्रहालय में, जिसे श्री महन्त घासीदास स्मारक संग्रहालय भी कहा जाता है, मध्य प्रदेश के विभिन्न भागों से प्राप्त पूर्वमध्ययुगीन जैन प्रस्तर प्रतिमाओं का काफी अच्छा संग्रह है, परन्तु इनमें से अधिकतर मूर्तियां खण्डित हैं। इसी संग्रह में सीरपुर, जिसका प्राचीन नाम श्रीपुर है, से प्राप्त सोमवंशीकालीन पार्श्वनाथ की भी दुर्लभ मूर्ति है जिसमें वह सर्प के सात फणों के नीचे ध्यान मुद्रा में विराजमान हैं। मूल मूर्ति के पृष्ठ भाग में भी सर्प की कुण्डली बनी है। प्रतिमा खण्डित होने पर भी लगभग ९वीं शती ई० की कला का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती है।

इस संग्रहालय में ऋषभनाथ की कई सुन्दर मूर्तियां विद्यमान हैं। रतनपुर से प्राप्त दो मूर्तियों में आदिनाथ को छत्र के नीचे ध्यान-मुद्रा में दिखाया गया है (स० १ व २)। इनके वक्ष पर श्री-वत्स चिह्न तथा शीश के पीछे प्रभामण्डल बना है। अन्य मूर्तियों की भांति गज-सवार, गन्धर्व, यक्ष-यक्षी तथा भक्तों की लघु मूर्तियां उत्कीर्ण हैं और पीठिका पर लांछन वृषभ अंकित है। कारीतलाई नामक स्थान से प्राप्त आदिनाथ की मूर्तियो में भी उन्हें उपर्युक्त प्रतिमाओं की भाँति ध्यान-मुद्रा में दिखाया गया है। सिंहासन के दांयी ओर यक्ष गोमुख तथा बांयी ओर यक्षी चक्रेश्वरी की आसन मूर्तियां विद्यमान हैं (सं० २५३७)। परन्तु एक आदिनाथ की मूर्ति में यक्षी चक्रेश्वरी के स्थान पर नेमिनाथ की यक्षी अम्बिका का अंकन हुआ है जो असाधारण

प्रतीत होता है (सं० ३३)। ये चेदिकालीन मूर्तियां लगभग १०वीं से १२वीं शती ई० के मध्य की बनी प्रतीत होती हैं।

कारीतलाई से ही मिली उपर्युक्त मूर्तियों की समकालीन कुछ अन्य तीर्थंकर मूर्तियां भी प्रदर्शित हैं। इनमें एक मूर्ति शान्तिनाथ की है, जो एक पीठिका पर कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ी है और जिस पर उनके लांछन मृग के अतिरिक्त यक्ष गरुड़ व यक्षी महामानसी आदि भी उत्कीर्ण हैं (सं० २५३८)।

कारीतलाई से पार्श्वनाथ की भी कई पाषाण मूर्तियां उपलब्ध हैं, जिनमें से दो चतुर्विंशति पट्ट हैं (सं० ३५ व २५७७)। पार्श्वनाथ की अन्य प्रतिमाओं में उनके सिंहासन के दोनों ओर सर्प-फणों के नीचे यक्ष धरणेन्द्र एवं यक्षी पद्मावती को दर्शाया गया है।

उपर्युक्त स्थान से प्राप्त महावीर की एक चतुर्विंशति पट्ट मूर्ति में जिसके परिकर का काफ़ी भाग टूट गया है, 'जिन' एक सुन्दर सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में बैठे हैं। मूल मूर्ति के दाहिनी ओर ध्यानी तीर्थंकरों की लघु मूर्तियां हैं। पीठिका पर मध्य में महावीर का लांछन सिंह तथा उसके नीचे चक्र का अंकन है और किनारों पर यक्ष एवं यक्षी उत्कीर्ण हैं (सं० ३६)।

कारीतलाई से मिली कुछ अन्य तीर्थंकर मूर्तियों के अतिरिक्त एक सुन्दर चौमुख (सं० २५५५), जिसके चारों ओर आदिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ तथा महावीर की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं तथा चार सहस्रकूट भी हैं जिनके ऊपर विभिन्न पक्तियों में ध्यानी तीर्थंकरों का अंकन प्राप्त है, जो पर्याप्त रूप से महत्त्वपूर्ण है (सं० २५१६, २५३७, २५४० व २५४१)। इन्हीं के साथ सरस्वती तथा अम्बिका की भी मूर्तियां हैं। शीश-रहित सरस्वती मूर्ति के निचले हाथों में वीणा स्पष्ट है (सं० २५२४)। अम्बिका की एक मूर्ति में उनको बैठे तथा दूसरे में खड़े दिखाया गया है। इनके साथ दोनों बालक, सिंह तथा आम्र लुम्बि का भी अंकन है। ऊपर नेमिनाथ बने हैं। प्रतिमाएं पर्याप्त रूप से सुन्दर हैं (सं० ३४ व ६७)। एक अन्य प्रतिमा में जो किसी जैन मन्दिर के द्वार का सिरदल प्रतीत होती है, अम्बिका व पद्मावती को दर्शित किया गया है (सं० २६८१)।

इनके अतिरिक्त रतनपुर तथा आरंग से भी प्राप्त कुछ अन्य मूर्तियां हैं जिनमें काले पत्थर की बनी चन्द्रप्रभ की मूर्ति उल्लेखनीय है (सं० ७)। इसमें वह एक कलात्मक आसन पर ध्यान मुद्रा में बैठे हैं। पीठिका पर उनका लांछन 'चन्द्र' तथा उसके किनारों पर यक्ष एवं यक्षी उत्कीर्ण किये गये हैं।

पुरातत्त्व संग्रहालय, शिवपुरी

इस संग्रहालय में मध्य भारत के विभिन्न भागों से प्राप्त मध्यकालीन मूर्तियों का अच्छा संग्रह है। इनमें तीर्थंकरों की कई सुन्दर मूर्तियां हैं। ऐसी मूर्तियों में एक प्रतिमा अजितनाथ की है जिसमें वह त्रिछत्र के नीचे, जिस पर आमलक एवं कलश बना है, कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं। इनके दोनों ओर एक-एक अन्य जिन व त्रिछत्र के ऊपर बने ताख में भी एक ध्यानी जिन बना है। मूल मूर्ति के दोनों ओर एक-एक चंवरधारी सेवक तथा पीठिका पर अजितनाथ का लांछन हाथी उत्कीर्ण है। ऐसे ही अन्य तीर्थंकर प्रतिमाओं जैसे सम्भवनाथ में लांछन अश्व, पद्मप्रभ में कपि उत्कीर्ण मिलते हैं। यहीं पर चन्द्रप्रभ की मूर्ति का एक अत्यन्त कलात्मक सिंहासन भी रखा है जिसके मध्य में उत्कीर्ण लेख से विदित होता है कि विक्रम सम्वत् १२४१ में जयचन्द्र नामक एक व्यक्ति ने अपनी पत्नी सुहना और मोना एवं पुत्र आशाधर सहित चन्द्रप्रभ की मूर्ति की प्रतिष्ठापना कराई थी। इन्ही के साथ सर्प के पांच फणों के नीचे सुपार्श्वनाथ (सं० ६) तथा सात फणों के नीचे पार्श्वनाथ (सं० २७) के अतिरिक्त अन्य तीर्थंकर मूर्तियां भी हैं परन्तु उन पर लांच्छन न होने के कारण पहचानना कठिन है।

जैन पुरातत्त्व संग्रहालय, उज्जैन

इस संग्रहालय में लगभग पाँच सौ से भी अधिक जैन मूर्तियों का विशाल संग्रह है जो जैन मूर्तिकला के विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। यद्यपि इसमें अधिकतर प्रतिमाएँ उत्तरमध्यकालीन हैं, फिर भी उनका विस्तार से अध्ययन होना आवश्यक है। इसमें अधिकतर तीर्थंकरों के अतिरिक्त, जैन शासन देवता तथा 'समवसरण' भी सुरक्षित हैं। देवगढ़ की ही भांति यहाँ भी मालवा प्रदेश के एक ही स्थान से निर्वाणी देवी, अम्बिका, महामानसी तथा रोहिणी आदि की प्रतिमाएँ देखी जा सकती हैं।

रानी दुर्गावती संग्रहालय, जबलपुर—

अवाप्ति क्र.	प्रदर्श विवरण	प्राप्ति स्थान	नाम	काल
७	जिन मूर्ति का ऊपरी भाग	जिला जबलपुर	५० × ४० से. मी.	कलचुरि
६	जिन मूर्ति	,,	३२ × ३० ,,	,,
१२	जिन भग्न	,,	३० × ३० ,,	,,
४४	जिन शीर्ष	,,	१४४ × २२ ,,	,,
४५	आदिनाथ पद्मासनस्थ, अष्ट प्रतिहार्य व वृषभ लाञ्छन सहित	,,	३५ × ५७ ,,	,,
५०	जिन पद्मासनस्थ	,,	५३ × ४२ ,,	,,
५१	गोमेध अम्बिका का ऊपरी भाग	,,	२९ × ३२ ,,	,,
५८	गोमेध अम्बिका	,,	५३ × ३२ ,,	,,
६३	जिन (सिर विहीन)	,,	२८ × ३५ ,,	,,
६७	जिन	,,	२५ × २६ ,,	,,
७२	जिन	,,	२६ × २६ ,,	,,
८०	जिन शीर्ष	,,	२८ × १७ ,,	,,
८५	जिन का ऊपरी भाग	,,	५१ × ३० ,,	,,
८८	जिन का ऊपरी भाग	,,	२६ × २६ ,,	,,
९१	जिन (सिर विहीन)	,,	४२ × ३८ ,,	,,

अवाप्ति क्र०	प्रदर्श विवरण	प्राप्ति स्थान	नाम	काल
९२	जिन (पेनल)	जिला जबलपुर	५७×१२ से. मी.	कलचुरि
९३	अम्बिका	,,	३६×३३ ,,	,,
९५	जिन शीर्ष	,,	४३×२५ ,,	,,
९८	,,	,,	६२×७४ ,,	,,
९९	तीन जिन खड्गासनस्थ	,,	१२१×५५ ,,	,,
१००	जिन खड्गासनस्थ	,,	८३×३७ ,,	,,
१०१	,, खड्गासनस्थ (सम्भवनाथ)	,,	११३×२९ ,,	,,
१०२	,, खड्गासनस्थ	,,	९०×३३ ,,	,,
११५	,, पद्मासनस्थ	,,	५६×३७ ,,	,,
१२६	,,	,,	३५×२५ ,,	,,
१२७	,, शीर्ष	,,	१९×१३ ,,	,,
१२९	,, ,,	,,	२५×१९ ,,	,,
१३२	,, भग्न	,,	५६×१४० ,,	,,
१३४	,, पदस्थान	,,	३०×४५ ,,	,,
१३७	अम्बिका भग्न	,,	३८×३४ ,,	,,
१४८	जिन मूर्ति भग्न	,,	२४×१७ ,,	,,
१४९	,, क्षतविक्षत	,,	२०×२३ ,,	,,
१५६	,, सिरविहीन	,,	२६×२७ ,,	,,

अवाप्ति क्र०	प्रदर्श विवरण	प्राप्ति स्थान	नाम	काल
१५७	जिन पार्श्वनाथ	जिला जबलपुर	२० × ३३ ,,	कलचुरि
१६२	जिन पार्श्वनाथ भग्न	,,	२२ × २५ ,,	,,
१६३	गोमेध अम्बिका	,,	४० × ३० ,,	,,
१६५	जिन खड्गासनस्थ (चन्द्रप्रभ)	,,	१३६ × ३६ ,,	,,
१६६	,, पदस्थान	,,	३० × ४५ ,,	,,
१७३	पार्श्वनाथ सिर विहीन	,,	८२ × २७ ,,	,,
१८३	जिन शीर्ष भग्न	,,	३० × ४५ ,,	,,
१७३	पार्श्वनाथ सिर विहीन	,,	८२ × २७ ,,	,,
१८३	जिन शीर्ष भग्न	,,	१८ × ७ ,,	,,
१९६	,,	,,	१५ × ११ ,,	,,
१९७	,,	,,	८० × १५ ,,	,,
१९८	,,	,,	२५ × १० ,,	,,
२०३	जिन मूर्ति भग्न	,,	२० × २७ ,,	,,
२०७	जिन मूर्ति निम्न भग्न	,,	१६ × ३ ,,	,,
२०८	जिन शीर्ष	,,	१८ × १४ ,,	,,
२०९	,,	,,	२७ × १० ,,	,,
२१४	जिन पद्मासनस्थ	,,	२१ × २४ ,,	,,
२१७	जिन मूर्ति भग्न	,,	१६ × २० ,,	,,

अवाप्ति क्र०	प्रदर्श विवरण	प्राप्ति स्थान	नाम	काल
२२२	जिन शीर्ष	जबलपुर जिला	१९×११ से. मा.	कलचुरि
२२५	जिन (torso)	,,	२०×१६ ,,	,,
२२७	,,	,,	१९×१६ ,,	,,
२२८	जिन शीर्ष	,,	२३×१५ ,,	,,
२४६	,,	,,	१५×११ ,,	,,
३०६	जिन पद्मासनस्थ	,,	७×४ ,,	,,
३१५	जिन दो खण्डों में	मनकेडी, जबलपुर जिला	५५×५ ,,	,,
३३१	जिन खड्गासनस्थ	,,	१२७×७६ ,,	,,
३५१	अम्बिका	कारी तलाई जबलपुर जिला	६७×५८ ,,	,,
१८८	ऋषभ नाथ	कारीतलाई जिला जबलपुर	६४×५६ ,,	,,
३७४	गोमेध अम्बिका आसीन	तेवर जिला जबलपुर	२२×१७ ,,	,,
३८१	शिल्प खंड तीर्थंकर की आकृति	,,	२३×१९ ,,	,,
४०६	जिन खड्गासनस्थ (सम्भवनाथ) दो टुकड़ों में	,,	१३३×३३+२४ से. मी.	,,
४१५	जिन खड्गासनस्थ दो खण्डों में	,,	६५×२० से. मी.	,,

अवाप्ति क्र०	प्रदर्श विवरण	प्राप्ति स्थान	नाम	काल
४१६	तीर्थंकर-प्रतिमा कटि से ऊपरी भाग	,,	७०×५४×२२ ,,	कलचुरि
४१४	अम्बिका कटि से ऊपरी भाग	भान उमरिया, जबलपुर ज़िला	२६×२५ से. मी.	,,
४२०	आदिनाथ पद्मासनस्थ सिर विहीन (दो टुकड़ों में)	,,	५५×२६ से. मी.	,,
४२१	आदिनाथ का पदस्थान	,,	२६×६६×२५ ,,	,,
४३६	तीर्थंकर खड्गासनस्थ	कटनी ज़िला जबलपुर	१६७×५५ ,,	,,
४४८	अम्बिका	,,	८६×१०० ,,	,,
४४३	सर्वतोभद्रिका और तीर्थंकर भग्न और आसीन	,,	७५×५५ ,,	,,
५५७	तीर्थंकर मस्तक	दरहुसी ज़िला जबलपुर	१८×१२×६ ,,	,,
५५९	मस्तक विहीन तीर्थंकर मूर्ति	,,	१६×१६×५ ,,	,,
५६१	तीर्थंकर मस्तक विहीन	बिजोरा, ज़िला जबलपुर	१०×१०×४	,,
५६४	,,	जिलहरी घाट ,,	५४×२६×१५ ,,	,,
३५२	आदिनाथ पद्मासनस्थ	सिहोरा, ,,	६२×३०×१०० ,,	,,
३५३	आदिनाथ पद्मासनस्थ	सिहोरा, ज़िला जबलपुर	७६×३०×११५ ,,	,,

केन्द्रीय संग्रहालय, इन्दौर

इस संग्रहालय की जैन प्रतिमाओं में विशेष रूप से उल्लेखनीय श्रुतदेवी (सरस्वती) की मूर्ति है। धातु निर्मित इस मूर्ति में देवी पद्म पर त्रिभंग मुद्रा में खड़ी है और इन्होंने सुन्दर मुकुट, आभूषण एवं साड़ी पहिन रखी है। इस चतुर्भुजी मूर्ति के दो हाथों में कमल व पुस्तक तथा एक हाथ वरद मुद्रा में है। शीश के पीछे पूर्ण विकसित कमल रूपी प्रभा के ऊपर ध्यानी तीर्थंकर की लघु मूर्ति है और पैरों के समीप एक-एक चंवरधारिणी खड़ी है। मूर्ति लगभग ९वीं शती ई० की बनी प्रतीत होती है।

मोदी नामक स्थान से प्राप्त प्रभा-तोरण के ऊपरी भाग के मध्य में तीर्थंकर पद्मप्रभ की यक्षी मनोवेगा ललितासन में बैठी दिखायी गई है। चतुर्भुजी देवी सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित है तथा इनके हाथों में खड्ग, शक्ति, फल है तथा दाहिना निचला हाथ वरद मुद्रा में है। इनका वाहन अश्व इनके बांये पैर के नीचे बना है। मूर्ति के दोनों ओर किन्नर रूपी चंवरधारी सेवकों के अतिरिक्त कोनों पर बनी ताखों में एक-एक देवी की लघु मूर्ति भी है। यह मूर्ति परमार कला, १२वीं शती ई० की बनी हुई है।

राजकीय संग्रहालय, धुबेला

धुबेला सग्रहालय में जैन तीर्थंकरों एवं शासन देवताओं की मध्यकालीन प्रतिमाएं सुरक्षित हैं। तीर्थंकर प्रतिमाएं प्रायः समान ही हैं। इनमें वह सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में बैठे हैं, सामने इनका लांछन बना है। दोनों ओर एक-एक चंवरधारी सेवक व सेविका, शीश के पीछे बने प्रभामण्डल के दोनों ओर मालाधारी गन्धर्व-युग्म तथा ऊपर त्रिछत्र के दोनों ओर गजवाहकों का अंकन है। इन प्रतिमाओं में सम्भवतः सबसे पूर्ण आदिनाथ की मूर्ति है, जिनके केश कन्धों पर लटक रहे हैं। अजितनाथ की मूर्ति में उनका चिह्न गज, नेमिनाथ की मूर्ति में उनका लांछन शंख तथा पार्श्वनाथ की मूर्ति में उनके शीश के ऊपर सर्प के सात फण अंकित किये मिलते हैं। प्रत्येक के पैरों के समीप उनके यक्ष एवं यक्षी मूर्तियां भी बनी हुई हैं।

इनके अतिरिक्त 'युगलिया' प्रतिमाएं भी हैं, जिनमें यक्ष एवं यक्षी सुखासन में बालकों सहित एक वृक्ष के नीचे विराजमान हैं और ऊपर ध्यानी 'जिन' की लघु मूर्ति उत्कीर्ण है। इनके पैरों के पास उपासक हाथ जोड़े दिखाये गये हैं।

यक्षी प्रतिमाओं में विशेष रूप से उल्लेखनीय अम्बिका एवं चक्रेश्वरी हैं।

अम्बिका ग्राम के पेड़ के नीचे बालक को लिए बैठी है और ऊपर नेमिनाथ की आसन मूर्ति है तथा पैरों के समीप सिंह बना है।

चक्रेश्वरी की मूर्ति में वह अपने वाहन गरुड़ पर जो आलीढ़-मुद्रा में है, बैठी दिखाई गई हैं। उनके ऊपर के दो हाथों में चक्र व निचले बांये हाथ में शंख है तथा साथ वाला दाहिना हाथ वरद-मुद्रा में है। वह हिन्दू धर्म की वैष्णवी मातृका से बहुत समता रखती हैं। दोनों ओर एक-एक मालाधारी गन्धर्व बने हैं।

यहीं पर एक अन्य मूर्ति भी उल्लेखनीय है जिसे ब्रह्मा यक्ष लिखकर सम्बोधित किया गया है जो तीर्थंकर शीतलनाथ का शासन देवता है। इस चतुर्भुजी देवमूर्ति के ऊपर के दो हाथों में पद्म तथा पुस्तक तथा निचला दाहिना हाथ अभय मुद्रा में है। इनके पैरों पर योगपट्ट बना है और समीप ही दो उपासक बैठे हैं जिनके हाथ अञ्जली मुद्रा में हैं। इनके केश ऊष्णीष ढंग में हैं तथा इन्होंने यज्ञोपवीत धारण कर रखा है और वक्ष पर श्रीवत्स चिह्न अंकित है। शीश के पीछे बनी प्रभा के दोनों ओर एक-एक अन्य भक्त का अंकन है। परन्तु इसमें तीर्थंकर मूर्ति का अभाव है। इस मूर्ति को यदि ब्रह्मा यक्ष न मानकर शिव की योगदक्षिणा मूर्ति माना जाये तो अधिक उचित होगा। श्रीवत्स मध्यकालीन शिव प्रतिमाओं के वक्ष पर भी मिलता है। यह मूर्ति चन्देल कला १०वीं शती ई० का महत्त्वपूर्ण उदाहरण है।

पटना संग्रहालय, पटना

पटना संग्रहालय में सबसे प्राचीन जैन मूर्ति एक तीर्थंकर धड़ है जो मौर्य काल लगभग ३री शती ई० पूर्व का है (चित्र १)। इस नग्न धड़ पर मौर्य-कालीन पालिश है, जिसका कौटिल्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' में 'वज्रलेप' के नाम से उल्लेख किया है। इसी के साथ एक शुंगकाल २री शती ई० का एक अन्य नग्न धड़ भी है जिसमें तीर्थंकर के दोनों हाथ कायोत्सर्ग-मुद्रा में लटक रहे हैं। यह दोनों मूर्तियां, जो तीर्थंकरों की प्राचीनतम प्रतिमाएं मानी गई हैं, लोहानीपुर नामक स्थान से प्राप्त हुई थीं और प्रारम्भिक जैन कला के अध्ययन के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं।

मौजपुर जिले के चौसा नामक स्थान से प्राप्त सोलह धातु प्रतिमाओं का अद्वितीय संग्रह भी पटना संग्रहालय में सुरक्षित है। यह मूर्तियां लगभग पहली शती ई० पू० से लेकर गुप्त काल ५वीं-६ठीं शती ई० की हैं। इनमें कलात्मक धर्मचक्र एवं अशोक वृक्ष के अतिरिक्त ऋषभनाथ एवं अन्य तीर्थंकर की

कायोत्सर्ग मुद्रा में नग्न मूर्तियां हैं, जो प्राचीनतम मानी गई हैं। इनके अतिरिक्त चन्द्रप्रभ, आदिनाथ एवं पार्श्वनाथ की ध्यान मुद्रा में बनी मूर्तियां भी उल्लेखनीय हैं। आदिनाथ की एक ध्यानी मूर्ति में, जो आसन रहित है, वक्ष पर श्री वत्स चिह्न बना हुआ है।[1]

यहीं पर अलोरा नामक स्थान से प्राप्त एक धातु की अम्बिका की मूर्ति है। देवी के दाहिने हाथ में एक आमों का गुच्छा व बांया हाथ लोलहस्त मुद्रा में है। इनका एक पुत्र बांये खड़ा है तथा दाहिने ओर वाले पुत्र की मूर्ति टूट गई है और उसके केवल पैर ही शेष बचे हैं। सामने पीठिका पर उनका वाहन सिंह अंकित किया गया है।

प्रस्तर प्रतिमाओं में जो अधिकतर पाल कालीन हैं, सबसे महत्त्वपूर्ण मूर्ति तीर्थंकर अजितनाथ की है जिसमें वह एक ताख में ध्यान मुद्रा में खड़े हैं। इनके दोनों ओर एक-एक सेवक व पीठिका पर सामने उनका लांछन गज अंकित किया गया है। पलमा से प्राप्त यह मूर्ति पाल कला लगभग ११वीं शती ई० की है।

बड़ौदा संग्रहालय, बड़ौदा

बड़ौदा संग्रहालय में अकोटा (प्राचीन अंकोटक) नामक स्थान से प्राप्त जैन प्रतिमाओं का दुर्लभ संग्रह विद्यमान है, जिसको डा० उमाकान्त प्रेमानंद शाह ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अकोटा ब्रांजेज' में प्रकाशित किया है। इस संग्रह में ५वीं शती ई० से लगभग ११वीं शती ई० के मध्य बनी मूर्तियां हैं। इनमें सबसे प्रमुख आदिनाथ और जीवन्तस्वामी की स्थानक मूर्तियां हैं जो ५वीं शती ई० की हैं। इनकी कला सौष्ठव व भाव-व्यंजना समकालीन गुप्तकालीन प्रतिमाओं से बहुत समता रखती हैं। इनमें से कई मूर्तियों पर लेख भी उत्कीर्ण हैं, जिससे उनके प्रतिष्ठापकों और उनके गच्छों आदि का भी ज्ञान प्राप्त होता है। आदिनाथ, अजितनाथ, पार्श्वनाथ, अम्बिका, सरस्वती, आदि की कई सुन्दर मूर्तियों के अतिरिक्त महाविद्या अच्छुप्ता की एक अद्वितीय मूर्ति भी इसी संग्रह में है, जिसमें वह अपने अश्व पर सवार दिखाई गई है (चित्र ३१)। छठी-सातवीं ई० की इस देवी मूर्ति ने अपने चार हाथों में बाण, खड्ग, ढाल तथा धनुष ले रखा है और इनके शीश के पीछे प्रभा है। इस

१. विस्तृत विवेचन हेतु डा० हरकिशोर प्रसाद का लेख देखें : 'पटना संग्रहालय में जैन मूर्तियां', श्री महावीर जैन विद्यालय स्वर्ण जयन्ती ग्रन्थ, १, बम्बई, १९६८, पृ० २७५-८३ एवं चित्र।

संग्रह में पूजा की घंटी, धूपदानी आदि भी हैं। इनके अतिरिक्त आठवीं शती ई० में निर्मित चांवरधारिणी की त्रिभंग मुद्रा में खड़ी मूर्ति कला की दृष्टि से एक बेजोड़ उदाहरण है।

बंगीय साहित्य परिषद संग्रहालय, कलकत्ता

इस संग्रहालय में वर्द्धवान ज़िले के उजानी नामक स्थान से प्राप्त एक पाल कालीन लगभग १०वीं-११वीं शती ई० की तीर्थंकर शान्तिनाथ की मूर्ति में उनके एक ओर पांच व दूसरी ओर चार ग्रहों का अंकन किया गया मिलता है, जैसा कि उडीसा से मिली मूर्तियों में भी होता है। उनका लांछन मृग पीठिका पर अङ्कित है।

विदिशा संग्रहालय, विदिशा

विदिशा ज़िले के दुर्जनपुर नामक ग्राम से प्राप्त तीन लेख-युक्त मूर्तियां इस संग्रहालय में प्रदर्शित हैं। इनमें से दो के शीर्ष खण्डित हो गये हैं तथा तीसरी मूर्ति का चेहरा कुछ शेष बचा है। गुप्त सम्राट् रामगुप्त (?) के समय में बनी यह मूर्तियां, जैसा कि उनकी पीठिका पर खुदे लेखों से विदित होता है, खण्डित होने पर भी गुप्त काल की जैन मूर्ति कला के अध्ययन के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। इन तीनों ही मूर्तियों में तीर्थंकरों को ध्यान मुद्रा में सिंहासन पर बैठे दिखाया गया है, और इनके वक्ष पर श्रीवत्स चिह्न अङ्कित है। शीश के पीछे सुन्दर प्रभा-मण्डल और दो मूर्तियों में उनके दोनों ओर मुकुटधारी सेवक खड़ा है, जिसने चंवर ले रखा है। पीठिका के मध्य में धर्म-चक्र और उसके दोनों ओर लेख उत्कीर्ण हैं। विदिशा से ही प्राप्त एक तीर्थंकर की कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ी नग्न मूर्ति ग्वालियर के पुरातत्त्व संग्रहालय में भी सुरक्षित है।

हरिसिंह गौर संग्रहालय, सागर

सागर विश्वविद्यालय में स्थित इस पुरातत्त्व संग्रहालय में भी कई महत्त्व-पूर्ण जैन प्रस्तर प्रतिमाएँ प्रदर्शित हैं, जो मध्य प्रदेश के विभिन्न भागों से संग्रहीत की गई हैं—

(१) सं० सं० ५८.५६—शीश रहित तीर्थंकर ध्यान मुद्रा में विराजमान हैं। इनके दोनों ओर गज-शार्दूल बने हैं तथा पीठिका पर देवनागरी लिपि में लेख उत्कीर्ण है। यह प्रतिमा त्रिपुरी से प्राप्त हुई थी। तिथि: ११वीं शती ई०।

(२) सं० सं० ६०.१०—शान्तिनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में नग्न हैं तथा इनके पैरों के समीप सेवक चंवर लिए खड़े हैं। शीश के दोनों ओर मालाधारी गन्धर्व

तथा ऊपर नगाड़ा बजाता दिव्य व उसके दोनों ओर गजों का अंकन है। पीठिका पर उनका लाञ्छन मृग बना है। तिथिः ११वीं शती ई०, सागर।

(३) सं० सं० ६०. २८—शीश-रहित तीर्थंकर ध्यान मुद्रा में बैठे हैं। इनके हाथों का ऊपरी भाग टूटा है। पीठिका पर सम्वत् १२४२ का लेख उत्कीर्ण है। प्राप्ति स्थान-सागर।

(४) सं० सं० ६० २६—शीश-रहित तीर्थंकर प्रतिमा। पीठिका पर इनका लाञ्छन वज्र है, जिसके आधार पर इन्हें धर्मनाथ माना जा सकता है। सागर जिले में दयोरी नामक स्थान से प्राप्त यह मूर्ति १२वीं शती ई० की है।

(५) सं० सं० ७२. १—पार्श्वनाथ ध्यानी मूर्ति में एक सिंहासन पर बैठे हैं, जिस पर मध्य में धर्म-चक्र है। इसके दोनों ओर एक-एक सिंह है। इनके वक्ष पर श्री वत्स उत्कीर्ण है। इनके शीश पर बने सर्प-फणों जो कुछ खण्डित हैं, के बांयी ओर एक गज कमल अर्पित करता दिखाया गया है, जबकि बांयी ओर का गज टूटा हुआ है। गुना जिले में तुमैन से प्राप्त यह मूर्ति आठवीं शती ई० की है।

(६) सं० सं० ७२. २—पार्श्वनाथ की मूर्ति का ऊपरी भाग, जिन के शीश पर सर्प-फणों का अंकन है। इनके दोनों ओर विद्याधर आदि बने हैं और ऊपर गज स्थित है। सबसे ऊपरी भाग में छत्र है। तुमैन से प्राप्त यह मूर्ति ११वीं शती ई० की है।

(७) सं० सं० ७२. ३—कायोत्सर्ग-मुद्रा में बनी इस जिन मूर्ति के हाथ तथा नीचे का अधो भाग नष्ट हो गया है। शीश के पीछे प्रभा है। तुमैन से मिली यह मूर्ति उपर्युक्त प्रतिमा की ही समकालीन प्रतीत होती है।

(८) सं०सं० ७२.४—तीर्थंकर की इस खड़ी मूर्ति में उनके हाथ तथा पैर खण्डित हैं, शीश के पीछे प्रभा है तथा ऊपर छत्र के दोनों ओर एक-एक गज का अंकन है। गजों के नीचे गन्धर्व-युग्म है। मूल मूर्ति के दोनों ओर अन्य तीर्थंकरों की बैठी प्रतिमाएं हैं, जिससे इसका 'चौबीसी' होना प्रतीत होता है। पैरों के समीप सेवक है। यह मूर्ति भी तुमैन से मिली थी और ११वीं शती ई० की है।

भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता

भारतीय संग्रहालय में बंगाल, बिहार एवं मध्य प्रदेश से प्राप्त जैन प्रतिमाओं का अच्छा संग्रह है। मिदनापुर जिले के नरभोम नामक स्थान से प्राप्त २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की चौबीसी, पाल कला १०वीं-११वीं शती ई० का

सुन्दर उदाहरण है। पार्श्वनाथ की एक मूर्ति बंकुरा से भी मिली थी, जिसमें ये फणों की छाया में ध्यान मुद्रा में विराजमान प्रदर्शित किये गये हैं। यह पाल कला लगभग १०वीं शती ई० की है।

बिहार से प्राप्त चन्द्रप्रभ की प्रतिमा में वह एक पद्म पर कायोत्सर्गमुद्रा में नग्न खड़े हैं तथा इनके ऊपर त्रिछत्र व पैरों के समीप एक-एक चंवरधारी सेवक खड़ा है। पीठिका पर 'जिन' का लाञ्छन अर्धचन्द्र उत्कीर्ण है जिसके दोनों ओर उपासकों की लघु आकृतियां बनी हैं। मूल मूर्ति के दोनों ओर अन्य २३ तीर्थंकरों की मूर्तियों के अतिरिक्त उनके पैरों के समीप यक्ष एवं यक्षी की लघु मूर्तियां विद्यमान हैं। यह मूर्ति उत्तरपाल काल लगभग ११वीं शती ई० की बनी प्रतीत होती है।

इसी संग्रहालय में मध्य प्रदेश के त्रिपुरी नामक स्थान से प्राप्त भगवान ऋषभनाथ की भी अत्यन्त सुन्दर मूर्ति है, जिसमें वह सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में विराजमान हैं। चेदिकालीन ११वीं शती ई० की इस मूर्ति में मूल मूर्ति के दोनों ओर चंवरधारी सेवकों के अतिरिक्त गन्धर्व भी उत्कीर्ण हैं। ऊपर कलात्मक त्रिछत्र है जिसके दोनों ओर आकाशचारी गन्धर्व एवं गज भी अङ्कित हैं (चित्र ४०)।

आशुतोष संग्रहालय, कलकत्ता

कलकत्ता विश्वविद्यालय में स्थित आशुतोष संग्रहालय में भी कई जैन मूर्तियां हैं, जिनमें सम्भवतः सबसे सुन्दर शीश-रहित ऋषभनाथ की मूर्ति है, जिसमें वह एक पद्मासन पर कायोत्सर्ग मुद्रा में नग्न खड़े हैं। इनके दोनों ओर एक-एक चंवरधारी सेवक तथा शीश के पीछे बनी प्रभा के दोनों ओर गन्धर्व-युग्म दिखाये गये हैं। मूर्ति की पीठिका पर इनका लांछन वृषभ अङ्कित है जिसके दोनों ओर उपासकों की लघु मूर्तियाँ हैं। चमकदार काले पत्थर में निर्मित यह प्रतिमा ११वीं शती ई० की पाल कला का सुन्दर उदाहरण मानी जा सकती है।

यहीं पर गढ़ से प्राप्त ऋषभनाथ की चौबीसी भी प्रदर्शित है, जिसमें अन्य बातें तो उपर्युक्त प्रतिमा की ही भांति है परन्तु मूल मूर्ति के दोनों ओर अन्य २३ तीर्थंकरों की कायोत्सर्ग मुद्रा में लघु मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। इन्हीं के साथ मानभूमि से किसी ऋषभनाथ की एक कांसे की पाल कालीन ११वीं शती ई० की मूर्ति भी है जिसमें वह कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं। पीठिका पर वृषभ अङ्कित है।

इस संग्रहालय में वर्द्धवान, पुरुलिया तथा देवलिया से प्राप्त चौमुख भी प्रदर्शित हैं, जिन पर ऋषभनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ तथा चन्द्रप्रभ की मूर्तियां बनी हैं। यह पाल कला १०वीं-११वीं शती ई० में निर्मित हुए प्रतीत होते हैं।

पुरातत्त्व संग्रहालय, भुवनेश्वर

इस संग्रहालय में कई जैन मूर्तियां हैं जिनमें से कांस्य निर्मित ऋषभनाथ एवं चन्द्रप्रभ की मूर्तियां प्रमुख हैं। इन दोनों मूर्तियों में तीर्थंकर कायोत्सर्ग मुद्रा में नग्न खड़े हैं। आदिनाथ की मूर्ति में उनका लाञ्छन वृषभ तथा एक उपासक पीठिका पर अङ्कित हैं और चन्द्रप्रभ की मूर्ति में पीठिका पर अर्धचन्द्र बना है। यह मूर्तियां पूर्वी गंग कला ११वीं-१२वीं का उदाहरण है।

पुरातत्त्व संग्रहालय, कोचिंग

इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण प्रतिमा पार्श्वनाथ की है, जिसमें नग्न तीर्थंकर सर्प के सात फणों के नीचे कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं। इनके दोनों ओर तीन-तीन अन्य 'जिन' भी कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं और पद्म पीठ पर उनके लांछन सर्प के अतिरिक्त यक्ष एवं यक्षी का भी अङ्कन है। यह मूर्ति १२वीं शती ई० की है।

बरिपद संग्रहालय, बरिपद

बरिपद संग्रहालय में जैन यक्षी की एक स्थानक मूर्ति विद्यमान है, जिन्होंने अपने दाहिने हाथ में सर्प व बांये में अपने पुत्र को ले रखा है। यह सुन्दर मूर्ति लगभग ६वीं शती ई० की बनी प्रतीत होती है।

सालारजंग संग्रहालय, हैदराबाद

सालारजंग संग्रहालय में दो प्रस्तर व कुछ धातु की जैन प्रतिमाएं हैं। प्रथम प्रस्तर प्रतिमा में तीर्थंकर महावीर जी कायोत्सर्ग मुद्रा में नग्न खडे हैं (सं० XLII/८५)। इनके पैरों व कन्धों के दोनों ओर एक-एक जिन ध्यान मुद्रा में विराजमान है। इनके शीश के पीछे बनी गोल प्रभा के दोनों ओर एक-एक चंवर व ऊपर सुन्दर छत्र है। पीठिका पर कन्नड़ में लेख उत्कीर्ण है। मूर्ति चालुक्य कला १२वीं शती ई० की है।

उपर्युक्त मूर्ति की ही समकालीन एक प्रतिमा पार्श्वनाथ की है, जिसमें वह सर्प फणों के नीचे नग्न कायोत्सर्ग मुद्रा में दिखाये गये हैं (सं० /XLII ७२)। प्रस्तुत प्रतिमा के प्रभातोरण पर अन्य तेईस तीर्थंकरों की ध्यान मुद्रा में मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। मूल प्रतिमा के पैरों के समीप सर्प-फणों के नीचे यक्ष धरणेन्द्र

एवं यक्षी पद्मावती की आसन मूर्तियां बनी है जो अपने विभिन्न आयुध लिए हैं। इस मूर्ति की पीठिका पर भी कन्नड़ में लेख उत्कीर्ण है।

धातु की मूर्तियों में पार्श्वनाथ की प्रतिमा विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिसमें वह सर्प के नौ फणों के नीचे खड़े हैं (सं० ६७-१७१२)। इसके अतिरिक्त महावीर जी की पंचतीर्थिक मूर्ति जिस पर सम्वत् १४५३ का लेख है; संभवनाथ का चतुर्विंशति पट्ट, जिस पर सम्वत् १५३० का लेख उत्कीर्ण है और उत्तर-मध्ययुगीन पार्श्वनाथ का चतुर्विंशति-पट्ट आदि भी है, जो विभिन्न कालों में पनपी जैन मूर्ति कला के अध्ययन के लिए उपयोगी है।

राजकीय संग्रहालय, मद्रास

तमिलनाडु के बिलेरी जिले के कगली नामक स्थान से कुछ जैन मूर्तियां प्राप्त हुई थीं। धातु निर्मित यह प्रतिमाएं अब राजकीय संग्रहालय, मद्रास में सुरक्षित हैं। इसी समूह की तीर्थंकर सुमतिनाथ की मूर्ति में वह एक सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में बैठे हैं जिसके मध्य में चक्र बना है (सं० ३६-१।३५)। इनके दांये यक्ष तुम्बरु और बांये यक्षी महाकाली, तथा त्रिछत्र के नीचे बनी प्रभा के दोनो ओर एक-एक चंवरधारी सेवक खड़ा है। मूर्ति का परिकर विमान के प्रकार का बनाया गया है।

इसी संग्रह की द्वितीय महत्त्वपूर्ण महावीर की एक चौबीसी है जिसके मध्य वह नग्न कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं। एक त्रिछत्र के नीचे और इनके दोनों ओर व ऊपर अन्य २३ तीर्थंकर ध्यान मुद्रा में विराजमान है। परिकर के सबसे ऊपरी मान में ध्यानी पार्श्वनाथ प्रदर्शित है। आसन के दोनों ओर शासन देवता यक्ष मातंग व यक्षी सिद्धायिका बने हैं (स०३६-२।३५)। इसके अतिरिक्त महावीर की अन्य दो मूर्तियां (सं० ३६-३-३५), तथा सर्प के पांच फणों के नीचे खड़े सुपार्श्वनाथ की मूर्ति (सं० ३६-१।३५) आदि भी हैं।

दक्षिण अर्काट के सिंगनिकुप्पम स्थान से भी दो महावीर की कायोत्सर्ग मुद्रा में बनी मूर्तियों (सं० ३८६।५७) के अतिरिक्त कुछ अन्य जैन प्रतिमाएं भी हैं, परन्तु उचित लाञ्छन के अभाव में उनकी पहचान करना कठिन है। यहीं से अम्बिका की भी एक त्रिभंग मुद्रा में खड़ी मूर्ति प्राप्त है (सं० ३२१। ५७), जिसमें उनका बांया हाथ माला पकड़े हुए एक सेविका के शीश पर रखा है। यक्षी ने विभिन्न वस्त्राभूषणों के अतिरिक्त करण्डमुकुट भी धारण कर रखा है, जिसके मध्य में तीर्थंकर की ध्यान मुद्रा में लघु मूर्ति बनी है। अम्बिका का पुत्र उनके दाहिनी ओर खड़ा है। लगभग १३वीं शती० ई० में

बनी इस मूर्ति में उनका वाहन सिंह का अंकन नहीं हुआ है।

उपर्युक्त यक्षी मूर्ति की समकालीन तिरुमलई (उत्तरी अर्काट) से प्राप्त चन्द्रप्रभ तथा गिडनगिल (दक्षिण अर्काट) से मिली ऋषभनाथ की मूर्तियां भी संग्रहालय में प्रदर्शित हैं।

राजकीय संग्रहालय, पुडुकोट्टई

इस संग्रहालय में पुडुकोट्टई में कलसक्कडू से मिली मध्यकालीन जैन प्रतिमाएँ संग्रहीत हैं, जिनमें सर्प-फणों के नीचे कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े पार्श्वनाथ, आदिनाथ तथा महावीर की मूर्तियां विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

कोल्हापुर संग्रहालय, कोल्हापुर

कोल्हापुर संग्रहालय में कई जैन प्रस्तर मूर्तियां हैं। इनमें एक मूर्ति में नग्न तीर्थंकर त्रिरथ आसन पर नग्न कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं (सं० ६६)। इनके शीश के पीछे वर्तुलाकार प्रभा, ऊपर त्रिछत्र तथा उसके ऊपर कीर्तिमुख बना है। मूर्ति के दोनो ओर अलंकृत चौकोर स्तम्भों पर मकरमुखीव्याल तथा अन्य अलकरण है। जिन के दाहिनी ओर उनका यक्ष बैठा है। इसका निचला दांया हाथ अभय-मुद्रा में है तथा वे बांये दो हाथों में पाश व फल लिए हैं। बांयी ओर बैठी यक्षी मूर्ति का निचला दांया हाथ फल पकड़े है और बांया वरद मुद्रा में है। दोनों ने मुकुट तथा अन्य आभूषण पहिन रखे हैं। रायबाग़ से मिली यह मूर्ति चालुक्य कला ११ वीं-१२ वीं शती ई० में बनी प्रतीत होती है।

पार्श्वनाथ की मूर्ति में वह एक सर्प कुण्डली के सम्मुख उसके फणों की छाया में नग्न खड़े हैं (सं० ६५६)। उपर्युक्त मूर्ति की भांति इनके वक्ष पर भी श्री वत्स चिह्न का अंकन नहीं है। मूर्ति के पैर तथा निचला भाग काफ़ी नष्ट हो चुका है और केवल यक्षी का शीर्ष ही शेष बचा है। इस मूर्ति की समकालीन एक अन्य मूर्ति महाराष्ट्र के औंध संग्रहालय में भी है।

इस संग्रहालय में एक यक्षी की मूर्ति जो वरुणतीर्थ नामक स्थान से प्राप्त हुई थी, प्रदर्शित है (सं० ६०६)। चालुक्य युगीन १२वीं शती ई० की इस मूर्ति में देवी ऊपर के दो हाथों में गदा व पाश तथा निचले बांये हाथ में बीजपूरक लिए है और शेष हाथ अभयमुद्रा में है। इसने सुन्दर मुकुट, कुण्डल, हार, साड़ी आदि धारण कर रखा है। देवी का वाहन उत्कीर्ण नहीं है। मूर्ति के कन्धों के ऊपर लोहे के छल्ले लगे हैं, जो संभवतः उसे रोकने के लिए लगे हों। परन्तु मूर्ति के आकार को देखने पर वह काफी छोटे प्रतीत होते हैं। ऐसे

दो अन्य छल्ले ऊपर वाले हाथों की कोहनी के नीचे भी लगे हैं। संग्रहालया-ध्यक्ष से पूछने पर ज्ञात हुआ कि जब यह मूर्ति पृथ्वी से प्राप्त हुई थी, तब भी यह छल्ले उसमें लगे थे। ये मूर्ति में काफी गड़े हुए हैं। सम्भव है कि विशेष त्यौहारों पर रथयात्रा आदि के समय मूर्ति को रोकने के लिए वह लगाये गये हों। मुकुट के ऊपर ध्यानी तीर्थंकर की लघु मूर्ति उत्कीर्ण है।

श्री भवानी संग्रहालय, औंध

इस संग्रहालय में कुछ ही जैन प्रतिमाएं प्रदर्शित हैं जो प्रायः सभी चालुक्य कला ११वीं-१२वीं शती ई० की हैं: इनमें से कुछ तो तीर्थंकर मूर्तियों के धड़ हैं व कुछ में केवल ऊपरी भाग ही शेष बचा है। पूर्ण मूर्तियां कम ही हैं। इन्हीं मूर्तियों में एक पार्श्वनाथ की प्रतिमा का ऊपरी भाग भी है, जिसे इस संग्रहालय के संस्थापक श्रीमन्त राजा साहब भवनराओ पन्त-प्रतिनिधि कोल्हा-पुर से लाये थे। इसमें तीर्थंकर के घुंघराले केशों के ऊपर सर्प के सप्त फण हैं, फिर छत्र व कीर्तिमुख आदि हैं। सर्प-फणों के दोनों ओर एक-एक मकर आकृति है और उनके ऊपर अन्य चालुक्ययुगीन मूर्तियों की ही भांति सुन्दर अलंकरण हैं। यह लगभग १२वीं शती ई० की बनी प्रतीत होती है।

भारत कला भवन, वाराणसी

इस संग्रहालय में जैन मूर्तियों का अच्छा संग्रह है। इसमें सम्भवतः सबसे महत्त्वपूर्ण एक उत्तर गुप्तकालीन मूर्ति है, जिसके ऊपरी भाग में तीर्थंकर सिंहासन पर बैठे हैं और उनके दोनों ओर एक सेवक खड़ा है तथा नीचे गोमेध एवं अम्बिका की मूर्तियां अपने बालकों सहित उत्कीर्ण हैं (सं० २१२)। राजघाट से प्राप्त यह मूर्ति कला की दृष्टि से भी पर्याप्त रूप से सुन्दर है (चित्र ३०)।

द्वितीय उल्लेखनीय मूर्ति आदिनाथ की है जिसमें वह सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में बैठे हैं (सं० २२०७३)। मध्य प्रदेश के खजुराहो नामक स्थान से प्राप्त इस प्रतिमा के ऊपरी भाग में अन्य तीर्थंकरों के ध्यान एवं कायोत्सर्ग मुद्रा में लघु मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। मूल मूर्ति के दोनों ओर उनके सेवक व सामने पीठिका पर उनका लाञ्छन वृषभ दिखाया गया है। मूर्ति चन्देल कला ११वीं शती ई० की बनी प्रतीत होती है।

इनके अतिरिक्त इस संग्रहालय में गुजरात एवं राजस्थान में मध्ययुग में निर्मित कई धातु मूर्तियां भी विद्यमान हैं जिनके पृष्ठ भाग पर दानकर्ताओं के तिथियुक्त लेख उत्कीर्ण हैं।

नागपुर संग्रहालय, नागपुर

नागपुर संग्रहालय में भी कई मध्यकालीन जैन पाषाण प्रतिमाएं प्रदर्शित हैं। इनमें से अधिकतर मध्य प्रदेश से प्राप्त हुई हैं और चेदि कलाकारों द्वारा निर्मित हुई प्रतीत होती हैं। ये मूर्तियां मध्य प्रदेश के संग्रहालयों में संग्रहीत प्रतिमाओं से काफ़ी समता रखती हैं। इन्हीं में एक अजितनाथ की मूर्ति है जिसमें वह एक सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में विराजमान हैं। इनके दोनों ओर एक-एक चंवरधारी सेवक खड़ा है और शीश के पीछे बनी प्रभा के दोनों ओर मालाधारी गन्धर्व युग्म तथा छत्र के पास गजवाहक उत्कीर्ण है। सामने की ओर इनका लाञ्छन गज बना है। मूर्ति १०वीं शती ई० की है।

श्रेयांसनाथ की मूर्ति में भी वह ध्यान मुद्रा में सिंहासन पर विराजमान हैं और इनके बांयी ओर एक उपासक हाथ जोड़े खड़ा है। मूर्ति का परिकर खण्डित हो गया है। सामने पीठिका पर इनका लांछन गेंड़ा उत्कीर्ण है। यह सुन्दर मूर्ति १०वीं-११वीं शती ई० में बनी प्रतीत होती है।

भगवान महावीर की दुर्लभ मूर्ति में वह अपने आसन पर ध्यान मुद्रा में दिखाये गये हैं, जिसके नीचे एक पंक्ति में नवग्रहों का अंकन है (चित्र ३९)। इनके दोनों ओर एक-एक उपासक, चंवरधारी सेवक तथा मालाधारी गन्धर्व-युग्म और त्रिछत्र के दोनों ओर गजवाहकों का सुन्दर अंकन है। यह मूर्ति भी उपर्युक्त प्रतिमा की ही समकालीन प्रतीत होती है।

इस संग्रहालय में सुपार्श्वनाथ की दो मूर्तियां हैं। एक में जो मध्य प्रदेश से प्राप्त है, वह ध्यान मुद्रा में सिंहासन पर विराजमान हैं जिसके मध्य में उनका लाञ्छन स्वस्तिक उत्कीर्ण है। दूसरी मूर्ति जो महाराष्ट्र में चांदा ज़िले के कटोली नामक स्थान से मिली थी, ध्यान मुद्रा में बैठे सुपार्श्वनाथ के शीर्ष के ऊपर सर्प के पांच फणों का अङ्कन है, जिससे इनकी पहचान सरलता से हो सकती है। यह दोनों मूर्तियां लगभग १०वीं शती ई० की हैं।

अकोला से प्राप्त शान्तिनाथ की मूर्ति में वह कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं। इन नग्न मूर्ति के वक्ष पर श्रीवत्स चिह्न अङ्कित है। पीठिका पर इनका लाञ्छन मृग बना है। यह मूर्तियां राष्ट्रकूट कला १०वीं शती ई० का सुन्दर उदाहरण हैं।

उपर्युक्त संग्रहालयों के अतिरिक्त खजुराहो, देवगढ़ आदि स्थानों पर भी पुरातत्त्व संग्रहालय हैं जिनमें जैन धर्म से सम्बन्धित प्रायः सभी देवी-देवताओं की मूर्तियां प्रदर्शित हैं।

बंगलादेश के संग्रहालयों में जैन प्रतिमाएं—

ढ़ाका संग्रहालय, ढ़ाका

ढ़ाका संग्रहालय में अन्य जैन मूर्तियों के अतिरिक्त एक तीर्थंकर चन्द्रप्रभ की चौबीसी भी प्रदर्शित है। इसमें शीश-रहित चन्द्रप्रभ मध्य में कायोत्सर्ग-मुद्रा में नग्न खड़े हैं और उनके दोनों ओर एक-एक चंवरधारी सेवक खड़ा है। उनके दोनों ओर अन्य तेईस तीर्थंकर ध्यान मुद्रा में दिखाये गये हैं तथा चन्द्रप्रभ का लाञ्छन अर्धचन्द्र पीठिका पर उत्कीर्ण है। मूर्ति जो पाल कला १०वीं-११वीं शती ई० की है, दिनाजपुर ज़िले के गोविन्दपुर नामक स्थान से मिली थी।

दिनाजपुर संग्रहालय, दिनाजपुर

भेलवा नामक स्थान से प्राप्त ऋषभनाथ की चौबीसी के मध्य में जिन कायोत्सर्ग-मुद्रा में खड़े हैं, जिन के पैरों के समीप चंवरधारी सेवक हैं। मूर्ति के दोनों ओर चार पंक्तियों में अन्य तीर्थंकरों की लघु मूर्तियां कायोत्सर्ग मुद्रा में विद्यमान हैं। ऊपरी भाग में त्रिछत्र के दोनों ओर आकाशचारी गन्धर्व अङ्कित किये गये हैं। सामने पीठिका पर वृषभ है। यह मूर्ति पाल कला ११वीं शती ई० की बनी हुई है।

वरेन्द्र रिसर्च संग्रहालय, राजशाही

इस संग्रहालय में कई पाल कालीन मूर्तियां प्रदर्शित हैं, जिनमें सुरोहर से प्राप्त आदिनाथ की चौबीसी विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। १०वीं-११वीं शती ई० की इस प्रतिमा के मध्य में प्रथम तीर्थंकर ध्यान मुद्रा में विराजमान हैं और उनके दोनों ओर चंवरधारी सेवक खड़ा है। मूल मूर्ति के दोनों ओर तथा ऊपरी भाग में लघु देवालय बने हैं, जिन के ऊपर कलश है और प्रत्येक में एक-एक तीर्थंकर ध्यान मुद्रा में दर्शाया गया है। मूल प्रतिमा के आसन के नीचे एक धर्म चक्र व उसके नीचे उनका वृषभ अङ्कित है, जिसके सामने एक भक्त हाथ जोड़े बैठा है।

शान्तिनाथ की एक चौबीसी में जो ११वीं शती इ० की है, मध्य में त्रिछत्र के नीचे जिन कायोत्सर्ग मुद्रा में नग्न खड़े हैं और नीचे पीठिका पर उनका चिह्न मृग उत्कीर्ण है। शान्तिनाथ के पैरों के समीप चंवरधारी सेवक तथा मध्य भाग में परिकर के अन्य शेष तीर्थंकरों की ध्यान मुद्रा में लघु मूर्तियां हैं।

यहीं पर देयोपारा से प्राप्त दो 'युगलिया' मूर्तियाँ भी हैं, जो लगभग १०वीं-११वीं शती ई० की है। इनमें से प्रथम मूर्ति जिसका ऊपरी भाग नष्ट

हो गया है, 'जिन' के माता-पिता अपने बालकों सहित सुखासन में विराजमान हैं तथा इनके पैरों के समीप भक्त-गण बैठे दिखाये गये हैं।

द्वितीय प्रतिमा जो पूर्ण है, 'जिन' के माता-पिता एक वृक्ष के नीचे जिसके ऊपर ध्यानी तीर्थंकर की मूर्ति है, उपर्युक्त मूर्ति की ही भाँति अपने पुत्रों सहित बैठे हैं। यहां पर भी पीठिका पर भक्तों का अङ्कन हुआ है।

उपर्युक्त जैन प्रतिमाओं के आधार पर इतना अवश्य माना जा सकता है कि यद्यपि बंगाल में पाल युग में बौद्ध धर्म अपनी चरम सीमा पर था, तथापि जैन धर्म भी पनप रहा था और जैन धर्मावलम्बियों द्वारा अपने देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बनाने व पूजने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी।

अध्याय १०

योरप के संग्रहालयों में जैन प्रतिमाएँ

अपनी विदेश यात्राओं के समय योरप एवं अमरीका के विभिन्न संग्रहालय देखने का अवसर मिला था। भारत की अनगिनत प्राचीन कला-कृतियां रोम (इटली) लेनिनग्राड (रूस), बर्लिन (जर्मनी), पेरिस (फ्रांस), स्टाकहोम (स्वेडन), कोपेनहेगन (डेनमार्क), लाईडन व एम्सर्टडम (हालेण्ड), लन्दन, आक्सफोर्ड, बरमिंघम (इंग्लैंड) आदि के अतिरिक्त अनेक निजी संग्रहों में भी सुरक्षित हैं। इन कला-कृतियों में पाषाण, धातु, काष्ठ, हाथी-दांत की बनी मूर्तियों के अतिरिक्त विभिन्न कला-शैली के लघु चित्र भी सम्मिलित हैं, जो उन संग्रहालयों में प्रदर्शित विश्व के विभिन्न भागों से प्राप्त कला-कृतियों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं तथा भारत की प्राचीन कला, धर्म एवं संस्कृति को गौरवान्वित कर रहे हैं। इन्हीं संग्रहालयों में से अनेक में पाषाण व धातु की जैन प्रतिमाएं भी सुरक्षित हैं, जिनका हम यहाँ संक्षेप में वर्णन करेंगे।

म्यूजिगिमे, पेरिस

फ्रान्स की राजधानी पेरिस के प्रसिद्ध म्यूजिगिमे संग्रहालय में भारत व सुदूर-पूर्व एशिया की कला-कृतियों का बड़ा महत्त्वपूर्ण संग्रह है। परन्तु यहाँ का सबसे महत्त्वपूर्ण संग्रह बेग्राम (अफगानिस्तान) का है जहाँ से प्राप्त हाथी-दांत की कृतियों के लिए यह संग्रहालय प्रसिद्ध है। यहीं पर प्रदर्शित सफेद चिटकीदार पत्थर का बना मथुरा क्षेत्र से प्राप्त जिन-मूर्ति का शीर्ष है, जिन के केश एक रेखा द्वारा अंकित किये गए हैं, परन्तु माथे पर 'ऊर्णा' चिह्न का सर्वथा अभाव है। इनके कान, नासिका तथा होंठ भी थोड़े खण्डित हो गए हैं। कला की दृष्टि से यह कुषाण कला दूसरी शती ई० का उदाहरण माना जा सकता है।

उड़ीसा से प्राप्त पूर्वी-गंगयुगीन लगभग १२वीं शती ई० की एक प्रस्तर प्रतिमा में प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभनाथ को कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े दिखाया गया है। उनके केश जटा-मुकुट में सजे हैं तथा कंधों पर भी पड़े हैं। पद्मासन पर जहाँ वह खड़े हैं, एक बैठे वृषभ की आकृति अंकित है, जिससे मूर्ति पहचानने में सहायता मिलती है। त्रिछत्र के ऊपर पीपल की पत्तियों का अंकन है जिससे विदित होता है कि आदिनाथ जी ने पीपल वृक्ष के नीचे तपस्या की थी। मूर्ति के दोनों ओर अष्ट-ग्रहों (केतु नहीं है) तथा एक-एक मालाधारी गन्धर्व का चित्रण है व पैरों के निकट चामरधारी सेवक खड़े हैं। भगवान के शीश के पीछे गोलाकार प्रभा है परन्तु उनके वक्ष पर 'श्रीवत्स' चिह्न का अभाव है। वृषभ के एक ओर मूर्ति के दानवर्ता व उनकी पत्नी बैठे हैं जिनके हाथ अञ्जलि मुद्रा में हैं तथा दूसरी ओर नैवेद्य आदि रखा है। तीर्थङ्कर प्रतिमा नग्न होने के कारण दिगम्बर सम्प्रदाय की प्रतीत होती है।

म्यूज़ियम में ही राजस्थान से प्राप्त १३वीं-१४वीं शती का बना जैन मूर्ति का एक सिरदल भी है (सं० संख्या एम० ए० ४८)। हल्के भूरे पत्थर में निर्मित इस सिरदल पर घुड़नाल डाट (horse-shoe arch) का उसी प्रकार से चित्रण है जैसा कि राजस्थान के मन्दिरों में देखने को मिलता है। मध्य की सबसे ऊपर वाली ताख (niche) में तीर्थङ्कर की ध्यान-मुद्रा में मूर्ति है, जिसके दोनों ओर दो-दो अन्य तीर्थङ्कर कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं। नीचे की तख्ती (panel) पर ध्यान मुद्रा में सात तीर्थङ्कर विराजमान हैं और उनके अगल-बगल वाली ताखों में भी एक-एक तीर्थङ्कर की ध्यान मुद्रा में अन्य मूर्तियां हैं। सिरदल के दोनों कोनों पर मकर-मुख से निकलता खड्गधारी योद्धा बना हुआ है, जिससे वह देखने में और भी सुन्दर प्रतीत होता है।

भगवान महावीर की एक ध्यानस्थ कांस्य मूर्ति में वह एक सिंहासन पर विराजमान हैं। मूर्ति की प्रभा के पास एक-एक चंवरधारी सेवक तथा दाहिनी ओर पार्श्वनाथ, सर्प-फणों की छाया में व बांयी ओर बाहुबलि की स्थानक मूर्तियां है। बाहुबलि के शरीर पर लतायें लिपटी हुई हैं। मूल प्रतिमा के ऊपरी भाग में त्रिछत्र के ऊपर नगाड़ा बजाते हुए दो हाथों का अंकन है जिनके दोनों ओर एक-एक मालाधारी गन्धर्व बना है। नीचे के भाग में भगवान महावीर के यक्ष व यक्षी पद्मों पर विराजमान दिखाये गए हैं। पीठिका पर सामने धर्मचक्र व बिन्दुओं द्वारा अंकित नव-ग्रहों का अंकन किया गया है। दक्षिण से प्राप्त चालुक्य युगीन यह प्रतिमा ९वीं-१०वीं शती का सुन्दर उदाहरण है।

ब्रिटिश संग्रहालय, लन्दन

इस विश्वविख्यात संग्रहालय में अनेक दुर्लभ भारतीय मूर्तियों का विशिष्ट संग्रह है। जैन मूर्ति कला की दृष्टि से सबसे प्राचीन कृति कुषाण काल की है। यह एक 'जिन' मूर्ति का ऊपरी अधो भाग है जिसमें उनके घुंघराले केश बड़ी सुन्दरता से सजाए गए हैं। वक्ष पर श्रीवत्स का अंकन है तथा शीर्ष के पीछे बना प्रभामण्डल मथुरा से प्राप्त अन्य उत्तर कुषाणकालीन मूर्तियों से बड़ा साम्य रखता है, जिससे स्पष्ट है कि मूर्ति लगभग ३री शती ई० में निर्मित हुई होगी।

मथुरा-भरतपुर के समीप स्थित रूपवास की खानों से प्राप्त चिटकीदार लाल बलुए पत्थर में बने तीन 'जिन' मूर्तियों के शीश भी यहाँ सुरक्षित हैं जिनके गोलाकार मुख, धनुष रूपी भौंहे, चौड़े जबड़े तथा भरे होठों को देखकर आभास होता है कि इनका निर्माण गुप्त काल में मथुरा में हुआ होगा।

ब्रिटिश संग्रहालय में मध्य प्रदेश से प्राप्त भी कई सुन्दर प्रस्तर प्रतिमाएं हैं। एक मूर्ति में अष्टभुजी देवी ललितासन मुद्रा में एक कमल पर विराजमान है। इनके सबसे ऊपर वाले हाथों में एक माला है जैसा कि हमें डिडवाना से मिली व जोधपुर संग्रहालय में रखी 'योगनारायण' की मूर्ति में भी देखने को मिलता है। इनके एक दाहिने हाथ में चक्र है व अन्य दो वरद व अभय मुद्रा में दिखाए गए हैं। बांये हाथों में देवी ने एक गोल दर्पण, शंख, संभवतः एक प्याला (cup) आदि ले रखा है। उनके दोनों ओर एक-एक सेविका खड़ी है। उनके दाहिने ओर वीणावादिनी वामनिका का अंकन है तथा देवी के बांये पैर के घुटने के पास उनका वाहन हाथी बैठा दिखाया गया है। मूल मूर्ति के शीर्ष के दोनों ओर एक-एक मालाधारी सेविका तथा ऊपर मध्य में तीर्थङ्कर की ध्यान मुद्रा में मूर्ति है जिनके दोनों ओर एक-एक चंवरधारी सेवक खड़ा है। पीठिका पर देवी का नाम 'सुलोचना' उत्कीर्ण है। कला की दृष्टि से यह मूर्ति ६वीं शती ई० का सुन्दर उदाहरण है।

उपर्युक्त प्रतिमा की समकालीन एक अन्य मूर्ति में देवी अपने वाहन गरुड़ पर जो आलीढ़ मुद्रा में है, बैठी दिखायी गयी है। देवी के दाहिने हाथों में फलों का गुच्छा, अक्षमाला तथा बांये हाथों में पद्म तथा परशु है। देवी के अन्य कई हाथ खण्डित हैं। देवी के केश 'धम्मिल्ल' रूप में सुसज्जित हैं जैसा कि ग्वालियर व बिहार से प्राप्त कुछ पूर्व-मध्य युगीन मूर्तियों में भी देखने को मिलता है। देवी के दोनों ओर एक-एक सेविका त्रिभंग-मुद्रा में

खड़ी है। मूर्ति के ऊपरी भाग में मध्य में ध्यानी तीर्थङ्कर की प्रतिमा है जिनके दोनों ओर एक-एक सेवक के अतिरिक्त एक-एक वीणावादिनी की भी स्थानक मूर्तियां बनी हैं। देवी के वाहन गरुड़ के दोनों हाथ अञ्जलि मुद्रा में हैं, उसका अंकन उसी प्रकार से है जैसा कि इस पक्षीराज पर बैठे विष्णु, लक्ष्मी-नारायण, वैष्णवी अथवा चक्रेश्वरी को भी कहीं-कहीं दिखाया गया है। मूर्ति की पीठिका पर देवी का नाम 'धृति' उत्कीर्ण है। उपर्युक्त वर्णित ये दोनों जैन-मूर्तियां चन्देल काल की बनी प्रतीत होती हैं तथा ऐसी अन्य मूर्तियां खजुराहो के पास स्थित धुबेला संग्रहालय में भी देखी जा सकती हैं।

जैन यक्षी पद्मावती की एक कलात्मक मूर्ति में देवी को सर्प-फणों के नीचे त्रिभंग मुद्रा में खड़ा दिखाया गया है। दाहिने हाथों में एक नाग व तलवार की मूठ (तलवार खण्डित हो चुकी है) है तथा बांये हाथों में ढाल व पद्म पकड़े है। देवी ने करण्ड-मुकुट, हार, तथा अन्य आभूषण धारण कर रखे हैं। देवी के शीश के ऊपर सर्प-फणों के ऊपर ध्यानी तीर्थङ्कर की मूर्ति विद्यमान है। देवी के पैरों के पास उनका एक 'सर्प' बना है तथा सेविकाओं की मूर्तियां खण्डित हो गई हैं। कला की दृष्टि से मालवा से प्राप्त अन्य परमारयुगीन प्रतिमाओं से यह मूर्ति बहुत समता रखती है और १२वीं शती ई० का महत्त्वपूर्ण उदाहरण मानी जा सकती है।

जैनियों में सरस्वती को छठे तीर्थङ्कर पद्मप्रभ की यक्षी माना गया है। जैन सरस्वती की सबसे प्राचीन मूर्ति कंकाली टीला, मथुरा से मिली थी। यह कुषाण कालीन २री शती ई० की मूर्ति अब राज्य संग्रहालय, लखनऊ में प्रदर्शित है। जैन सरस्वती की सुन्दर मध्यकालीन प्रतिमाएं मध्य प्रदेश में देवगढ़ तथा राजस्थान में पल्लू व लाडनू नामक स्थानों से भी प्राप्त हुई हैं। श्वेत संगमरमर की एक प्रतिमा ब्रिटिश संग्रहालय में रखी है, देवी को एक पूर्ण विकसित कमल के ऊपर त्रिभंग मुद्रा में खड़ा दिखाया गया है। उनके दोनों दाहिनें हाथ खण्डित हो चुके हैं, तथा बायें हाथों में अक्षमाला व ताड़-पत्रीय पुस्तक ले रखी है। देवी ने करण्ड-मुकुट, आभूषण व साड़ी पहन रखी है। इनके दोनों ओर दो-दो ध्यानी तीर्थङ्कर तथा शीर्ष के ऊपर पद्मप्रभ की मूर्ति है जिनके दोनों ओर माला पकड़े हुए गन्धर्व युग्म बने हैं। पीठिका के ऊपर दानकर्ता व उनकी पत्नी की मूर्तियां बनी हैं। यह मूर्ति भी परमार कला १२वीं शती ई० का एक अनुपम उदाहरण मानी जा सकती है।

मध्य प्रदेश से प्राप्त एक कलात्मक मूर्ति में यक्ष एवं यक्षी की आसन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। इनके दाहिने हाथ अभय-मुद्रा में हैं तथा वह अपने बांये

हाथों में बीजपूरक-फल पकड़े हैं। मूर्ति के ऊपर एक ताख में ध्यानी तीर्थङ्कर की प्रतिमा है जिसके दोनों ओर माला लिए हुए गन्धर्व-युग्म बने हैं। यक्ष एवं यक्षी के नीचे की ताख में तीन कीचकों के मध्य वीणावादिनी सेविकाओं का भी अंकन हुआ है। पीठिका पर 'अनन्तवीर्य' लेख उत्कीर्ण है, जो संभवत: यक्ष के लिए प्रयुक्त हुआ है। कला की दृष्टि से यह मूर्ति चन्देल काल ९वीं शती ई० की कृति है।

मध्य प्रदेश से ही प्राप्त एक बड़ी सुन्दर प्रतिमा यक्षी चुण्डा की भी है, जो प्रतिहारकालीन १०वीं शती ई० की है। यह बारह-भुजी बैठी मूर्ति, जिसके अधिकतर हाथ खण्डित हो गए हैं, अपने शेष हाथों में पद्म व गोल दर्पण लिए है और एक दाहिने हाथ से माथे पर बिन्दी लगाती दिखाई गई है। प्रस्तुत मूर्ति के दोनों ओर एक-एक सेवक तथा सामने कई भक्तगण बैठे दिखाये गए हैं।

इसी संग्रहालय में उड़ीसा से प्राप्त पूर्वी-गंग युगीन कई दुर्लभ प्रस्तर प्रतिमाएं भी प्रदर्शित हैं जिनमें से एक में ऋषभनाथ व महावीर का अंकन बड़ी सजीवता से किया गया है (चित्र ९)। ये दोनों नग्न मूर्तियाँ जो दिगम्बर सम्प्रदाय की हैं, पद्मासनों पर कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ी हैं। इनमें वराहमिहिर द्वारा वर्णित जैन मूर्ति के सभी लक्षण स्पष्ट दीखते हैं, जिनका वर्णन उसने अपनी 'बृहत्संहिता' के अध्याय ५८ श्लोक ४५ में किया है। मूर्तियों के सबसे ऊपरी भाग में दोनों तीर्थङ्करों की 'कैवल्य' प्राप्ति पर हर्ष ध्वनि करने हेतु दिव्यवादकों के केवल हाथों का अंकन है, जो विभिन्न वाद्यों को बजाते दिखाये गए हैं। तीर्थङ्करों के पैरों के दोनों ओर एक-एक चंवरधारी सेवक खड़ा है। मूर्ति की पीठिका पर सामने आदिनाथ का लाञ्छन वृषभ व महावीर के तीन सिंहों के अतिरिक्त ऐरावतारूढ़ इन्द्र तथा एक उपासक और दो उपासिकाओं की भी लघु मूर्तियां हैं। यह मूर्ति (सं० १८७२, ७-१, ९९) ११वीं शती ई० का अत्यन्त सुन्दर एवं सजीव उदाहरण प्रस्तुत करती है।

उड़ीसा से मिली दो पार्श्वनाथ की मूर्तियां भी हैं। इनमें से प्रथम मूर्ति में भगवान सप्त-फणों की छाया में कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं। उनके घुंघराले केश हैं। मूर्ति नग्न है, जिसके दोनों ओर एक-एक चंवरधारी सेवक व चार-चार ग्रहों का अंकन है। यह मूर्ति १२वीं शती ई० की है। इसी की समकालीन दूसरी मूर्ति में पार्श्वनाथ के पीछे भी सर्प बना है। परन्तु अष्ट-ग्रहों का अभाव है।

उड़ीसा से ही प्राप्त एक सुन्दर मूर्ति अम्बिका देवी की भी है, जिसमें वह आम के वृक्ष के नीचे द्विभंग-मुद्रा में खड़ी हैं। इन्होंने सुन्दर मुकुट,

आभूषण व साड़ी पहन रखी है। इनका एक पुत्र प्रभंकर गोद में व दूसरा शुभंकर इनके दाहिने हाथ में आमों के गुच्छों को पकड़ता हुआ पैरों के पास खड़ा है। मुख्य मूर्ति के दोनों ओर सुन्दर लताएं हैं, जिनके मध्य विभिन्न वाद्यों को बजाती हुई लघु मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। सबसे ऊपरी भाग में तीर्थङ्कर नेमिनाथ की ध्यान मुद्रा में मूर्ति बनी है। नीचे पीठिका पर इनका वाहन सिंह बैठा दिखाया गया है। ११वीं शती ई० में बनी यह मूर्ति उड़ीसा से मिली है व अमरीका की स्टेण्डहल गैलरी में प्रदर्शित मूर्ति से बहुत साम्य रखती है।

गुजरात में चौलुक्य राजाओं के शासन काल में जैन धर्म अपनी पराकाष्ठा पर था। इस युग में निर्मित असंख्य धातु प्रतिमाएं जिनका निर्माण जैन उपासकों ने अपने तीर्थङ्करों व अन्य देवी-देवताओं की पूजा हेतु किया था, आज अनेक संग्रहालयों के अतिरिक्त प्राचीन मन्दिरों में भी देखी जा सकती हैं। ये मूर्तियां प्रमुखतः श्वेताम्बर सम्प्रदाय से संबंधित हैं। परन्तु कला की दृष्टि में इनमें कोई विशेष सौन्दर्य नहीं है। धातु की बनी एक पंचतीर्थिक मूर्ति में महावीर एक कमल पर जो कि सिंहासन पर रखा है, ध्यान मुद्रा में बैठे हैं। इनके दोनों ओर एक सेवक सहित तीर्थङ्कर कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं तथा इनके प्रभा-मण्डल के पास भी अन्य दो तीर्थङ्करों का अंकन है। मूर्ति के ऊपर छत्र है, तथा उनका चिह्न 'सिंह' पीठिका पर सामने अंकित हैं। भगवान के सिंहासन पर दोनों ओर उनका यक्ष मातङ्ग व यक्षी सिद्धायिका बैठे हुए हैं। सामने मध्य में धर्म-चक्र है जिसके दोनों ओर एक-एक मृग तथा नवग्रहों का अंकन है। मूर्ति के दानकर्ताओं की लघु प्रतिमाएं हाथ जोड़े बैठी हैं। मूर्तियों के भारी शरीर एवं सपाट शरीर की बनावट, बड़ी उभरी हुई आंखें तथा चपटी नासिका के आधार पर इसे १५वीं शती ई० की कृति माना गया है।

बिहार से प्राप्त प्रारम्भिक पाल काल लगभग ८वीं शती ई० की एक तीर्थङ्कर मूर्ति में भगवान एक छत्र के नीचे चंवरधारी सेवकों सहित उत्कीर्ण किए गए हैं। इनके पैरों के समीप यक्ष एवं यक्षी की प्रतिमाएं हैं। यक्ष की गोद में एक बालक है तथा उसने अपने बांये हाथ में एक पुष्प ले रखा है। यक्षी का दाहिना हाथ टूटा है तथा एक बालक उसके दांयी ओर व दूसरा गोदी में बैठा है। अन्य कोई विशेष चिह्न के अभाव में इनकी सही पहचान करना कठिन प्रतीत होता है। मूर्ति के नीचे बनी ताख में पांच लघु प्रतिमाएं हैं जैसा कि पूर्वी उत्तर प्रदेश से प्राप्त एवं भारत कला भवन, वाराणसी में प्रदर्शित तीर्थङ्कर मूर्ति में भी दिखाया गया है (चित्र ३०)।

इसी राज्य से प्राप्त एक धातु मूर्ति में जो पालकालीन ९वीं-१०वीं ई० की है, तीर्थङ्कर को सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में अंकित किया गया है। मूर्ति में जिनके चिह्न के अभाव में कन्धों पर पड़े केश के आधार पर उनकी पहचान आदिनाथ से की जा सकती है, शीर्ष के पीछे बने प्रभामण्डल के बाह्य भाग से ज्वाला निकलती दिखाई गई है।

ब्रिटिश संग्रहालय में ही दक्षिण भारत के विभिन्न भागों से मिली अनेक प्रतिमाएं भी प्रदर्शित हैं। इनमें एक मुख्य मूर्ति आदिनाथ की है जो कि पंच-रथ पीठिका पर कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं। इनके केश भी कंधों पर लटक रहे हैं तथा शीश के पीछे प्रभा है। सामने यक्ष एवं यक्षी की मूर्तियां हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि बंगाल के अतिरिक्त उत्तरी भारत के अन्य भागों से प्राप्त तीर्थङ्कर मूर्तियों की भाँति, जिनके वक्ष पर सदा ही 'श्रीवत्स' चिह्न अंकित रहता है, यहाँ उसका सर्वथा अभाव है। १२वीं शती ई० में बनी इस मूर्ति पर दान लेख भी उत्कीर्ण है।

तीर्थङ्कर की एक चौबीसी में मूल मूर्ति के दोनों ओर तथा ऊपरी भाग में अन्य तेईस तीर्थङ्करों की लघु प्रतिमाएं बनी हैं। इस नग्न मूर्ति के निचले भाग में शासन-देवताओं का भी अंकन हुआ है। कला की दृष्टि से यह मूर्ति १२वीं-१३वीं शती ई० की मानी जा सकती है।

दक्षिण से प्राप्त चौलुक्य युगीन १२वीं शती ई० की एक कलात्मक मूर्ति में तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ को सर्प के सप्त फणों की छाया में ध्यान-मुद्रा में बैठे दिखाया गया है जिसके सबसे ऊपर कीर्ति-मुख भी बना है। इनके पैरों के समीप बैठे यक्ष एवं यक्षी धरणेन्द्र एवं पद्मावती भी तीन सर्प-फणों के नीचे अपने वाहन हाथी व सर्प पर बैठे हुए हैं। मूल प्रतिमा के दोनों ओर एक-एक सेवक जो चंवर पकड़े हुए हैं, जिन को फल-जैसा कोई पदार्थ भेंट करता दिखाया गया है।

इसी क्षेत्र से प्राप्त एक अन्य पार्श्वनाथ मूर्ति, जिसको श्री डब्लू० एस० हेडवे ने गलती से महावीर की प्रतिमा बताया था, सप्त सर्प-फणों के नीचे ध्यान-मुद्रा में अंकित किया गया है। यहाँ पर भी धरणेन्द्र एवं पद्मावती को दर्शाया गया है जो अपने विविध आयुध पकड़े हैं। मूर्ति पर उत्कीर्ण लेख के आधार पर इसे १०वीं-११वीं शती ई० का माना जा सकता है।

इन मूर्तियों के अतिरिक्त कुछ अन्य कांस्य प्रतिमाएं भी हैं, जिनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय बुद्धपद से मिली ध्यान मुद्रा में बैठे तीर्थङ्कर की ९वीं-१०वीं शती ई० की मूर्ति है (सं० १९१४,२-१८,१)। ऐसी ही एक अन्य

तीर्थङ्कर की मूर्ति, १२वीं शती ई० की है (सं० १६१४, २-१८,६)। जैन यक्ष एवं यक्षी की १०वीं शती ई० (सं० १६१४, २-१८,१४); यक्ष एवं यक्षी की स्थानक मूर्ति जिसके ऊपरी भाग में तीर्थङ्कर कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं और सामने अष्ट-ग्रहों का अंकन है (सं० १६१४,-२-१८, १३); तथा तीर्थङ्कर की खड़ी प्रतिमा जिसका दाहिना भाग खण्डित है (सं० १६१४, २-१८), और जो होयसल कला, १३वीं शती ई० का सुन्दर उदाहरण है।

कर्णाटक से प्राप्त एक सुन्दर धातु प्रतिमा में सरस्वती को बड़ी ही सुन्दरता से दिखाया गया है। इनके दाहिने हाथ में पद्म व बांये में पुस्तक है तथा शीश के ऊपर ध्यानी तीर्थङ्कर की लघु मूर्ति बनी है। चालुक्य कालीन १०वीं-११वीं शती ई० में निर्मित यह देवी मूर्ति अमरीका के लास एन्जिलीस काऊन्टी म्यूजियम आफ आर्ट में प्रदर्शित अम्बिका की मूर्ति से बहुत साम्य रखती है।

कर्णाटक से ही प्राप्त कुछ लघु कांस्य मूर्तियाँ भी हैं जिनमें एक नग्न 'जिन' की स्थानक मूर्ति है (सं० १६१४, २-१८,३)। इनका दाहिना हाथ टूटा है। यह लगभग १०वी-११वीं शती ई० की है। ऐसी ही दो तीर्थङ्करों की अन्य नग्न प्रतिमाएं हैं जो १२वीं-१३वीं शती ई० की हैं। इनमें भी वह कायोत्सर्ग मुद्रा में तप करते दिखाए गए हैं। इन्हीं के साथ 'जिन' के माता-पिता की भी एक मूर्ति है जिसकी पीठिका पर आठ नग्न मूर्तियां बनी हैं। इसमें पुरुष मूर्ति के दाहिने हाथ में पद्म व बांये में बीजपूरक है और स्त्री मूर्ति ने भी यह पदार्थ अपने हाथों में ले रखे हैं। १२वीं शती ई० में बनी इस मूर्ति के ऊपरी भाग में ध्यानी 'जिन' की लघु मूर्ति उत्कीर्ण है।

इसी संग्रहालय में अन्य मध्ययुगीन मूर्तियों के अतिरिक्त जैन भक्तों द्वारा पूजा में प्रयोग की जाने वाले जलपात्र एवं धूपदान आदि भी प्रदर्शित हैं जो बनावट के आधार पर पश्चिमी गंग सम्राटों के समय लगभग १००० ई० के बने प्रतीत होते हैं (सं० १६३६, १२-१६, ३-४)। पश्चिमी गंग कालीन पार्श्वनाथ की बैठी मूर्ति जो १००० ई० की है, जैन मूर्तिकला के क्षेत्र में पर्याप्त रूप से सुन्दर मानी जा सकती है (सं० १६३६, १२-१६,१)। उत्तर गंगयुगीन लगभग ११वीं शती० ई० की बनी एक अन्य धूपदानी भी किसी प्रकार से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

विक्टोरिया एण्ड अलवर्ट संग्रहालय, लन्दन

लन्दन स्थित यह संग्रहालय भी प्रत्येक भारतीय कला के विद्यार्थी के लिए समान रूप से दर्शनीय है। प्राचीन प्रतिमाओं के अतिरिक्त यहाँ मुग़ल-

कालीन लघुचित्रों का दुर्लभ संग्रह है, जिसकी समानता सम्भवतः विश्व का अन्य कोई संग्रहालय नहीं कर सकता है।

यहाँ के विशाल भारतीय मूर्तिकला के कक्ष में जैन प्रतिमाएं प्रदर्शित हैं जिनमें सबसे प्राचीन मथुरा से प्राप्त कुषाण-कालीन शीर्षरहित प्रतिमा है जिसमें उन्हें कायोत्सर्ग मुद्रा में दर्शाया गया है। मूर्ति नग्न है और उसके वक्ष पर कुषाण शैली में 'श्री वत्स' भी बना है। मूर्ति में 'जिन' के केश कन्धों पर लटक रहे हैं जिससे उसकी पहचान ऋषभनाथ से की जा सकती है, यद्यपि संग्रहालय के रिकार्ड में उसे नेमिनाथ वर्णित किया गया है, जो त्रुटिपूर्ण है।

ऋषभनाथ की एक अन्य मूर्ति जो उत्तर प्रदेश के मिरज़ापुर स्थान से मिली है, उत्तर गुप्तकाल छठी शती ई० का सुन्दर उदाहरण है। इस मूर्ति का शीर्ष खण्डित हो गया है। वक्ष पर 'श्रीवत्स' तथा सिंहासन पर उनका चिह्न वृषभ अंकित है। मूर्ति के दाहिनी ओर का सेवक शीश रहित है तथा बांयीं ओर का सेवक नष्ट हो चुका है। यक्ष एवं यक्षी की खण्डित मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं।

पार्श्वनाथ की पाषाण प्रतिमा, जो मध्य प्रदेश के ग्यारसपुर नामक स्थान पर बने किसी जैन देवालय में प्रतिष्ठित रही होगी, मूर्तिकला की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है (सं० आई० एस० १८-१५५६)। प्रस्तुत मूर्ति में पार्श्वनाथ एक सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में प्रदर्शित किए गए हैं। यह अद्वितीय प्रतिमा उस कथा का चित्रण प्रस्तुत करती है जबकि पार्श्वनाथ जी ढहकी वृक्ष की छाया में तपस्या कर रहे थे और 'मेघ कुमार' ने एक बहुत बड़े तूफान के रूप में उनकी तपस्या में विघ्न डालने हेतु उन पर आक्रमण किया था। परन्तु उसी समय नागराज धरणेन्द्र ने अपने विशाल फण उन पर फैलाकर उस तूफान के वेग से उनकी सुरक्षा की थी। इस मूर्ति के ऊपरी भाग में बादल आदि के साथ तूफान के वेग को भी दिखाया गया है और मध्य में धरणेन्द्र अपने फणों को भगवान के ऊपर फैलाए हुए हैं। साथ ही नागराज की पत्नी नागिनी पद्मावती जो मुख्य मूर्ति के बांयी ओर खड़ी है, हाथों से छत्र तीर्थङ्कर के ऊपर उठाए हुए है, जिनके दोनों ओर एक-एक चंवरधारी खड़ा हुआ है। सर्प-फणों के दोनों ओर एक-एक आकाशचारी गन्धर्व-युग्म है तथा सबसे ऊपर मध्य में पार्श्वनाथ की ज्ञान प्राप्ति पर हर्ष ध्वनि करने हेतु नगाड़ा बजाते हुए हाथों का चित्रण किया गया है। सिंहासन पर सामने एक वामन चक्र पकड़े अंकित किया गया है। यह मूर्ति अपने प्रकार का बेजोड़ उदाहरण है और वर्धन काल ७वीं शती ई० की महानतम कृतियों में से एक है। इसी की समकालीन परन्तु बिहार से प्राप्त पार्श्वनाथ की स्थानक

मूर्ति, जिस पर कमठ के आक्रमण का दृश्य अंकित है, भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता में प्रदर्शित है (चित्र ५)।

गुजरात से प्राप्त किसी 'जिन' की कांस्य त्रि-तीर्थिका में भगवान एक सुन्दर आसन पर जो एक सिंहासन पर रखा है, ध्यान-मुद्रा में विराजमान हैं। इनके दोनों ओर एक-एक अन्य तीर्थङ्कर अपने चंवरधारी सेवक सहित कायोत्सर्ग मुद्रा में दर्शाया गया है। तीर्थङ्करों की आँखों एवं श्रीवत्स चिह्न पर चाँदी लगी हुई है, जैसा कि पश्चिमी भारत से प्राप्त अन्य मध्ययुगीन तीर्थङ्करों की मूर्तियों में देखने को मिलता है। यक्ष एवं यक्षी के हाथों में पकड़े आयुधों के आधार पर उनकी पहचान गोमेध एवं अम्बिका से की जा सकती है, जो कि नेमिनाथ के शासन देवता के रूप में प्रसिद्ध हैं, यद्यपि उनके चिन्ह 'शंख' का मूर्ति पर सर्वथा अभाव है।

राजस्थान में निर्मित दूसरी विशाल कांस्य प्रतिमा १६वें तीर्थङ्कर शान्तिनाथ की है (सं० आई० एस० ९३०)। चौहान युगीन इस कलात्मक मूर्ति में भगवान ध्यान-मुद्रा में विराजमान दिखाये गये हैं। उनके दोनों ओर चंवर-धारी एक-एक सेवक खड़ा है और शीश के पीछे सुन्दर एवं अलंकृत प्रभामण्डल बना है। प्रस्तुत प्रतिमा पर उत्खनित लेख से विदित होता है कि 'नायल गच्छ' के अनुयायियों ने विक्रम संवत् १२२४ (११६८ ई०) में इस मूर्ति की प्रतिष्ठापना की थी।

इसी कक्ष में सफेद संगमरमर में उत्कीर्ण किसी परमारकालीन, लगभग १३वीं शती ई० में बने जैन मन्दिर से मिली एक चंवरधारी की प्रतिमा भी प्रदर्शित है।

उड़ीसा से प्राप्त जैन यक्षी अम्बिका की एक मूर्ति में उन्हें पूर्ण-विकसित कमल पर ललितासन में बैठा दिखाया गया है। उनके घुंघराले केश एक जूड़े के रूप में सजे हैं तथा वह अनेक सुन्दर आभूषणों से सुसज्जित है। इनके दो पुत्रों में से एक गोद में व दूसरा दाहिनी ओर खड़ा है। इनके दाहिने हाथ में आम्रलुम्बि है तथा वाहन सिंह सामने पीठिका पर बैठा हुआ है। शीश के पीछे बने आम्र वृक्ष के ऊपर नेमिनाथ की ध्यानस्थ मूर्ति है जिसके दोनों ओर सेवक आदि बने हैं। कला की दृष्टि से यह मूर्ति पूर्वी गंग कला १२वीं-१३वीं शती ई० का बड़ा सुन्दर उदाहरण माना जा सकता है।

इसी संग्रहालय में चौलुक्ययुगीन दो अन्य प्रतिमाएं भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें से प्रथम पार्श्वनाथ की मूर्ति है जिसके पीछे सर्प की कुण्डली बनी है और उसके फण भगवान के शीश के ऊपर हैं। उनका लांछन,

सर्प, पीठिका पर सामने उत्कीर्ण है। इसी प्रकार की पार्श्वनाथ की दूसरी मूर्ति में सर्प-फणों के दोनों ओर चंवरधारी सेवक दिखाये गए हैं तथा मध्य में त्रिछत्र है। यक्ष धरणेन्द्र तथा यक्षी पद्मावती ने हाथों में अंकुश व पाश ले रखे हैं और वे भी सर्प-फणों के नीचे बैठे हुए हैं। प्रस्तुत मूर्ति की पीठिका पर उत्खनित लेख से विदित होता है कि इसका निर्माण १२वीं शती ई० में गुलबर्ग में बने पार्श्वनाथ के देवालय में प्रतिष्ठापना के लिए हुआ था।

अशुमूलियन संग्रहालय, आक्सफोर्ड

इस प्रसिद्ध संग्रहालय में केवल कुछ ही पाषाण एवं धातु की जैन प्रतिमाएं हैं। इनमें सबसे प्राचीन मथुरा से प्राप्त कुषाण कालीन, लगभग २री शती ई० की जिन मूर्ति का शीर्ष है, जिसमें घुंघराले केश विशेष रूप से देखने योग्य हैं (सं० १९६३.२७)।

पश्चिमी भारत में निर्मित ७वीं शती ई० की दूसरी मूर्ति आदिनाथ की है। इस कांस्य मूर्ति में उनके केश कन्धों पर लटके हुए हैं तथा उनका लाञ्छन 'वृषभ' सामने पीठिका पर उत्कीर्ण है।

उपर्युक्त मूर्ति के साथ ही कुन्थुनाथ की भी दो कांस्य प्रतिमायें हैं जो कला की दृष्टि से पश्चिमी भारत में बनी प्रतीत होती हैं। इन प्रतिमाओं पर क्रमशः विक्रम संवत् १५२७ (१४७० ई०) तथा १५३३ (१४७६ ई०) के लेख उत्कीर्ण हैं जिनसे ज्ञात होता है कि इनकी प्रतिष्ठापना विदिशा में हुई थी।

राष्ट्रीय संग्रहालय, कोपेनहेगन

डेनमार्क के इस राष्ट्रीय संग्रहालय में दक्षिण भारत, विशेषकर कर्णाटक में बनी चौलुक्य एवं होयसल युगीन कला का, भारत के बाहर, संभवतः सबसे विशाल एवं महत्त्वपूर्ण संग्रह है। इसी संग्रह में काकतीय कला की बनी चार जैन प्रतिमाएं भी प्रदर्शित हैं।

इसमें प्रथम मूर्ति संभवतः महावीर की है जो एक ऊंचे सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में विराजमान हैं। इनके दोनों ओर चंवरधारी सेवक व ऊपर त्रिछत्र बना है।

दूसरी प्रतिमा भी संभवतः महावीर की है जो नग्न है। इसमें वह त्रिछत्र की छाया में कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं। इनके दाहिने कंधे के समीप यक्ष खड़ा है, जिसके हाथों में पद्म व बीजपूरक फल है। यह अपने वाहन मकर पर बैठा है। बांयीं ओर यक्षी भी पद्म व बीजपूरक फल लिए एक अन्य

मकर पर बैठी है। ऊपर जैसी अन्य दो लघु मूर्तियां वही वस्तुएं लिए तीर्थङ्कर के पैरों के पास खड़ी दिखायी गई हैं।

तीर्थङ्कर महावीर की एक अन्य मूर्ति में भी वह पहले की ही भांति कायोत्सर्ग-मुद्रा में खड़े हुए हैं। यहाँ पर भी वह नग्न हैं। इनके घुंघराले केश हैं, परन्तु उनके पैर व बांया हाथ खण्डित है।

चौथी प्रतिमा भगवान आदिनाथ की चौबीसी है जिसे लेबिल में गलती से महावीर बताया गया है। इस ध्यानी तीर्थङ्कर की मूर्ति में उनके केश कन्धों पर पड़े हैं तथा शीर्ष के ऊपर त्रिछत्र बना है। अन्य तेईस तीर्थङ्करों की लघु मूर्तियां मूल प्रतिमा के दायें, बायें तथा ऊपर उत्कीर्ण हैं। यह सभी मूर्तियां भी ध्यान मुद्रा में हैं तथा सभी के शीर्ष पर एक छत्र बना है।

उपर्युक्त वर्णित चारों प्रतिमाएं १२वीं शती ई० में उत्कीर्ण हुई प्रतीत होती हैं।

रिज्क म्यूजियम बोर वोल्कन्कुण्डे, लाईडन

इस संग्रहालय में विशेषकर सुदूर-पूर्व एशियायी देशों की मूर्तियों का महत्त्वपूर्ण संग्रह है। भारत से प्राप्त मूर्तियों में केवल निम्नलिखित दो जैन प्रतिमाएं हैं।

प्रथम मथुरा से प्राप्त कुषाणकालीन २री शती ई० में निर्मित किसी 'जिन' मूर्ति का शीर्ष है। इसमें गोल मुख व बड़ी आंखें बनी हैं।

दूसरी मूर्ति जैन पंच-तीर्थिक है जिसके मध्य में एक तीर्थङ्कर की ध्यानस्थ प्रतिमा है और उनके दोनों ओर अन्य दो-दो तीर्थङ्कर बने हुए हैं। पीठिका पर नव-ग्रहों का अंकन है। मूर्ति पर १५६० ई० का एक लेख उत्कीर्ण है। यह प्रतिमा पश्चिमी भारत में निर्मित हुई प्रतीत होती है।

म्यूजियम फर इण्डिश कुन्स्ट, बर्लिन

भारतीय कला के इस प्रसिद्ध संग्रहालय में जहाँ तक जैन कला का संबंध है, 'जिन' मूर्तियों के दो कुषाणकालीन, लगभग २री शती ई० के दो शीर्ष हैं, जो मथुरा के सफेद चिटकीदार लाल बलुए पत्थर में बने हैं। इनमें से प्रथम शीर्ष जिसकी नासिका व कान खण्डित हो चुके हैं, के केशों को केवल एक रेखा द्वारा दर्शाया गया है (सं० ११), जबकि दूसरे जिन शीर्ष में, केश ऊपर की ओर बंधे मिलते हैं (सं० १९)। इस काल की अनेक तीर्थङ्कर-मूर्तियां लखनऊ व मथुरा संग्रहालयों में भी देखी जा सकती हैं।

पूर्वी भारत में मानभूमि से प्राप्त एक मध्यकालीन मूर्ति में आदिनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं, जिनके दोनों ओर अन्य तीर्थङ्कर मूर्तियों के अतिरिक्त नीचे के भाग में उनके सेवकों का भी अंकन हुआ है।

इस संग्रहालय में दक्षिण भारत से प्राप्त एक मूर्ति में भगवान महावीर भी कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं, जिनके दोनों ओर उपासक तथा सामने अष्ट-ग्रहों का अंकन है।

यहीं पर दक्षिण भारत में निर्मित दो मध्यकालीन कांस्य प्रतिमाएं भी विद्यमान हैं। इनमें से प्रथम में नग्न 'जिन' कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं और उनके दोनों ओर बने छः-छः ध्यानी तीर्थङ्करों के अतिरिक्त एक अन्य ध्यानी तीर्थङ्कर की मूर्ति त्रिछत्र के ऊपर तथा नीचे यक्ष एवं यक्षी की स्थानक मूर्तियाँ भी देखने को मिलती हैं। द्वितीय प्रतिमा में नग्न जिन एक वृक्ष के ऊपर की भांति खड़े हैं। इनके शीश के पीछे प्रभामण्डल है, जो इससे पहले वाली मूर्ति में नहीं है।

म्यूजियम फर वोल्कर कुण्डे, म्यूनिख

इस संग्रहालय में केवल दो ही जैन प्रतिमाएं हैं। इसमें प्रथम मूर्ति देवी अम्बिका की है, जिसे गलती से लेबिल में दुर्गा माना गया है। मध्य प्रदेश से प्राप्त चन्देलकालीन १२वीं शती ई० की इस सुन्दर मूर्ति में देवी अपने वाहन सिंह पर विराजमान है। इनका दाहिना हाथ जो आम्र-लुम्बि पकड़े था, टूट गया है, दूसरे हाथ से वह गोद में बैठे बालक को पकड़े हैं। इनका दूसरा बालक, पैर के पास है तथा दोनों ओर सेविकाओं के अतिरिक्त जो घट लिए हैं, शार्दूल आदि बने हुए हैं। इनकी प्रभा के दाहिनी ओर गजा-रूढ़ इन्द्राणी है जिनके नीचे के दो हाथों में कमल व ऊपर वाले हाथों में वज्र व अंकुश है। इसी प्रकार प्रभा के बांयी ओर गरुडारूढ़ चक्रेश्वरी की मूर्ति है जिसके सभी चारों हाथों में चक्र हैं। शीश के ऊपर मध्य में नेमिनाथ की ध्यान मुद्रा में मूर्ति है जिनके दोनों ओर एक-एक चंवरधारी सेवक खड़ा है। ऊपर बने त्रिछत्र के दोनों ओर गन्धर्व उड़ रहे हैं। ऐसे ही अन्य मालाधारी गन्धर्व युग्म अम्बिका की प्रभा के दोनों ओर भी दिखाए गए हैं। मूर्ति के दोनों ओर हाथ जोड़े हुए दानकर्ताओं की लघु मूर्तियां हैं (सं० १६)।

द्वितीय मूर्ति एक नग्न तीर्थङ्कर की है जिसमें वह कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हुए हैं। श्वेत संगमरमर की यह मूर्ति जो गुजरात अथवा राजस्थान के किसी भाग में बनी प्रतीत होती है, कला की दृष्टि से असंतुलित है और देखने में भी रुचिकर प्रतीत नहीं होती। इसका निर्माणकाल १५वीं शती ई० माना गया है।

राष्ट्रीय संग्रहालय, रोम

इटली के राष्ट्रीय संग्रहालय में जो रोम में स्थित है, कई अच्छी भारतीय मूर्तियां प्रदर्शित हैं। यहां पर ही कांस्य निर्मित नेमिनाथ की मूर्ति है, जिसके मध्य में वह कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं। इनके अगल बगल में तीन अन्य तीर्थङ्कर खड़े हैं व दो बैठे हैं। नीचे दाहिनी ओर गोमेध व बांयी ओर अम्बिका बैठी दिखायी गयी हैं। मूल मूर्ति के पद्मासन के नीचे एक यक्ष-यक्षी का अन्य युग्म भी है व सबसे नीचे एक स्थानक प्रतिमा है। नेमिनाथ के दोनों ओर गज-शार्दूल व ऊपर त्रिछत्र बना है। गुजरात में बनी पीतल की इस मूर्ति पर १४५० ई० का तिथियुक्त लेख उत्कीर्ण है। इस मूर्ति की ऊंचाई लगभग १८ इंच है।

म्युजियम रिटबर्ग, ज्युरिक

इस संग्रहालय में गान्धार से प्राप्त बौद्ध मूर्तियों के अतिरिक्त मध्यकालीन प्रतिमाओं का अच्छा संग्रह है। इसमें तीन निम्नलिखित जैन प्रस्तर प्रतिमाएं भी हैं :-

तीर्थङ्कर शीर्ष, जो मथुरा की कुषाण कला १ली-२री शती का उदाहरण है, केश रहित है। प्रारम्भिक कुषाण काल की मूर्तियों में तीर्थङ्कर को अधिकतर इसी प्रकार दिखाया जाता था, जबकि उत्तर कुषाण काल व बाद की मूर्तियों में उनके शीश पर घुंघराले केश बनाये जाते थे। मूर्ति की नासिका तथा कान कुछ खण्डित हैं (आर० VI-२)।

द्वितीय मूर्ति संभवतः परमार शासकों की प्रसिद्ध नगरी चन्द्रावती से प्राप्त हुई थी। श्वेत संगमरमर की बनी ऋषभनाथ की यह विशाल मूर्ति राजस्थान की श्वेताम्बर जैन कला का एक बेजोड़ उदाहरण मानी जा सकती है। इसमें उन्हें दो स्तम्भों के मध्य त्रिछत्र के नीचे कायोत्सर्ग मुद्रा में दिखाया गया है। उनके शीश पर ऊष्णीष है तथा वक्ष पर श्रीवत्स चिन्ह है और वह पारदर्शक धोती धारण किये हैं जैसा कि नरहड़ से प्राप्त मुनि सुव्रत व नेमिनाथ के समकालीन प्रतिमाओं में भी देखने को मिलता है। इनके पैरों के समीप चंवरधारी सेवक व सेविकाओं का अंकन है जिन्होंने करण्ड-मुकुट धारण कर रखे हैं। चरणों के पास मूर्ति के दानकर्ता व उनकी पत्नी बैठे हैं और मध्य में पीठिका पर वृषभ बना है। प्रभा के दोनों ओर मालाधारी गन्धर्व व बंसी बजाते दिव्य अंकित हैं। ऊपर त्रिछत्र के दोनों ओर भी गजवाहक व उनके मध्य में शंखादि बजाते तीन मानव आकृतियां हैं। इन्हीं के समीप एक-एक तीर्थङ्कर कायोत्सर्ग मुद्रा में है और प्रभा के ऊपर मध्य में ध्यानी तीर्थङ्कर

तथा तीन-तीन देवी की लघु मूर्तियां बनी हैं। स्तम्भ के बाह्य भाग में भी दोनों ओर अलग-अलग ताखों में अन्य देवी मूर्तियां स्थित हैं जिनके सबसे ऊपरी भाग में गज-शार्दूल बने हैं। इतनी अधिक सुन्दर जैन प्रतिमा कम ही देखने को मिली है (आर० २१३)। यह १२वीं शती ई० में बनी प्रतीत होती है।

तीसरी प्रतिमा भी जो श्वेत संगमरमर की बनी है भगवान सुपार्श्वनाथ की है। दक्षिणी पश्चिम राजस्थान अथवा गुजरात में निर्मित इस मूर्ति में तीर्थङ्कर एक चौकी पर ध्यान मुद्रा में बैठे हैं जिस पर एक खण्डित लेख "संवत् ८४२, वर्षे चैत्र........." उत्कीर्ण है। लेख बाद का प्रतीत होता है, क्योंकि भारी-भरकम गोल शरीर वाली यह मूर्ति कदापि पन्द्रहवीं शताब्दी से पूर्व की नहीं हो सकती। इनका लाञ्छन स्वस्तिक सामने आसन पर अंकित है जिसके दांये उपर्युक्त लेख उत्कीर्ण है। तीर्थङ्कर धोती पहने हैं जो स्पष्ट है। इनके शरीर की बनावट बेडोल, आंख, नाक मोटे तथा कान भी आवश्यकता से अधिक लम्बे हैं। ऐसी प्रतिमाएं आज भी पश्चिमी भारत के अनेक जैन मन्दिरों में देखी जा सकती हैं।

रजग्रेड संग्रहालय, रजग्रेड

सन् १६२८ में उत्तर-पूर्वी बुलगेरिया में केमल नामक स्थान से तीर्थङ्कर की एक धातु प्रतिमा प्राप्त हुई थी, जो अब रज़ग्रेड संग्रहालय में प्रदर्शित है। इसमें तीर्थङ्कर एक सुन्दर सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में विराजमान हैं। इनके वक्ष पर श्री-वत्स चिह्न अंकित है। लगभग ११वीं शती ई० में निर्मित यह प्रतिमा राजस्थान से प्राप्त मध्यकालीन प्रतिमाओं से काफी समानता रखती है। संभव है, राजस्थान का कोई जैन व्यापारी मध्यकाल में अपनी विदेश यात्रा के समय इस मूर्ति को भी पूजा हेतु अपने साथ ले गया हो।

अध्याय ११

अमरीकी संग्रहालयों एवं निजी संग्रहों में जैन प्रतिमाएँ

अमरीकी संग्रहालयों एवं निजी संग्रहों में जैन प्रतिमाएं

अब से लगभग पचास वर्ष पूर्व जब सुप्रसिद्ध विद्वान् एवं कला मर्मज्ञ डाक्टर आनन्द कुमारस्वामी ने भारतीय कला का सही ढंग से मूल्यांकन कर संसार के सम्मुख रखा, तब से योरप एवं अमरीका के संग्रहालयों एवं धनी लोगों में भारतीय कला-कृतियों को प्राप्त करने की होड़ सी लग गई। इसके फलस्वरूप वहाँ के अनेक संग्रहालयों में विशेष रूप से भारतीय कक्षों की स्थापना हुई, जिनमें पाषाण, कांस्य, मृण्मय, काष्ठ, हाथी-दांत की मूर्तियों के अतिरिक्त सुन्दर लघु चित्रों को भी प्रदर्शित किया गया। अमरीका के लगभग प्रत्येक संग्रहालय में अन्य धर्मों के देवी देवताओं के साथ-साथ जैन तीर्थङ्करों एवं यक्ष व यक्षी आदि की बहुमूल्य प्रतिमाएँ भी विद्यमान हैं, जो जैन धर्म एवं कला के विद्यार्थियों के अध्ययन के लिए बड़ी उपयोगी हैं।

म्युजियम आफ फाईन आर्ट्स, बोस्टन

डा० आनन्द कुमारस्वामी इस संग्रहालय में भारतीय कला विभाग के काफ़ी समय तक 'कीपर' रहे और उन्होने अपने समय में अनेक महत्त्वपूर्ण कलाकृतियों का संग्रह कर तथा उन्हें प्रकाशित कर इस संग्रहालय की महत्ता को बढ़ाया। इस संग्रहालय में देवगढ़ क्षेत्र से जो मध्य काल में जैन मूर्ति कला का एक प्रमुख केन्द्र था, कई सुन्दर तीर्थङ्कर मूर्तियां हैं, जिनमें लगभग तीन प्रतिमाएं भगवान ऋषभनाथ की हैं।

प्रथम मूर्ति में आदिनाथ पद्मासन पर ध्यान मुद्रा में बैठे हैं और दाहिने ओर एक सेवक व सेविका खड़े हैं, बांयी ओर की यह मूर्तियां खण्डित हो चुकी हैं। शीर्ष के पीछे बनी प्रभा के दोनों ओर आकाश में उड़ते हुए गन्धर्व युग्म बने हैं और त्रिछत्र के दोनों ओर गज पुष्प अर्पित करते हुए दिखाये

गये हैं। श्री डेनिसन रौस संग्रह की यह मूर्ति लगभग दसवीं शती ई० की बनी प्रतीत होती है। यद्यपि इस मूर्ति में आदिनाथ का लांछन 'वृषभ' उत्कीर्ण नहीं है तो भी उनकी पहचान उनके लम्बे केशों के आधार पर की गई है जो दोनों कन्धों पर पड़े हैं।

देवगढ़ से ही प्राप्त एक अन्य चन्देलकालीन मूर्ति में भी आदिनाथ ध्यान मुद्रा में प्रदर्शित किये गये हैं परन्तु अभाग्यवश इनके दोनों हाथ खण्डित हैं। इनके भी दोनों ओर चंवरधारी सेवक खड़े हैं और प्रभा के पास गन्धर्वयुग्म बने हैं। इसमें वह एक सुन्दर आसन पर जो एक सिंहासन पर रखा है विराजमान हैं। सामने मध्य में धर्म-चक्र के दोनों ओर एक-एक भक्त व वृषभ अंकित है और किनारों पर यक्ष गोमुख एवं यक्षी चक्रेश्वरी, जो गरुड़ पर आसीन हैं, की लघु मूर्तियां विद्यमान हैं जिनका उपर्युक्त मूर्ति में अभाव है।

इन्हीं मूर्तियों के समीप दसवीं शती ई० में निर्मित एक अन्य तीर्थंङ्कर मूर्ति का ऊपरी भाग भी प्रदर्शित है (सं० ५५५११), जिसे डा० आनन्द कुमारस्वामी ने भ्रांति से महावीर की प्रतिमा बताकर अपने लेख एवं केटलाग में प्रकाशित किया है जो सही नहीं है। प्रस्तुत प्रतिमा में केश ऊपर की ओर बंधे हैं और जटायें दोनों कंधों पर पड़ी हैं, जिससे स्पष्ट है कि यह ऋषभनाथ की ही मूर्ति है (चित्र ७)। मूर्ति में बने शीर्ष के दोनों ओर बादलों में उड़ते हुए मालाधारी गन्धर्व व त्रिछत्र के ऊपर एक दिव्य वादक मृदंग बजाकर आदिनाथ की 'कैवल्य' प्राप्ति पर हर्ष-ध्वनि करता प्रदर्शित किया गया है।

इसी संग्रहालय में राजस्थान से प्राप्त दो द्वार-स्तम्भ भी हैं (सं० ६८. ६०८-०६)। ग्यारहवीं शताब्दी ई० में बनें इन स्तम्भों के मध्य में वृक्ष के नीचे धोती धारण किये तीर्थंङ्कर प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं जिनसे विदित होता है कि यह श्वेताम्बरों द्वारा बनाये गये जैन मन्दिर में लगे रहे होंगे। तीर्थङ्करों के दोनों ओर सेवक आदि भी खड़े हैं। इनमें से एक स्तम्भ में सबसे नीचे ताख में गोमेध व दूसरे स्तम्भ में इसी प्रकार से पद्मावती की अपने सेविकाओं सहित आसन मूर्तियाँ हैं। स्तम्भों के सबसे ऊपरी भाग में आलों में ध्यानी तीर्थङ्करों की प्रतिमाएँ विद्यमान हैं। कला की दृष्टि से भी यह स्तम्भ पर्याप्त सुन्दर हैं।

पश्चिमी भारत से मिली प्रभातोरण रहित ऋषभनाथ की एक कांस्य मूर्ति में उन्हें ध्यान मुद्रा में दिखाया गया है (सं० ६२. ६२८)। उनके पास ही इनके यक्ष एवं यक्षी तथा सामने दो मृगों के मध्य धर्मचक्र, अष्ट-ग्रह व भक्त गण प्रदर्शित किए गए हैं।

यहीं पर मैसूर से प्राप्त 'जिन' की ९वीं-१०वीं शती ई० की एक अन्य कांस्य प्रतिमा भी है। इसमें भी वह ध्यान मुद्रा में विराजमान हैं। परन्तु दक्षिण भारत की अन्य मूर्तियों की भाँति इसके वक्ष पर भी श्री-वत्स चिह्न उत्कीर्ण नहीं हैं। मूर्ति सुडौल एवं कला की दृष्टि से सुन्दर है।

क्लीवलैण्ड म्यूजियम आफ़ आर्ट, क्लीवलैण्ड

इस संग्रहालय में भी कई महत्त्वपूर्ण जैन मूर्तियां विद्यमान हैं। इसमें से एक चन्देलकालीन, लगभग दसवीं सदी ई० का देवगढ़ से प्राप्त ऋषभनाथ मूर्ति का ऊपरी आधा भाग है, जिसके घुंघराले केश, सौम्य मुख एवं वक्ष पर श्री-वत्स चिह्न आदि विशेष ध्यान देने योग्य हैं (सं० ६९. २२८)।

इस संग्रहालय में पार्श्वनाथ की एक दुर्लभ मूर्ति भी प्रदर्शित है, जो १०वीं शती ई० की बनी प्रतीत होती है (सं० ६१.४१९)। प्रस्तुत मूर्ति में कमठ अपने साथियों सहित पार्श्वनाथ पर आक्रमण करता दिखाया गया है। प्राचीन जैन ग्रन्थों में वर्णित कथा के अनुसार जब संसार त्यागने के बाद पार्श्वनाथ अपनी तपस्या में लीन थे, तब कमठ ने उन्हें तपस्या करने में अनेक प्रकार की बाधाएं डालीं। उसने उन पर पर्वत-शिलायें फेंकीं, घोर जल वर्षा की तथा सिंह, बिच्छू, बेताल आदि से भी उन्हें डरवाने का भरसक प्रयत्न किया परन्तु वह अपनी घोर तपस्या में अडिग रहे; अतः अन्त में स्वयं कमठ को ही लज्जित होकर उनसे क्षमा-याचना करनी पड़ी। इस आशय की मूर्तियाँ प्रायः दुर्लभ हैं। ऐसी मूर्तियाँ अर्थणा, बादामी व अलोरा से भी प्राप्त हुई हैं।

क्लीवलैण्ड संग्रहालय की इस आदमकद मूर्ति में नग्न पार्श्वनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं। इनमें इनके शीर्ष पर बने फणों के ऊपर गन्धर्व युग्म, शंख वादक व मालाधारी दिव्य अंकित हैं। मूर्ति के दोनों ओर धरणेन्द्र नाग की रानियों अर्थात् नागनियों के चित्रण हैं, जबकि वह स्वयं जिन के शीर्ष के ऊपर अपने विशाल फण फैलाकर कमठ द्वारा की जाने वाली जल-वर्षा तथा शिला-खण्डों से रक्षा कर रहा है। नीचे के भाग में चंवर धारी सेवक आदि खड़े हैं (चित्र ६)।

फिलाडेल्फिया म्यूजियम आफ़ आर्ट, फिलाडेल्फिया

इस विख्यात संग्रहालय में अनेक जैन प्रतिमाएं संग्रहीत हैं। इनमें सबसे प्राचीन एक तीर्थङ्कर मूर्ति का शीर्ष है, जिसमें बने घुंघराले केश बड़ी सुन्दरता से दर्शाये गए हैं। मथुरा से प्राप्त यह शीर्ष गुप्तकाल लगभग चौथी शती ई० का अनुपम उदाहरण है (सं० १७·१६७)। यहीं पर मथुरा से प्राप्त

एक अन्य गुप्तकालीन तीर्थङ्कर प्रतिमा का यक्ष भी है, जिसमें 'जिन' के केवल शीश व ऊपरी भाग ही शेष बचते हैं और शीश के पीछे प्रभा मण्डल बना हुआ है (सं० ३१.६०.८)।

इस संग्रहालय में मध्यप्रदेश के जबलपुर क्षेत्र से प्राप्त चेदि कालीन १०वीं शती ई० की दो प्रस्तर प्रतिमाएं भी हैं। इनमें से एक महावीर की कायोत्सर्ग-मुद्रा में खड़ी मूर्ति है जिसके वक्ष पर 'श्री-वत्स' चिह्न बना है और शीर्ष के पीछे बनी प्रभा के पास ही एक-एक गन्धर्व का अंकन है। सबसे ऊपरी भाग में बने त्रिछत्र के दोनों ओर एक-एक गज का चित्रण है। मूर्ति के निचले भाग में उनके सेवक भक्तों की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। प्रतिमा नग्न होने के कारण दिगम्बर सम्प्रदाय के अनुयायियों द्वारा बनवाई प्रतीत होती है (सं० ३५.३९.२)।

द्वितीय प्रतिमा में तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ तथा नेमिनाथ को कायोत्सर्ग मुद्रा में दर्शाया गया है। पार्श्वनाथ की पहचान उनके शीर्ष के ऊपर बने सप्त सर्प फणों से और नेमिनाथ की उनके आसन पर अंकित शंख से की जा सकती है। इनके दोनों ओर ही चंवरधारी सेवक, भक्त व गणादि बने हुए हैं (सं० ३५.३९.१)। जबलपुर से प्राप्त चेदिकालीन अन्य तीर्थङ्कर प्रतिमाएं भारत में नागपुर संग्रहालय, रानी दुर्गावती संग्रहालय, जबलपुर तथा भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता में भी देखी जा सकती हैं।

राजस्थान के आबू क्षेत्र से प्राप्त ग्यारहवें तीर्थङ्कर श्री श्रेयांसनाथ की श्वेत संगमरमर की कलात्मक मूर्ति में भगवान कायोत्सर्ग मुद्रा में प्रदर्शित किए गए हैं। प्रतिमा के ऊपरी भाग में कीर्तिमुख तथा लताओं का बड़ी सुन्दरता से अंकन किया गया है तथा मूर्ति की पीठिका पर उनका लांछन गेंडा उकेरा गया है। मूर्ति पर खुदे लेख से ज्ञात होता है कि लज नामक व्यक्ति ने इसकी स्थापना पूजा हेतु की थी। यह लगभग पन्द्रहवीं शती ई० की बनी प्रतीत होती है (सं० ३१.६०.१)।

राजस्थान अथवा गुजरात में बनी देवी अम्बिका की मूर्ति में उनको ललितासन में बैठे दिखाया गया है। इनके दो हाथों में विविध आयुध हैं। एक बालक हाथ में फल लिए गोद में बैठा है तथा दूसरा इनके दाहिनी ओर खड़ा है। इन्होंने करण्ड-मुकुट व अन्य आभूषणादि धारण कर रखे हैं। प्रतिमा के ऊपरी भाग में तीर्थङ्कर नेमिनाथ की ध्यान मुद्रा में एक लघु मूर्ति बनी है। प्रतिमा पर उत्कीर्ण पांच पंक्तियों के लेख से विदित होता है कि इसका निर्माण ओसवाल जाति के वणिक् एरवत व उनकी पत्नी पूरि तथा

पुत्र सूतादेव ने संवत् १५१७ (१४६० ई०) के फाल्गुन माह में करवायी थी और उसकी प्रतिष्ठापना पवित्र सूरि कमल-इन्द्र ने की थी (सं० २७.१७.२)

दी आर्ट इन्स्टीट्यूट आफ शिकागो, शिकागो

शिकागो के आर्ट इन्स्टीट्यूट में कई महत्वपूर्ण जैन प्रतिमाएं प्रदर्शित हैं, जिनमें सबसे प्राचीन एक जिन मूर्ति का शीर्ष है जो कला की दृष्टि से कुषाण काल दूसरी शती ई० का है। मथुरा क्षेत्र से मिले लगभग बारह इंच ऊंचे इस तीर्थङ्कर के घुंघराले केश बड़ी सुन्दरता से बनाए गए हैं। इसे देखने पर मथुरा के राजकीय संग्रहालय में सुरक्षित अनेक कुषाणकालीन मूर्तियों का स्मरण हो जाता है। इसकी नासिका कुछ खण्डित हो गई है (सं० १९६५.३९६)।

द्वितीय जैन प्रतिमा २३वें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ की है, जिसमें वह सर्पफणों के नीचे कायोत्सर्ग मुद्रा में नग्न खड़े हैं जिससे विदित होता है कि दिगम्बर जैनों द्वारा इसकी प्रतिष्ठापना कराई गई थी। तीर्थङ्कर के दोनों ओर एक-एक सेवक खड़ा है। यह सुन्दर प्रतिमा कला की दृष्टि से मध्य प्रदेश में लगभग १२वीं शती ई० में बनी प्रतीत होती है जबकि मध्य प्रदेश में जैन धर्म का बड़ा प्राबल्य था (सं० १९६४.५)।

तृतीय प्रतिमा जो काले पत्थर में बनी है, आठवें तीर्थङ्कर चन्द्रप्रभ की है। इसमें भी तीर्थङ्कर को नग्नावस्था में दर्शाया गया है। इस मूर्ति में भी वह कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं और उनके दोनों हाथ शरीर के साथ सीधे लटके हुए हैं। शीश पर घुंघराले केश हैं, जैसाकि अन्य मूर्तियों में भी मिलता है। मूर्ति की पीठिका पर उनके यक्ष एवं यक्षिणी खड़े दिखाए गए हैं।

दाहिनी ओर वाली मूर्ति यक्ष विजय की है। इन्होंने अपने ऊपर वाले दाहिने हाथ में एक खण्डित वस्तु, साथ वाले बाये में अंकुश तथा निचले दोनों हाथों में कमल पकड़े हुए हैं। यक्षिणी भृकुटि की अष्टभुजी मूर्ति है। यह अपने दाहिने हाथों में एक फल (बीजपूरक), अस्पष्ट पदार्थ, तीर व त्रिशूल पकड़े है। जबकि बांये हाथों में एक पाश, धनुष, वरद-मुद्रा तथा एक हाथ खण्डित है। इन दोनों मूर्तियों ने करण्ड-मुकुट तथा अन्य आभूषण एवं अन्तरीय धारण कर रखा है और प्रत्येक के शीर्ष के पीछे प्रभामण्डल भी बना है।

तीर्थङ्कर मूर्ति के दोनों ओर ऊपरी भाग में गज-व्यालों पर सवार दिखाये गए हैं। मूर्ति में उच्चकोटि की कला सौष्ठव का सर्वथा अभाव है। यह मूर्ति कर्णाटक प्रदेश में चालुक्य शासकों के समय लगभग बारहवीं शती ईसवी में बनी होगी।

सियाटल आर्ट म्यूजियम, सियाटल

सियाटल के कला संग्रहालय में हमें देवगढ़ से प्राप्त कई सुन्दर जैन प्रतिमाएं देखने को मिलीं। इनमें से केवल भगवान महावीर की एक मूर्ति को छोड़कर जो प्रदर्शित है, अन्य सभी मूर्तियां गोदाम में रखी हैं। महावीर जी को इस अत्यन्त भव्य मूर्ति में, जो लगभग ग्यारहवीं शती ई० की है, सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में दिखाया गया है। इनके दोनों ओर एक-एक सेवक, प्रभा के समीप गन्धर्व युग्म, ऊपर गज-वाहकों के मध्य एक दिव्य वादक आदि उत्कीर्ण हैं। दो ध्यानी तीर्थङ्कर सिंहासन के समीप, व अन्य इक्कीस जिनमें पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं, शेष सभी ध्यान मुद्रा में मुख्य प्रतिमा के दोनों ओर व ऊपर बनाये गए मिलते हैं। सिंहासन के निचले भाग के मध्य में दो मृगों सहित धर्म-चक्र तथा सामने लांछन सिंह की आकृति उत्कीर्ण है। दाहिनी ओर बड़े उदर वाले यक्ष मातङ्ग व बांयी ओर ढ़ाल-तलवार लिए यक्षी सिद्धायिका की लघु आसन मूर्तियां हैं (सं० ६६.११.७६)।

गुजरात में सन् १४७४ ई० में निर्मित कुन्थुनाथ की पंचतीर्थिका मूर्ति के मध्य में भगवान् ध्यान-मुद्रा में विराजमान हैं और उनके दोनों ओर सेवक सहित तीर्थङ्कर कायोत्सर्ग मुद्रा में व प्रभा के समीप ध्यान मुद्रा में दिखाया गया है। इनके सिंहासन के एक ओर गन्धर्व यक्ष व दूसरी ओर बला यक्षी की लघु आकृतियाँ हैं। सामने के भाग पर तीर्थङ्कर का लांछन बकरा व कोने पर दो भक्तों का अंकन है। प्रतिमा का ऊपरी भाग कुछ खण्डित है (सं० ५६.११.५६)।

आबू पर्वत से प्राप्त श्वेत संगमरमर की एक दुर्लभ मूर्ति नीलांजना नर्तकी की भी इस संग्रहालय में रखी है जिसका वर्णन हमें प्राचीन जैन साहित्य में मिलता है। इसने गोल रत्न जटित कुण्डल, अनेक हार आदि पहन रखे हैं तथा यह बड़े आकर्षक ढंग से नृत्य करने में व्यस्त है। यह लगभग बारहवीं शती ई० की निर्मित हुई प्रतीत होती है (सं० ६४.११.६५)। इस नर्तकी की एक कुषाणकालीन मूर्ति जो मथुरा से मिली थी, राज्य संग्रहालय में प्रदर्शित है। खजुराहो के जैन देवालय पर भी इसका अंकन प्राप्त है।

भगवान पार्श्वनाथ के यक्ष धरणेन्द्र की एक कांस्य मूर्ति, जिसे संग्रहालय के रिकार्ड में केवल 'नागराज' लिख रखा है, दक्षिणी भारत से प्राप्त एक अमूल्य निधि है। इसमें यह पांच सर्प-फणों के नीचे पद्मासन में बैठे हैं।

इनका दाहिना हाथ खण्डित है तथा बांये में बीज-पूरक ले रखा है। इन्होंने मुकुट व अन्य आभूषण धारण कर रखे हैं (सं० ४६.११.३७)।

डेनवर आर्ट म्यूजियम डेनवर

इस संग्रहालय में प्रदर्शित जैन प्रतिमाओं में सबसे प्रमुख मूर्ति ऋषभनाथ की है जिसमें वह एक सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में विराजमान हैं। इनके दोनों ओर सेवकों, ऊपर ध्यानी तीर्थङ्करों तथा नीचे भक्तों की आकृतियां हैं तथा इनका चिह्न सामने बैठा दिखाया गया है। यह मूर्ति मध्य प्रदेश में चेदि सम्राटों के युग में १०वीं-११वीं शती ई० में बनी हुई प्रतीत होती है।

मध्य भारत से प्राप्त एक खण्डित शिला-खण्ड जो किसी मध्यकालीन मूर्ति का एक भाग प्रतीत होता है, के मध्य में ऋषभनाथ को कायोत्सर्ग मुद्रा में दिखाया गया है। उन्होंने धोती धारण कर रखी है और शीश के पीछे एक प्रभा मण्डल है। इनके ऊपर व बांयी ओर अन्य कई ध्यानी तीर्थङ्करों की मूर्तियां हैं और नीचे एक ताख में गरुड़ारूढ़ यक्षी चक्रेश्वरी की लघु मूर्ति है। अपने ऊपर के दो हाथो में चक्र पकड़े हैं। मुख्य मूर्ति के दाहिनी ओर गज-मुख एवं शार्दूल आदि बने हैं। इस मूर्ति का निर्माण काल लगभग १०वीं शती ई० रहा होगा।

पश्चिमी राजस्थान या गुजरात में लगभग १५वीं शती ई० में बना ऋषभनाथ का चतुर्विंशति-पट्ट एक प्रकार से छोटे देवालय का स्वरूप प्रस्तुत करता है जिसके मध्य में आदिनाथ व उनके तीन अन्य शेष तीर्थङ्करों की ध्यानी मूर्तियाँ बनी हैं। सिंहासन पर उनका चिह्न वृषभ अंकित है। कोनों पर यक्ष एवं यक्षी की आकृतियां बनी हैं। पीठिका पर सामने दानकर्ता एवं उसकी पत्नी की मूर्तियां हैं। लम्बे समय तक यह मूर्ति पूजा में रहने के कारण पर्याप्त रूप में घिस गई है।

लास एन्जीलिस काऊन्टी म्यूजियम आफ आर्ट, लास एन्जीलिस

इस प्रसिद्ध संग्रहालय में केवल धातु की ही जैन मूर्तियां संग्रहीत हैं जिनमें सबसे प्राचीन दक्षिण भारत से प्राप्त लगभग नवीं शती ई० की तीर्थङ्कर मूर्ति है। इस प्रतिमा में, जो दक्षिण भारत में ही पुडुकोट्टई क्षेत्र से प्राप्त अन्य जिन मूर्तियों से काफी साम्यता रखती है, तीर्थंकर को ध्यान मुद्रा में बैठे उत्कीर्ण किया गया है। इनका मुख सोम्य एवं शान्त और शरीर की बनावट पर्याप्त रूप से सुन्दर है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित मूर्तियाँ भी हैं।

पार्श्वनाथ

गुजरात से मिली पार्श्वनाथ की त्रितीर्थिक मूर्ति में तेईसवें तीर्थङ्कर

एक ऊंचे सिंहासन पर सर्प के सप्त फणों के नीचे ध्यान मुद्रा में दिखाये गए हैं। इनके दोनों ओर एक-एक अन्य तीर्थङ्कर धोती पहने कायोत्सर्ग मुद्रा में चंवरधारिणी सेविका सहित खड़ा है। पीठिका पर नव-ग्रहों का अंकन है। मूर्ति के दाहिनी ओर बनी यक्ष की मूर्ति नष्ट हो चुकी है तथा बांये उनकी यक्षी अम्बिका की लघु मूर्ति विद्यमान है। मूर्ति पर ९८८ ई० का एक दान लेख भी उत्कीर्ण है।

शान्तिनाथ

संभवत: गुजरात से ही प्राप्त एक पीतल का बना भगवान शान्तिनाथ का चतुर्विशति-पट्ट भी इस संग्रहालय में विद्यमान है, जो लगभग १५वीं-१६वीं शती ई० का बना प्रतीत होता है। मूल प्रतिमा, शान्तिनाथ, एक सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में विराजमान हैं तथा अन्य शेष तीर्थङ्करों की लघु मूर्तियाँ इनके दोनों ओर व ऊपर प्रभा-तोरण पर बनी हैं। सिंहासन के पास इनका यक्ष गरुड तथा यक्षी निर्वाणी और सामने लांछन मृग बने हैं। मूर्ति के पृष्ठ भाग पर उत्कीर्ण लेख में भी प्रस्तुत प्रतिमा को 'चतुर्विंशति-पट्ट' कहा गया है।

विमलनाथ

पश्चिमी भारत के किसी अज्ञात स्थान से मिली विमलनाथ की पच-तीर्थिक प्रतिमा में विमलनाथ जी, जिनका लांछन शूकर दो सिंहों के मध्य रेखा द्वारा अंकित है, ध्यान मुद्रा में विराजमान हैं। इनके दोनों ओर धोती पहने एक-एक तीर्थङ्कर कायोत्सर्ग मुद्रा में व कमल-रूपी प्रभा के दोनों ओर सूंड में कमल पकड़े गज दिखाये गए हैं। मूल मूर्ति के दोनों ओर चंवरधारी तथा सिंहासन के दोनों ओर यक्ष एवं यक्षी मूर्तियां स्थित हैं। इन्हीं के समीप दो भागों में नवग्रह तथा मूर्ति के दानकर्ता एवं उसकी पत्नी की भी लघु मूर्तियां हैं। मूर्ति लगभग पन्द्रहवीं शती ई० की ही बनी प्रतीत होती है।

विलियम रोकहिल नेलसन गैलरी आफ आर्ट तथा मेरी एटकिन्स म्यूजियम आफ फाईन आर्टस, केन्सस सिटी

इस संग्रहालय में केवल दो जैन मूर्तियां सुरक्षित हैं। इसमें प्रथम मूर्ति जो कांस्य निर्मित है, मैसूर से प्राप्त तीर्थङ्कर की है, जिसमें उनको ध्यान मुद्रा में बैठे दिखाया गया है। पूर्वमध्य युगीन लगभग ८वीं-९वीं शती ई० की यह प्रतिमा कला का उत्तम उदाहरण है (सं० ६२.६६)।

द्वितीय प्रतिमा ऋषभनाथ की है जिसमें उनके केश कन्धों पर लटकते

दिखाए गए हैं। संग्रहालय के लेबिल में इसे दक्षिण से प्राप्त बताया गया है जो त्रुटिपूर्ण है। वास्तव में इस मूर्ति, जिसका अब केवल ऊपर का आधा भाग ही शेष बचा है, के वक्ष पर श्रीवत्स चिह्न है और मुखादि की बनावट की दृष्टि से मध्य काल की बनी प्रतीत होती है। बलुए पत्थर की यह मूर्ति १२वीं शती ई० की कृति है।

एशियन आर्ट म्यूजियम, सेन फ्रान्सिसको

इस संग्रहालय में विशेषकर मध्यकालीन भारतीय प्रतिमाओं का अच्छा संग्रह है। यहाँ पर देवगढ़ से प्राप्त कई जैन तीर्थङ्कर प्रतिमाओं के अतिरिक्त जिन के माता-पिता की मूर्ति भी प्रदर्शित है (सं० बी० ७० एस० ४)। इन दोनों के पीछे प्रभा है तथा वे विभिन्न वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हैं। स्त्री मूर्ति की गोद में शीश रहित बालक है। इनके मध्य में बने पेड़ पर एक बन्दर चढ़ता दिखाया गया है और सबसे ऊपर ध्यानी जिन की मूर्ति बनी है। मूर्ति के निचले भाग में संवत् १३३४ का एक पंक्ति का खण्डित लेख उत्कीर्ण है। पीठिका पर मध्य में दो मेढ़े आमने-सामने खड़े हैं और उनके दोनों ओर तीन तीन मानव आकृतियाँ हैं। प्रस्तुत मूर्ति चन्देल कला दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी ईसवी का उदाहरण मानी जा सकती है (चित्र ४३)।

देवगढ़ से ही प्राप्त अम्बिका देवी की एक सुन्दर मूर्ति इस संग्रहालय के एवरी ब्रन्डेज संग्रह में भी देखी जा सकती है। त्रिभंग मुद्रा में खडी इस मूर्ति में उनके दोनों दाहिने हाथ खण्डित हैं, परन्तु पैरों के समीप बने आमों के गुच्छे से प्रतीत होता है कि वह अपने दाहिने निचले हाथ में आम्र लुम्बि पकड़े है। ऊपर का बांया हाथ भी खण्डित अस्पष्ट पदार्थ पकड़े है और साथ वाले निचले हाथ से वह एक बालक को संभाले हुए है। इस मूर्ति में भी आम्र वृक्ष के ऊपर तीन तीर्थङ्कर ध्यान मुद्रा में विराजमान हैं। इनके अतिरिक्त अम्बिका के दोनों ओर भी एक-एक शीश रहित ध्यानी तीर्थङ्कर की मूर्ति बनी है। देवी के पैरों के समीप एक-एक सेविका दोनों ओर पूर्ण घट लिए खड़ी हैं। दाहिने पैर के पास इनका द्वितीय पुत्र खड़ा है व बांयें पैर के समीप इनका वाहन सिंह बैठा हुआ है। देवी ने सुन्दर मुकुट, कोकुरु, कुण्डल, हार माला, साड़ी व पादजालक आदि धारण कर रखे हैं। प्रस्तुत मूर्ति चन्देल कला ११वीं शती० ई० का उत्कृष्ट उदाहरण है।

बिहार से प्राप्त पालकालीन ग्यारहवीं शताब्दी ई० की भगवान् पार्श्वनाथ की मूर्ति कला का अद्वितीय उदाहरण है। इसमें तीर्थङ्कर सर्प के सप्त फणों

के नीचे कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हैं। इनके पैरों के समीप एक-एक मुकुटधारी सेवक चंवर लिए खड़ा है, मध्य में गज-व्याल और शीश के दोनों ओर बादलों में उड़ता हुआ माला गन्धर्व बना है। पद्मपीठ के नीचे पीठिका पर नाग एवं नागिनी तथा भक्तों की लघु मूर्तियां उत्कीर्ण हैं, जिनके हाथ अञ्जली मुद्रा में हैं (सं० बी० ६३ एस० २१)।

वर्जीनिया म्यूजियम आफ आर्ट, रिछमोन्ड

राजस्थान से प्राप्त पार्श्वनाथ की त्रितीर्थिक मूर्ति में जो कांस्य निर्मित है, पार्श्वनाथ मध्य में सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में विराजमान हैं। इनके शीश पर बने सर्प के सप्त फणों में चार फण खण्डित हो चुके हैं। इनके दोनों ओर एक-एक अन्य तीर्थङ्कर धोती धारण किये कायोत्सर्ग-मुद्रा में खड़ा है जिसके पीछे बनी प्रभा से ज्वालाएं निकलती दिखाई गई हैं जैसाकि मध्यकालीन पूर्वी भारत, नेपाल तथा तिब्बत की बुद्ध प्रतिमाओं में भी साधारणतया पाया जाता है। मूल मूर्ति के सिंहासन के दाहिने ओर गजारूढ सर्वानुभूति तथा बांयी ओर सिंह पर बैठी अम्बिका की मूर्तियाँ स्थित हैं। यक्षी की गोद में बालक स्पष्ट है। पीठिका पर सामने दो मृगों के मध्य धर्मचक्र तथा निचले भाग में अष्ट-ग्रहों का अंकन है। प्रस्तुत मूर्ति लगभग नवीं शताब्दी ईसवी की बनी प्रतीत होती है (सं० ६८.८.४४)।

डेट्रोएट इन्स्टीट्यूट आफ आर्ट, डेट्रोएट

मध्य प्रदेश से मिले एक सिरदल के बीच वाली ताख में सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में तीर्थङ्कर विराजमान हैं। इनके बांयी ओर जिन के माता-पिता की मूर्तियां हैं जिन्होंने अपने दाहिने हाथ में बीजपूरक फल ले रखा है। स्त्री की गोद में एक बालक है तथा दूसरा हाथ में लिए फल प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा है। इनके बायीं ओर एक अन्य ताख में भी सिंहासन पर ध्यानी तीर्थङ्कर की मूर्ति है। उसके अन्तिम भाग पर कलात्मक गज-मुख बना है। उपर्युक्त दोनों तीर्थङ्कर मूर्तियों के ताखों के बाह्य भाग पर गज एवं शार्दूल उत्कीर्ण हैं। सिरदल के मध्य बनी तीर्थङ्कर मूर्ति के दाहिनी ओर अम्बिका की मूर्ति है जिसमें वह एक टूटे पेड़ के नीचे अपने वाहन सिंह पर बैठी हैं। इनके दाहिने हाथ में आम्र-लुम्बि तथा बांये से एक बालक को पकड़े है। प्रस्तुत मूर्ति खण्डित होने पर भी प्रतिहार कला नवी-दसवीं शताब्दी ई० का अत्यन्त सुन्दर उदाहरण है (सं० ४३.३९)।

निजी संग्रहों में जैन प्रतिमाएं—

हीरामानेक संग्रह

बम्बई निवासी श्री नसली हीरामानेक अब से काफी समय पूर्व संयुक्त राष्ट्र अमरीका में बस गये थे। कला में रुचि होने के कारण इन्होंने और इन की पत्नी श्रीमती एलिस हीरामानेक ने देश-विदेश की कलाकृतियों का एक अच्छा संग्रह कर लिया। इनके विशाल संग्रह में कर्णाटक से प्राप्त दो जैन कांस्य प्रतिमाएं हैं। पहली मूर्ति एक तीर्थङ्कर की है जिसमें वह ध्यान मुद्रा में बैठे दिखाये गये हैं। द्वितीय प्रतिमा अम्बिका की है, जिसमें वह आम के पेड़ के नीचे द्विभंग मुद्रा में खड़ी हैं जिनके ऊपर ध्यानी नेमिनाथ बने हैं। इनके दाहिने हाथ में आमों का गुच्छा तथा बांया पास में खड़े बालक के सिर पर रखा है। देवी का दूसरा बालक दाहिनी ओर उनके वाहन सिंह पर बैठा है। यह दोनों मूर्तियां पश्चिमी-चालुक्य युग लगभग दशवीं शताब्दी की बनी प्रतीत होती हैं।

राकफेलर संग्रह

श्री और श्रीमती जान डी राकफेलर तृतीय के संग्रह में मध्य भारत से प्राप्त लगभग ७वीं-८वीं शती ई० की एक कांस्य मूर्ति में तीर्थङ्कर ध्यान मुद्रा में पद्मासन पर विराजमान हैं, इनके घुंघराले केश उष्णीष रूप में हैं तथा शीर्ष के पीछे प्रभा मण्डल बना है। इनके वक्ष पर श्री-वत्स तथा हथेलियों एवं पैरों के तलवों पर पद्म अंकित है। प्रतिमा पर्याप्त रूप से सुन्दर है।

बिकफोर्ड संग्रह

श्री जार्ज पी० बिकफोर्ड के संग्रह में कर्णाटक से प्राप्त अम्बिका की कांस्य प्रतिमा स्थित है, जो कला की दृष्टि से हीरामानेक संग्रह में सुरक्षित अम्बिका की मूर्ति से कुछ साम्यता तो अवश्य रखती है परन्तु यह लगभग १२वीं शती ई० की है। इसमें देवी आम के पेड़ के नीचे, जिसके ऊपर ध्यानी नेमिनाथ की लघु मूर्ति है, खड़ी हैं। इसके दाहिने हाथ में पकड़े आमों के गुच्छे का कुछ भाग तो खण्डित हो गया और बायाँ हाथ भी टूटा हुआ है। इनका एक पुत्र दाहिनी ओर सिंह पर बैठा है तथा दूसरा बांये पैर के पास खड़ा है।

गिलमोर फोर्ड संग्रह

बाल्टीमोर निवासी श्री जान गिलमोर फोर्ड के संग्रह में दो जैन कला-कृतियां हैं, जिसके कानों का निचला भाग कुछ खण्डित हो चुका है। लगभग

१०वीं शती ई० में बने बलुए पत्थर के इस शीर्ष में उन्होंने ऊष्णीष धारण कर रखा है।

पश्चिमी भारत से प्राप्त पीतल के बने चतुर्विंशति-पट्ट में मूल प्रतिमा के चारों ओर अन्य तीर्थङ्कर मूर्तियों को दिखाया गया है जिनकी आँखों तथा श्री-वत्स चिह्न पर चाँदी लगी हुई है। मूर्ति के पृष्ठ भाग पर १५०७ ई० का लेख उत्कीर्ण है।

लेनार्ट संग्रह

श्रीमती एवं श्री हेरी लेनार्ट संग्रह में स्थित मूर्ति में तीर्थङ्कर को ध्यान-मुद्रा में सिंहासन पर विराजमान दिखाया गया है। मूर्ति के वक्ष पर श्री-वत्स चिह्न बना है, परन्तु उनका लांछन खण्डित हो जाने के कारण उसकी ठीक पहचान करना कठिन है। मूर्ति के बाँयी ओर चंवर पकड़े सेवक खड़ा है जबकि दांयी ओर का सेवक खण्डित हो गया है और दाहिनी ओर एक माला धारी गन्धर्व तथा गज ही शेष बचा है। लाल बलुए पत्थर की यह मूर्ति संभवतः मध्य प्रदेश में लगभग नवीं शती ई० में बनी होगी।

बिल्लोघबाई संग्रह

श्री और श्रीमती बोब बिल्लोघबाई के पास पश्चिमी भारत में विक्रम संवत् १५०८ (१४५१ ई०) की धातु की बनी पंचतीर्थी मूर्ति है। इसमें मूल प्रतिमा, जिसका लांछन नष्ट हो जाने के कारण पहचान करना कठिन है, दोनों ओर एक-एक तीर्थङ्कर कायोत्सर्ग मुद्रा में व उनके ऊपर अन्य तीर्थङ्करों को ध्यान मुद्रा में दिखाया गया है।

ऐसी ही एक अन्य जिन पंचतीर्थी श्री जेसन बी० ग्रोसमेन के पास भी है। मूर्ति के पीछे उत्कीर्ण लेख से विदित होता है कि उसका निर्माण विक्रम संवत् १५१६ (१४५९ ई०) में हुआ था। इसमें भी उपर्युक्त मूर्ति की भांति आँखों एवं श्री वत्स पर चाँदी का प्रयोग हुआ है।

वाल्टर संग्रह

श्री पाल एफ० वाल्टर के संग्रह में दक्षिण से प्राप्त एक जिन त्रितीर्थिक है, जिसमें तीनों तीर्थङ्करों की नग्न मूर्तियां कायोत्सर्ग मुद्रा में छत्रों के नीचे खड़ी हैं। इसमें मध्य में ऋषभनाथ जिनके केश कन्धों पर हैं अपने सेवकों सहित हैं। इनके दाहिनी ओर नेमिनाथ और बांयी ओर नमिनाथ दर्शाये गये हैं जिनके लांछन पीठिका पर बने हैं। यह मध्यकालीन मूर्ति लगभग १२वीं शती ई० की बनी प्रतीत होती है।

अध्याय १२

जैन प्रतिमा विज्ञान

जैन धर्म संसार के प्राचीन धर्मों में से एक है परन्तु इसकी उत्पत्ति के विषय में भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों में पर्याप्त रूप में मतभेद है। यदि हम प्राचीन जैन साहित्य का अवलोकन करें तो विदित होगा कि जैन धर्म के प्रवर्तक ऋषभनाथ ईसा से भी सहस्रों वर्ष पूर्व हुए थे। पुरातत्त्विक खुदाई में प्राप्त कई मुद्राओं एवं नग्न पुरुष के धड़ के आधार पर कुछ जैन विद्वानों ने यह मत प्रकट किया था कि ये तीर्थङ्करों की मूर्तियां हैं जो हड़प्पन काल में पूजा के निमित्त बनीं। परन्तु यह मत आधुनिक कला इतिहासिकों को स्वीकृत नहीं हो सका।

प्रारम्भ में जैन धर्म एक अनीश्वरवादी धर्म था। इसीलिए बुद्ध की तरह जैनाचार्य भी ईश्वर की सत्ता के विषय में मौन हैं। किन्तु जब जैनी परवर्ती युग में मूर्ति पूजक हो गये तब वे ईश्वर के ही रूप में अपने तीर्थङ्करों की पूजा करने लगे। जैन धर्म में चौबीस तीर्थङ्कर माने जाते हैं, जिनमें ऋषभनाथ प्रथम थे। अन्तिम दो तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ और महावीर ऐतिहासिक पुरुष थे और इनमें महावीर गौतम बुद्ध के समकालीन थे। अन्य महत्त्वपूर्ण तीर्थङ्करों में नेमिनाथ थे जो कृष्ण एवं बलराम के चचेरे भाई थे। तीर्थङ्कर मल्लिनाथ के विषय में जैनियों में परस्पर मतभेद है कि वे पुरुष थे या स्त्री। तीर्थङ्कर अधिकांश क्षत्रिय थे जो राजकीय परिवारों से सबन्ध रखते थे। इन तीर्थङ्करों ने कठोर संयम, साधना एवं धर्मनिष्ठ आचरण करते हुये कैवल्य अथवा सम्पूर्ण ज्ञानावस्था को प्राप्त किया था और बाद में इसी आचरण का जीवमात्र को उसके आत्मिक लाभ के लिये उपदेश दिया।

जैन धर्म के अनुयायियों के अनुसार उनके तीर्थङ्कर नियम बनाने वाले, तथा सर्वोच्च देव हैं। मोक्ष प्राप्ति के कारण वे पुनर्जन्म के चक्र से मुक्त होते हैं। जैनी अन्य किसी ईश्वर में विश्वास नहीं रखते। उनके लिए तीर्थङ्कर ही पूजन के योग्य हैं। इनके अनुसार तीर्थङ्करों की प्रतिमाएं मन्दिरों में पूजन के लिए स्थापित की जानी चाहिएं।

उनकी जीवन कथाएं भक्तों द्वारा श्रवण की जानी चाहिएं एवं जीवन की प्रमुख घटनाओं का चित्रांकन होना चाहिये जिसे देखकर लोग अनुसरण कर सकें और संसार के बन्धन से मुक्त हो सकें।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, जैन धर्म के प्रवर्तक ऋषभनाथ अथवा आदिनाथ हैं जो प्रथम तीर्थङ्कर हैं।[1] ऋग्वैदिक ऋचाओं में ऋषभदेव का वर्णन एक राजा के रूप में हुआ है जो अपनी प्रजा को धन का दान देता है[2] :

आ चर्षणिप्रा वृषभो जनानां राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः।
स्तुतः श्रवस्यन्नवसोममद्रिग् युक्त्वा हरी वृषणा याह्यर्वाङ्॥

—ऋग्वेद, १, २३, १७७

भागवत पुराण में ऋषभनाथ के जन्म से संबन्धित कथा का विस्तृत उल्लेख मिलता है,[3] जिससे विदित होता है कि स्वयं भगवान् महाराज नाभि का प्रिय करने के लिये उनके रनिवास में महारानी मेरु देवी के गर्भ से दिगम्बर संन्यासी और ऊर्ध्वरेता मुनियों का धर्म प्रकट करने के लिये शुद्ध सत्त्वमय विग्रह से प्रकट हुये। नाभिनन्दन के अंग जन्म से ही भगवान् विष्णु के वज्र, अंकुश आदि चिह्नों से युक्त थे। सत्ता, शान्ति, वैराग्य, एवं ऐश्वर्य आदि महाविभूतियों के कारण उनका प्रभाव दिनोदिन बढ़ता जाता था। यह देखकर मन्त्री आदि प्रकृति वर्ग, प्रजा ब्राह्मण और देवताओं की यह उत्कृष्ट अभिलाषा होने लगी कि यही पृथ्वी का शासन करें। उनके सुन्दर और सुडौल शरीर, विपुल कीर्ति, तेज, बल, ऐश्वर्य, यश, पराक्रम और शूर-वीरता आदि गुणों के कारण महाराज नाभि ने उनका नाम 'ऋषभ' (श्रेष्ठ) रखा :

इति निशामयन्त्या मेरुदेव्याः पतिमभिधायान्तर्दधे भगवान्। बर्हिषि तस्मिन्नेव विष्णुदत्त भगवान् परमर्षिभिः प्रसादितो नाभेः प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मेरुदेव्यां धर्मान्दर्शयितुकामो वातरशनानां श्रमणानामृषीणामूर्ध्वमन्थिनां शुक्लया तनुवाववतार। अथ ह तमुत्पत्त्येवाभिव्यज्यमानभगवल्लक्षणं साम्योपशमवैराग्यैश्वर्यमहाविभूतिभिरनुदिनमेधमानानुभावं प्रकृतयः प्रजा ब्राह्मणा

---

१. ऋषभदेव के जन्म के कारणों का स्पष्ट उल्लेख महापुराण (III, १६०-६१) तथा आदि पुराण (XVI, १७-६६०) में मिलता है।

२. त्वं रथं प्रभरो योधमृष्वमावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम्।
त्वं तुग्रं वेतसवे सचाहन्त्वं तुजि गृणन्तमिन्द्र तूतोः॥

—ऋग्वेद, ४, ६, २६, ४

३. भागवत पुराण, V अध्याय ४-६.

देवताश्चावनितलसमवनायातितरां जगृधुः । तस्य ह वा इत्थंवर्ष्मणा वरीयसा बृहच्छ्लोकेन चौजसा बलेन श्रिया यशसा वीर्यशौर्याभ्यां च पिता ऋषभ इतीदं नाम चकार ।

—भागवत पुराण, V, ३, २०, ४, २

ब्रह्माण्ड पुराण में ऋषभदेव पृथिवी पर क्षत्रियों के आदि पुरुष माने गये हैं । उनके सौ पुत्रों में से भरत सबसे बड़े थे :

ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम् ।
ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः ।।

—ब्रह्माण्ड पुराण, पूर्व, II, १४

और भरत के ही कारण इस देश का नाम भी भारतवर्ष पड़ा :[1]

---

१. यह पौराणिक कथा कि इस देश का नाम ऋषभनाथ के ज्येष्ठ पुत्र भरत के नाम पर भारतवर्ष पड़ा, का उल्लेख कई अन्य पुराणों में भी मिलता है :—

हिमाह्वयं तु वै वर्षं नाभेरासीन्महात्मनः ।
तस्यर्षभोऽभवत्पुत्रो मेरुदेव्यां महाद्युतिः ।।
ऋषभाद्भरतो जज्ञे ज्येष्ठः पुत्रशतस्य सः ।
कृत्वा राज्यं स्वधर्मेण तथेष्ट्वा विविधान्मखान् ।।
अभिषिच्य सुतं वीरं भरतं पृथिवीपतिः ।
तपसे स महाभागः पुलहस्याश्रमं ययौ ।।
वानप्रस्थविधानेन तत्रापि कृतनिश्चयः ।
तपस्तेपे यथान्यायमियाज स महीपतिः ।।
तपसा कर्षितोऽत्यर्थं कृशो धमनिसन्ततः ।
नग्नो वीटां मुखे कृत्वा वीराध्वानं ततो गतः ।।
ततश्च भारतं वर्षमेतल्लोकेषु गीयते ।
भरताय यतः पित्रा दत्तं प्रातिष्ठता वनम् ।।

—विष्णु पुराण, II, १, २८-३२

ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताद्वरः ।
सोऽभिषिच्यर्षभः पुत्रं महाप्राव्रज्यमास्थितः ।।
तपस्तेपे महाभागः पुलहाश्रमसंश्रयः ।
हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय पिता ददौ ।।
तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः ।

—मार्कण्डेय पुराण, ५०, ३९-४१

येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीद्येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशन्ति ।।

—भागवत पुराण, V, ४, ६

शिवपुराण में ऋषभनाथ शंकर के योगावतारों में से एक माने गये हैं :

दधिवाहश्च ऋषभो मुनिरुग्रोऽत्रिरेव च ।

—शिवपुराण, VII, ६, ३

इसी पुराण के एक अन्य स्थान पर इनके और शिव में अद्वैत का भाव बड़ी सुन्दरता से दर्शाया गया है :

इत्थंप्रभाव ऋषभोऽवतारः शंकरस्य मे ।
सतां गतिर्दीनबन्धुर्नवमः कथितस्तु नः ।।

—शिव पुराण, १, ४७

यहां यह उल्लेखनीय है कि ऋषभदेव का वर्णन बौद्ध साहित्य में भी मिलता है और एक स्थान पर उन्हें व्रतपालक बताया गया है :

प्रजापतेः सुतो नाभिः तस्यापि ऊर्णमुच्यते ।
नाभित ऋषभपुत्रः सिद्धकर्मा दृढव्रतः ।।
तस्य मणिचरो यक्षः सिद्धो हैमवते गिरौ ।
ऋषभस्य भरतः पुत्रः सोऽपि मन्त्रान् तदा जपेत् ।।

—आर्यमंजुश्रीमूलकल्प, ५३, ३६३-६४

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि प्राचीन काल में जैनेतर द्वारा भी जिन की पूजा समान रूप से की जाती थी ।

नाभिस्त्वजनयत् पुत्रं मेरुदेव्यां महाद्युतिः ।
ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम् ।।
ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः ।
सोऽभिषिच्याथ भरतः पुत्रं प्राव्राज्यमास्थितः ।।
हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत् ।।
तस्मात्तद् भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः ।।

—वायु पुराण, ३१, ५०-५२

ऋषभाद्भरतो भरतेन चिरकालं धर्मेण पालितत्वादिदं भारतं वर्षमभूत ।

—नरसिंह पुराण, ३०, ७

अन्य तीर्थङ्कर नेमिनाथ अथवा अरिष्टनेमि का उल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त है :

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा: स्वस्ति न: पूषा विश्वदेवा: ।
स्वस्ति नस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमि: स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।।

—ऋग्वेद, १, १, १६

तेईसवें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ जो एक ऐतिहासिक महापुरुष थे, को प्रोफेसर रिज्स डेविड्स ने जैन धर्म का वास्तविक संस्थापक बताया है। उन्होंने जनता को अनुसरण के लिये यथा जीव को पीड़ा न देना, सत्य वचन बोलना, चोरी न करना, और सांसारिक चीजों से आसक्त न होने का उपदेश दिया था। चौबीसवें तथा अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर ने इसमें संयम और पवित्रता का समावेश किया।

महावीर मगध सम्राट बिम्बसार और उनके पुत्र अजातशत्रु के समकालीन थे, तथा इनके समय में जैन धर्म को बहुत प्रोत्साहन मिला। जैन अनुश्रुतियों के अनुसार अजातशत्रु का पुत्र उदयन भी जैन धर्म का अनुयायी था जिसे पाटलिपुत्र में एक जैन मन्दिर के निर्माण करने का श्रेय दिया जाता है।

मगध के नन्द सम्राटों की भी जैन धर्म में आस्था थी। खारवेल के हाथी-गुम्फा लेख से ज्ञात होता है कि एक नन्द राजा जिन की मूर्ति को कलिंग से मगध को स्मारक के रूप में ले गया था।

जैन परम्पराओं से स्पष्ट है कि मौर्य साम्राज्य के संस्थापक सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल के अन्तिम भाग में बारह वर्षों का एक भीषण अकाल पड़ा जिससे विक्षुब्ध होकर सम्राट अपने गुरु भद्रबाहु के साथ मैसूर चला गया और वहां जैन धर्म की मान्यता के अनुसार भूखे रहकर अपने प्राणों का उत्सर्ग किया।

कुछ विद्वानों की धारणा है कि सम्राट अशोक भी बौद्ध बनने से पूर्व जैन धर्म का अनुयायी था। अपने सप्तम स्तम्भ लेख में अशोक ने ब्राह्मण आजीविकों के साथ निग्रन्थों का भी उल्लेख किया है जिनको कुछ विद्वानों ने जैन साधु बताया है।

अशोक का पौत्र सम्प्रति जैन धर्म का महान संरक्षक था और जैनाचार्य हेमचन्द्र के अनुसार उसने जम्बू द्वीप में जैन मन्दिरों का निर्माण करवाया था।

पटना संग्रहालय में लोहानीपुर से खुदाई में प्राप्त एक नग्न पुरुष की धड़प्रतिमा प्रतिष्ठापित है (चित्र १)। इस प्रतिमा के ऊपर चमकदार पालिश

को देखकर विद्वानों ने इसे मौर्यकाल लगभग तीसरी शती ई० पूर्व का बताया है। उसी स्थान से प्राप्त अन्य धड़ जिस पर पालिश का अभाव है, शुंग काल दूसरी शती ई० पू० में जिन पूजा की प्रथा का संकेत करता है।

कलिंग सम्राट खारवेल ने अपने को हाथी-गुम्फा अभिलेख में भिक्षुओं के राजा के रूप में बताया है। इस शक्तिशाली सम्राट् ने अपने शासन के बारहवें वर्ष में मगध के राजा को परास्त कर 'जिन' की प्रतिमा को वापस लाने का कार्य किया जिसको नन्द राजा मूलत: कलिंग से मगध ले गए थे। इसने भुवनेश्वर के समीप कुमारी पर्वत (खण्डगिरि पहाड़ी) में अनेक शैल गुफाओं का निर्माण कराया और उन्हीं के समीप पाभार नामक स्थान पर एक मठ की भी स्थापना की।

कुषाण काल में जैन धर्म उत्तरी भारत में पल्लवित होता रहा। कंकाली टीला एवं मथुरा के अनेक स्थानों से प्राप्त कुषाण कालीन जैन प्रतिमाएं राज्य संग्रहालय लखनऊ तथा राजकीय संग्रहालय मथुरा में सुरक्षित हैं। इन्हीं की समकालीन कुछ कांस्य प्रतिमाएं जो बिहार में चौसा नामक स्थान से प्राप्त हुई थीं, अब पटना संग्रहालय में प्रदर्शित हैं।

मथुरा और कौशाम्वी की खुदाई से अनेक आयागपट्ट भी प्राप्त हुए हैं जिनमें से अधिकांश पर उनके दानकर्ताओं के नाम भी उत्कीर्ण हैं। ये आयागपट्ट प्रथम शताब्दी ई० पू० और द्वितीय शताब्दी ई० पू० के मध्य की जैन कला के अध्ययन के लिए परमावश्यक हैं।

इसी प्रकार द्वितीय शताब्दी ईस्वी के मध्य काल का जयदामन के पौत्र का जूनागढ़ का शिलालेख बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि उसमें उन जैन साधुओं का उल्लेख है जिन्होंने सम्पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति की थी।

गुप्त काल में जैन धर्म का बहुत प्राबल्य रहा है, जैसाकि हमें अनेक शिलालेखों एवं लेखयुक्त जैन प्रतिमाओं से विदित होता है। कुमारगुप्त प्रथम के उदयगिरि गुफा लेख से जिनेश्वर पार्श्वनाथ की मूर्ति के निर्माण का पता चलता है। सम्राट् स्कन्दगुप्त के समय के कहोम स्तम्भ लेख से जैन धर्म के पक्ष में धन समर्पण तथा एक प्रस्तर स्तम्भ की ताखों में पांच तीर्थङ्करों की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठापना का उल्लेख मिलता है। अनेक गुप्तकालीन जैन प्रतिमाएं मथुरा संग्रहालय, लखनऊ संग्रहालय, तथा विदिशा संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

सातवीं शताब्दी में जैन धर्म भारत के विभिन्न भागों में फैला हुआ था। बाणभट्ट ने अपने 'हर्षचरित' में जैनों का अर्हत, वर्णी, भागवत,

पंचरात्रिक, लोकायतिक, पौराणिक, आदि के साथ उल्लेख किया है। ह्वेन-सांग ने भी जैन धर्म के दोनों सम्प्रदाय दिगम्बर और श्वेताम्वर के अनुयायियों को पश्चिम में तक्षशिला और पूर्व में विपुल में देखा है।

भगवान् पार्श्वनाथ की एक अद्वितीय मूर्ति जो विदिशा के समीप ग्यारसपुर के जैन मन्दिर में मूलत: स्थापित थी, अब लन्दन के विक्टोरिया एवं अलवर्ट संग्रहालय में प्रदर्शित है। इसमें तीर्थङ्कर पर मेघकुमार आक्रमण करते दिखाये गये हैं जिसको रोकने के लिये सिर पर नाग धरणेन्द्र अपने फन फैलाये हुये हैं तथा नागिन पद्मावती एक छत्र उसके ऊपर लिये है। प्रस्तुत मूर्ति वर्धनकाल सातवीं शताब्दी ई० की कला की द्योतक है।

आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही जैन धर्म में अनेक बुराइयों का समावेश हो गया जिससे परम्परा से चला आने वाला आन्तरिक और बाह्य अनुशासन शिथिल हो गया, कठोर तपस्या और कृच्छ्र साधना करने वाले भिक्षुओं का जीवन भोगमय हो गया तथा अधिकांश जैनाचार्य सांसारिक समृद्धता की ओर आकर्षित होने लग गये। इस बुराई के खिलाफ भी आवाज उठाई गई। हरिभद्र सूरि सर्वप्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने इस भ्रष्टाचार को दूर करने का प्रयास किया तथा इनके पश्चात् अन्य आध्यात्मिक जैनाचार्य जैसे उद्योतन सूरि, सिद्धर्षि सूरि ने अपने शिष्य गण समेत इस भ्रष्टाचार विरोधी अभियान में भाग लिया। यह अभियान धीरे-धीरे एक गच्छ के रूप में बन गया। बाद में इसी गच्छ समुदाय के लोग 'खरतर' के नाम से प्रसिद्ध हुए। हरिभद्र सूरि के पश्चात भ्रष्टाचार विरोधी इस अभियान में खरतर कहलाने वाले लोगों ने स्थान-स्थान पर अपने विरोधियों से निबटने के लिये शास्त्रार्थों का आयोजन किया, भाषण दिये तथा लिखित मन्तव्यों द्वारा प्रचार भी किया। इस प्रकार इनका यह सहयोग मौखिक और लिखित दोनों प्रकार से रहा। इसी काल में जिनवल्लभ ने राजस्थान प्रदेश के मारवाड़, चित्तौड़, मरोठ, नागोर, आदि अनेक स्थानों में स्थापित प्राचीन जैन मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया। इनके शिष्य जिनदत्त ने जैन धर्म में व्याप्त बुराइयों को दूर करने के लिये अनेक ग्रन्थों की रचना भी की। जैन आचार्य जिनपति ने जो चौहान राजा पृथ्वीराज तृतीय के समकालीन थे, अपने गुरुओं के उपदेशों को राजस्थान के लोगों में प्रचारित किया और जैन धर्म को एक नई दिशा के साथ बढ़ावा भी दिया।

गुजरात के चौलुक्य सम्राट कुमारपाल ने भी अपने महान् गुरु हेमचन्द्र के प्रभाव में जैन धर्म का प्रचार किया। मध्यकाल के प्रारम्भिक समय में

भट्टारक सम्प्रदाय ने जैन धर्म के वास्तविक रूप के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान किया, जैसाकि देवगढ़ एवं उसके निकटवर्ती क्षेत्रों से प्राप्त जैन कलावशेषों से प्रमाणित होता है।

जैन अनुश्रुतियों के अनुसार ऋषभनाथ के पुत्र भरत ने कैलाश पर्वत पर जिन की मूर्ति को पवित्र रूप में सुरक्षित रखने के लिए एक मन्दिर का निर्माण कराया था तथा उस काल से अब तक लोग इस परम्परा को मानते आ रहे हैं :—

श्रुत्वा सकाशाद् भरतेश्वरोऽपि कैलासमूर्ध्नि मणिरत्नचूर्णैः।
द्वासप्तर्ति जैनपमंदिराणां निर्माप्य चक्रे जिनबिंबसंस्थाम् ॥
ततः प्रभृत्येव महाधनैः स्वं प्रतिष्ठया धन्यतमं विधाय।
संरक्ष्यतेऽनादिजिनेन्द्रचन्द्रमुखोद्गतं स्थापनसद्विधानम् ॥

—प्रतिष्ठापाठ, ६२, ६३

वसुनन्दि का मत है कि ऐसे सभी स्थान जहाँ तीर्थङ्करों ने जन्म लिया, दीक्षा ली, या ज्ञान प्राप्त किया अथवा निर्वाण को प्राप्त किया, वे चाहे नदी के किनारे हों, पर्वत, गांव अथवा समुद्र के किनारे हों, जैन मन्दिर के लिए उपयुक्त स्थान हैं :

जन्मनिष्क्रमणस्थानज्ञाननिर्वाणभूमिषु।
अन्येषु पुण्यदेशेषु नदीकूलनगेषु च ॥
ग्रामादिसन्निवेशेषु समुद्रपुलिनेषु च।
अन्येषु वा मनोज्ञेषु कारयेज्जिनमंदिरम् ॥

—प्रतिष्ठासारसंग्रह, ३, ३-४

जयसेन की भी लगभग यही धारणा है :

शुद्धे प्रदेशे नगरेऽप्यटव्यां नदीसमीपे शुचितीर्थभूम्याम्।
विस्तीर्णशृंगोन्नतकेतुमालाविराजितं जैनगृहं प्रशस्तम् ॥

—प्रतिष्ठापाठ, १२५

भुवनदेव का भी विचार है कि जैन मन्दिर नगर के भीतर ही बनाना चाहिए :

तीर्थङ्करोद्भवाः सर्वे सर्वशान्तिप्रदायकाः।
जिनेन्द्रस्य प्रकर्तव्याः पुरमध्येषु शान्तिदाः ॥

—अपराजितपृच्छा, १७९, १४

जैन मन्दिर के लिए स्थान बहुत सावधानी से विचार कर तथा जो हर प्रकार से उत्तम हो वही चुनना चाहिए :

रम्यां स्निग्धां सुगन्धादिदूर्वाढ्यां च ततः शुचिम् ।
जिनजन्मादिनावास्ये स्वीकुर्याद् भूमिमुत्तमाम् ।।

—प्रतिष्ठासारोद्धार, १, १८

जहाँ तक जिन की प्रतिमा के निर्माण के तत्वों का संबंध है वह मणि, रत्न, स्वर्ण, चांदी, ताम्र, मुक्ताफल, प्रस्तर आदि किसी से भी बन सकती है :

मणि-कणय-रयण पित्तल-मुत्ताहलोवलाईहि ।
पडिमालक्खणविहिणा जिणाइपडिमा घडाविज्जा ।।

श्रावकाचार, ३९०

जिन प्रतिमाएं स्फटिक की भी बन सकती हैं, किन्तु मिट्टी, लकड़ी, और प्लास्टर से प्रतिमाएं बनाने का निषेध किया गया है :

स्वर्णरत्नमणिरौप्यनिर्मितं स्फाटिकामलशिलाभवं तथा ।
उत्थितांबुजमहासनांगितं जैनबिम्बमिह शस्यते बुधैः ।।

—प्रतिष्ठापाठ, ६९

वर्धमान सूरि ने अपने ग्रन्थ आचारदिनकर में 'जिन' की मूर्ति बनाने में कांसा और सीसा के प्रयोग का निषेध किया है, किन्तु हाथी-दांत और लकड़ी के प्रयोग की स्वीकृति दी है :

स्वर्णरूप्यताम्रमयं वाच्यं धातुमयं परम् ।
कांस्यसीसबङ्गमयं कदाचिन्नैव कारयेत् ।।

जैन ग्रन्थों के अनुसार जिनालय के निर्माण होने पर किसी शुभ दिन और शुभ समय पर मूर्तिकार के साथ मन्दिर में प्रवेश कर विशेष प्रकार के पाषाण का चुनाव करना चाहिए :[1]

धाम्नि सिध्यति सिद्धे वा सेत्स्यत्यर्चाकृते शिलाम् ।
अन्वेष्टुं सेष्टशिल्पीन्द्रः सुलग्न-शकुने व्रजेत् ।।

—प्रतिष्ठासारोद्धार, १, ४६

१. द्रष्टव्य—

ग्राह्यां शिलां दिने गत्वा शोभने स्नपयेद् बुधः ।

—विष्णुधर्मोत्तर पुराण, ३, ९०, २५

तथा

उत्तरायणमासे तु शुक्लपक्षे शुभोदये ।
प्रशस्तपक्षनक्षत्रे मुहूर्ते करणान्विते ।
गच्छेल्लिङ्गं समुद्दिश्य वनं चोपवनं गिरिम् ।।

—मयमत, ३३, १९-२०

ग्रन्थकारों ने मूर्ति के लिये विशेष प्रकार के पत्थरों का उल्लेख किया है।[1] वसुनन्दि के कथनानुसार सफेद, लाल, काले तथा हरे रंग के पत्थर 'जिन' मूर्तियों के निर्माण के लिये सर्वोत्तम हैं :

श्वेता रक्ताऽसिता मिश्रा पारावतसमप्रभा।
मुद्गकपोतपद्माभा मांजिष्ठा हरितप्रभा॥

तीर्थङ्करों की प्रतिमाएं पूर्ण रूप से मानवीय हैं। असामान्य रूप से इन प्रतिमाओं के कई सिर हाथ और पैर नहीं होते हैं। केवल दो ही आसनों में ये मूर्तियां मिलती हैं—ध्यान मुद्रा में बैठे हुये तथा कायोत्सर्ग मुद्रा में सीधे खड़े हुये। जैन धर्म की धारणा के अनुसार ये दोनों मुद्रायें यौगिक मुद्रायें[2] हैं। तीर्थङ्करों की मूर्तियां विष्णु की शेषशायी तथा बुद्ध की परिनिर्वाण की मुद्राओं से भिन्न हैं तथा विश्राम की मुद्रा में इनका कहीं भी अंकन नहीं हुआ है। ध्यान मुद्रा की स्थिति में बैठे हुये तीर्थङ्करों की प्रतिमाएं बुद्ध प्रतिमाओं की भांति हैं, किन्तु तीर्थङ्करों के वक्ष पर श्रीवत्स का चिह्न होने के कारण ये प्रतिमाएं बुद्ध प्रतिमाओं से सरलता से अलग की जा सकती हैं। पूर्वी तथा दक्षिण भारत की मध्यकालीन तीर्थङ्कर प्रतिमाओं में इस चिह्न का अधिकांशतः अभाव मिलता है। सर्वतोभद्र अथवा चौमुख प्रतिमाएं कुषाण काल से बननी प्रारम्भ हुई तथा मध्यकाल तक निर्मित होती रहीं। सर्वतोभद्र की मूर्तियां जो कि विशेष रूप से मथुरा और कौशाम्बी आदि स्थानों से मिली हैं, के ऊपर चार प्रमुख जिन—आदिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, तथा महावीर का अंकन मिलता है।

अनेक प्राचीन ग्रन्थों में 'जिन' प्रतिमाओं की विशेषताओं का उल्लेख मिलता है। वराहमिहिर की प्रसिद्ध पुस्तक 'बृहत्संहिता' से ये उद्धरण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं :

आजानुलम्बबाहुः श्रीवत्साङ्कप्रशान्तमूर्तिश्च।
दिग्वासास्तरुणो रूपवांश्च कार्योऽर्हतां देवः॥

बृहत्संहिता, ५८, ४५

---

१. श्वेतश्च पद्मवर्णश्च कुसुमोषरसन्निभम्।
पाण्डुरो मुद्गवर्णश्च कापोतो भृङ्गसन्निभः॥
ज्ञेयाः प्रशस्ताः पाषाणाः अष्टावेते न संशयः।
पाण्डरा घृतपद्माभा सर्वार्चासु शुभा शिला॥ —रूपमण्डन, १, ५

२. द्रष्टव्य हरिभद्र के अनुसार—
श्राम्यंतीति श्रमणाः तपस्यंतीत्यर्थः। —दशवैकालिक सूत्र, १३, ३

मानसार के अनुसार 'जिन' प्रतिमा की विशेषताएं उसकी नग्नावस्था, श्रीवत्स चिह्न, लम्बी भुजाएं और शान्त मुद्रा है :

द्विभुजं च द्विनेत्रं च मुण्डतारं च शीर्षकम् ।
ऋजुस्थानकसंयुक्तं तथा चासनमेव च ।
समाङ्घ्रि ऋज्वाकारं स्याल्लम्बहस्तद्वयं तथा ।
आसनं च द्विपादौ च पद्मासनं तु संयुतम् ।
ऋजुके च ऋजुभावं योगं तत्परमात्मकम् ।
निराभरणसर्वाङ्गं निर्वस्त्राङ्गं मनोहरम् ।
सर्ववक्षःस्थले हेमवर्णं श्रीवत्सलांछनम् ।।

प्रतिष्ठासारोद्धार के अनुसार तीर्थङ्कर की मुख-मुद्रा शान्त और स्थिर होनी चाहिए :

शान्तप्रसन्नमध्यस्थनासाग्रस्थाविकारदृक् ।
संपूर्णभावारूढानुविद्धाङ्गं लक्षणान्वितम् ।।

—प्रतिष्ठासारोद्धार, १, ६२

प्रतिष्ठापाद में उल्लिखित है कि तीर्थङ्कर की प्रतिमा वृद्ध या बालक के रूप में न होकर एक युवा के रूप में होनी चाहिए। उसके वक्ष पर श्रीवत्स का चिह्न तथा वह नाखून और केश रहित होनी चाहिए। वैरागी अथवा सन्त के सभी शेष गुणों से युक्त प्रतिमा किसी अच्छी धातु या प्रस्तर की बननी चाहिए :

वृद्धत्वबाल्यरहितांगमुपेतशांतिं
श्रीवृक्षभूषिहृदयं नखकेशहीनम् ।
सद्धातुचित्रदृषदां समसूत्रभागं
वैराग्यभूषितगुणं तपसि प्रशक्तम् ।।

—प्रतिष्ठापाद, १५१-५२

विवेकविलास के अनुसार वक्ष पर श्रीवत्स और माथे पर ऊष्णीष के चिह्न से युक्त तीर्थङ्कर की प्रतिमा पद्मासनी मुद्रा में छत्र के नीचे एक सुन्दर चौकी पर स्थापित होनी चाहिये :

उपविष्टस्य देवस्योर्ध्वस्य वा प्रतिमा भवेत् ।
द्विविधापि युवावस्था पर्यङ्कासनगाऽऽदिमा ।।
देवस्योर्ध्वस्य चार्चा स्माज्जानुलम्बिभुजद्वया ।
श्रीवत्सोष्णीषयुक्तं द्वे छत्रादिपरिवारिते ।।

—विवेकविलास, १, १२८-३०

प्रतिष्ठासारसंग्रह में जिनेन्द्र की मूर्ति के विषय में विस्तार से बताया गया है और उनके आसन के विषय में यह भी कहा गया है कि तीर्थङ्कर प्रतिमा युवावस्था तथा दिगम्बर वेष में श्रीवत्स द्वारा भूषित होनी चाहिये। प्रतिमा की ऊंचाई १०८ अंगुल होनी चाहिये। कांख में तथा मूछों की रेखा पर अथवा किसी अन्य अंग पर कोई बाल नहीं होना चाहिये :

> अथ बिम्बं जिनेन्द्रस्य कर्तव्यं लक्षणान्वितम् ।
> ऋज्वायुतसुसंस्थानं तरुणाङ्गदिगम्बरम् ।
> श्रीवृक्षभूषितोरस्कं जानुप्राप्तकराग्रजम् ।
> निजाङ्गुलप्रमाणेन साष्टाङ्गुलशतायुतम् ।।
> कक्षादिरोमहीनाङ्गश्मश्रुलेखाविवर्जितम् ।
> ऊर्ध्वं प्रलम्ब कं दत्वा समाप्त्यन्तं च धारयेत् ।।

—प्रतिष्ठासारसंग्रह, ४, १, २, ४

सूत्रधार मण्डन विरचित रूपमण्डन, जो मूर्तिकला का एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है, के छठे अध्याय में जैन मूर्ति कला पर विस्तार से चर्चा की गई है। उसमें चौबीस तीर्थङ्करों के नामों की सूची तथा उनके रंग, चिह्न, यक्ष तथा यक्षी एवं बोधिवृक्ष जिसके नीचे बैठकर प्रत्येक तीर्थङ्कर ने सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त किया था, आदि का भी वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में जिन प्रतिमाओं के बारे में निम्नलिखित वर्णन प्राप्त है :

> छत्रत्रयं जिनस्यैव रथिकाभिस्त्रिभिर्यता (-र्युतम्) ।।
> अशोकद्रुमपत्रैश्च देवदुन्दुभिवादकैः ।
> सिंहासनमसुराद्यो गजसिंहा (सिंहासनेनासुराद्यैर्गजसिंहैः) विभूषिताः ।।
> मध्ये च कर्मचक्रं च तत्पार्श्वयोश्च यक्षिणी ।
> द्वितालविस्तराः कार्या बहिः परिकरस्य तु ।।
> दैर्घ्ये तु प्रतिमा तुल्या तयोरूर्ध्वं तु तोरणम् ।
> वाहिका बाह्यपक्षे तु गोसिंहरलंकृतः (गोसिंहैः समलंकृताः) ।।
> कर्तव्या द्वारशाखा च तत्तन्मूर्तिगसंयुता ।
> तोरणं पञ्चधा प्रोक्तं रथिकार्य (रथिकायां) च देवताः ।।
> ललितं चैतिकाकारं त्रिरथं बलितोदरम् ।
> श्रीपुञ्जं पञ्चरथिकं साप्तावा (सप्तमा-) नन्दवर्धनम् ।।
> रथिकायां भवेद्ब्रह्मा विष्णुरीशश्च चण्डिका ।
> जिनो गौरी गणेशश्च स्वे स्वे स्थाने सुखावहाः ।।

—रूपमण्डन, ६, ३३-३९

रूपमण्डन के अनुसार ही पद्मप्रभ और वसुपूज्य लाल रंग के हैं, चन्द्रप्रभ और पुष्पदन्त (?) धवल है, नेमि और मुनि अश्वेत हैं, मल्लि और पार्श्व नीले तथा शेष सभी तीर्थङ्कर स्वर्ण रंग के हैं :

रक्तो (रक्तौ) च पद्मप्रभ...भवासंपूज्यौ (प्रभवासपूज्यौ) ।
शुक्लं (शुक्लौ) च चन्द्रप्रभपुष्पदन्तौ ॥
कृष्णौ पुनर्नेमि षुगुर्णैविलीनैः (मुनी च नीलौ) ।
श्रीमल्लिः पार्श्वे (श्रीमल्लिपार्श्वौ) कनकत्विषोऽन्ये ॥

—रूपमण्डन, VI, ४

भुवनदेवकृत अपराजितपृच्छा में भी तीर्थङ्करों के रंग के विषय में महत्वपूर्ण उल्लेख प्राप्त है :

चन्द्रप्रभः पुष्पदन्तः श्वेतो वै क्रौञ्चसम्भवौ ।
पद्मप्रभो धर्मनाथो रक्तोत्पलनिभौ मतौ ॥
सुपार्श्वः पार्श्वनाथश्च हरिद्वर्णौ प्रकीर्तितौ ।
नेमिश्च श्यामवर्णः स्यान्नीलो मल्लिः प्रकीर्तितः ।
शेषाः षोडश सम्प्रोक्तास्तप्तकाञ्चनसम्प्रभाः ॥

—अपराजितपृच्छा, २२१, ५-७

रूपमण्डन के अनुसार 'जिन' की प्रतिमाओं की पूजा करने से सुख एवं समृद्धि की प्राप्ति होती है। जैन प्रतिमाओं में आदिनाथ, नेमि, पार्श्व, और वीर (महावीर) तथा चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती, और सिद्धायिका विशेष रूप से पूजा के योग्य हैं :

जिनस्य मूर्त्तयोऽनन्ताः पूजिताः सौख्यसर्वदा—(सर्वसौख्यदाः) ।
चतस्रोऽतिशयैर्युक्तास्तासां पूज्या विशेषतः ॥
श्रीआदिनाथो नेमिश्च पर्वे वीरचतुर्थकः (पार्श्वो वीरश्चतुर्थकः) ।
चक्रे चर्याम्बिका (चक्रेश्वर्यम्बिका) पद्मावती सिद्धायकेति च ।
कैलाशं सोमशरणं सिद्धिर्वातसदाशिवम् ।
सिंहासनं धर्मचक्रमुपरीन्द्रातपत्रकम् ॥

—रूपमण्डन, ६, २५-२७

रूपमण्डन[1] में दी गई चौबीस तीर्थङ्करों की एक सारणि, उनके लक्षण और यक्ष एवं यक्षी के साथ नीचे उद्धृत की जा रही है :

---

१. रूपमण्डन, पृ० ९८-९९

संख्या	तीर्थङ्कर	चिह्न	यक्ष	यक्षी
१.	ऋषभ	वृष	गोमुख	चक्रेश्वरी
२.	अजित	गज	महायक्ष	अजितबला
३.	संभव	अश्व	त्रिमुख	दुरितारी
४.	अभिनंदन	कपि[1]	यक्षेश्वर	कालिका
५.	सुमति	क्रौंच	तुम्बुरु	महाकाली
६.	पद्मप्रभ	रक्तबीज	कुसुमा	श्यामा
७.	सुपार्श्व	स्वस्तिक	मातंग	शान्ता या शान्ति
८.	चन्द्रप्रभ	शशि	विजय	भृकुटि
९.	सुविध	मकर	जय[2]	सुतारिका
१०.	शीतल	श्रीवत्स	ब्रह्मा	अशोका
११.	श्रेयांस	गण्डक[3]	यक्षेत[4]	मानवी
१२.	वासुपूज्य	महिष	कुमार	चण्डी
१३.	विमल	शूकर	षण्मुख	विदिता
१४.	अनंत	श्येन	पाताल	अंकुशी
१५.	धर्म	वज्र	किन्नर	कन्दर्पी
१६.	शान्ति	मृग	गरुड़	निरवाणी
१७.	कुन्थ	छाग	गन्धर्व	बला
१८.	अर	नन्द्यावर्त	यक्शेत[5]	धारिणी
१९.	मल्लि	घट	कुबेर	धरणप्रिया
२०.	मुनि	कूर्म	वरुण	नादरक्ता अथवा नरदत्ता
२१.	सुवर्त	नीलोत्पल	भृकुटि	गन्धर्व

१. अपराजितपृच्छा में (१११, २२१, ८) कपयः शब्द कपि के लिये प्रयुक्त हुआ है।
२. अजित का प्रयोग दूसरे सन्दर्भ में हुआ है।
३. रूपमण्डन में गलती से खगीश का प्रयोग गण्डक के लिये हुआ है।
४. दूसरी साहित्यिक कृतियों के अनुसार ईश्वर।
५. कषेन्द्र या यक्षेन्द्र दूसरी जैन पुस्तकों के अनुसार।
६. दूसरी कृतियों में इसका उल्लेख गान्धारी मिलता है।

२२.	नेमि	शंख	गोमेध	अम्बिका
२३.	पार्श्व	फणी	पार्श्व[1]	पद्मावती
२४.	महावीर	सिंह	मातंग	सिद्धायिका

उपरोक्त सारणि से यह स्पष्ट है कि तीर्थङ्करों के चिह्नों तथा यक्ष और यक्षियों के वर्णन में मण्डन ने श्वेताम्बर परम्परा का अनुगमन किया है। दिगम्बरों के अनुसार वृश्चिक, अश्वत्थ और ऋक्ष क्रमशः सुविध, शीतल एवं अनन्त के चिह्न हैं। दिगम्बर सम्प्रदाय की रचनाओं के अनुसार सुपार्श्व, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शान्ति, कुन्थ, मल्लि, और नेमिनाथ आदि की क्रमशः काली, गौरी, गान्धारी, वैरोटी, अनन्तमति, मानसी, महामानसी, विजया ब्रह्मरूपिणी, चामुण्डी, एवं कूष्माण्डा इत्यादि यक्षिणियाँ हैं। इसी प्रकार श्रेयांस और शान्तिनाथ के यक्ष ईश्वर एवं किम्पुरुष हैं, न कि रूपमण्डन में निहित यक्षेत और गरुड़।

रूपमण्डन में सात शासन देवताओं का वर्णन इस क्रम से हुआ है: सर्व प्रथम गोमुख जो ऋषभनाथ का यक्ष है तथा स्वर्ण रंग का है। उसका वाहन हाथी है तथा वह वर, माला, पाश तथा बीजपूरक लिए होता है:

रिषभो (ऋषभे) गोमुखो यक्षो हेमवर्णा गजानना

(हेमवर्णो गजाननः)।

वराक्षसूत्रमाशाश्च उमवीजपूरेषु च ॥

(वरोऽक्षसूत्रं पाशांश्च बीजपुरं करेषु च) ॥

—रूपमण्डन, ६, १७

अपराजितपृच्छा में हाथी के बदले बैल को उपर्युक्त यक्ष की सवारी के रूप में अभिव्यक्त किया है:

वराक्षसूत्रे पाशश्च मातुलिङ्गचतुर्भुजः।

—अपराजितपृच्छा, २२१, ४३

चक्रेश्वरी जैन धर्म की एक प्रमुख देवियों में से है। रूपमण्डन के अनुसार वह स्वर्ण रंग की है तथा गरुड़ उसका वाहन है। यह अष्टभुजी देवी अपने हाथों में विभिन्न प्रकार के आयुधों से युक्त होती है:

चक्रेश्वरी हेमवर्णा तार्क्ष्यारूढाऽष्टबाहुका।

वरं बाणं चक्रं (शक्तिशूलमनाकुलम् ?) ॥

—रूपमण्डन, ६, १८

---

१. धरणेन्द्र के नाम से विख्यात।

ग्यारसपुर स्थित माला देवी के मन्दिर में चक्रेश्वरी को एक गरुड़ पर आसीन दिखाया गया है और उसके हाथों में एक पाश, एक वज्र, एवं चक्र आदि आयुध हैं। रूपमण्डन में बारहभुजी चक्रेश्वरी का वर्णन है, जिनमें से आठ में चक्र तथा दो-दो में क्रमशः वज्र तथा बीजपूरक हैं :

द्वादशभुजाष्टचक्राणि वज्रयोर्द्वयमेव च।
मातुलिङ्गाभये चैव पद्मस्था गरुडोपरि ॥

—रूपमण्डन, ६, २४

बारहभुजो चक्रेश्वरी की मूर्तियों का उल्लेख रूपमण्डन के अतिरिक्त अपराजितपृच्छा :

षट्पादा द्वादशभुजा चक्राण्यष्टौ द्विवज्रकम्।
मातुलिङ्गाभये चैव तथा पद्मासनाऽपि च ॥
गरुडोपरिसंस्था च चक्रेशी हेमवर्णिका ॥

—अपराजितपृच्छा, २२१, १५-१६

एवं देवतामूर्तिप्रकरण :

अथ द्वितीयभेदेन चक्रे (श्वरी)।
द्वादशभुजाष्टचक्रे वज्रयोर्द्वयमेव च।
मातुलिङ्गाभयं चैव पद्मस्था (ग) (रुड़ो) परि ॥

—देवतामूर्तिप्रकरण, ७, ६६

में भी प्राप्त होता है।

अम्बिका का रंग पीला है। वह हाथों में आमों का गुच्छा, एक सर्पपाश, एक अंकुश एवं बालक को पकड़ती है :

सिंहारूढाऽम्बिका पीता मलुंबि ? (त्वाम्रकं ?) नागपाशकम्।
अङ्कुशञ्च तथा पुत्रं तथा हस्तेष्वनुक्रमात् ॥

रूपमण्डन, ६, १६

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि यह वर्णन अम्बिका के चतुर्भुजी प्रतिमा को संकेतित करता है। इसके विपरीत अपराजितपृच्छा में द्विभुजी देवी का उल्लेख है जो फल एवं शिशु पकड़े है :

हरिद्वर्णा सिंहसंस्था द्विभुजा च फलं वरम्।
पुत्रेणोपास्यमाना च सुतोत्सङ्गा तथाऽम्बिका ॥

—अपराजितपृच्छा, २२१, ३६

पार्श्व तेईसवें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ का यक्ष है। इसका रंग रूपमण्डन में

श्र्वेत बताया गया है तथा यह एक बीजपूरक, सर्प एवं नकुल पकड़े होता है :

पार्श्वः स्यात्पार्श्वनाथस्य कूर्मारूढो गजाननः ।
बीजपूरोरगं नागं नकुलं श्यामवर्णकैः ॥

—रूपमण्डन, ६, २०

अपराजितपृच्छा में पार्श्व के हाथों में धनुष, बाण, भुशुण्डी एवं मुद्गर का होना बताया गया है :

पार्श्वौ धनुर्बाणभृण्डिमुद्गरश्च फलं वरः ।
सर्परूपः श्यामवर्णः कर्त्तव्यः शान्तिमिच्छता ॥

—अपराजितपृच्छा, २२१, ५५

पद्मावती जिनका वाहन एक मुर्गा है, लाल रंग की देवी हैं और उनके चारों हाथों में रूपमण्डन के अनुसार एक कमल, एक पाश, अंकुश एवं बीजपूरक होता है :

रक्तायसवती पूर्णा (पद्मा) कुर्कुटीरग
(कुक्कुटस्था) चतुर्भुजा ।
पद्मपाशांशौ (पद्मपाशाङ्कुशौ) बीज-
पूरं हस्तेषु कारयेत् (धारयेत्) ॥

—रूपमण्डन, ६, २१

अपराजितपृच्छा में चतुर्भुजी पद्मावती का वर्णन इस प्रकार मिलता है :

पाशाङ्कुशौ पद्मवरे रक्तवर्णा चतुर्भुजा ।
पद्मासना कुक्कुटस्था ख्याता पद्मावतीति च ॥

—अपराजितपृच्छा, २२१, ३७

भगवान् महावीर के यक्ष मातंग की सवारी हाथी है। उसके दांये हाथ में नकुल एवं बांये हाथ में बीजपूरक होता है :

महावीरस्य मातङ्गो गजारूढो मितो भवेत ।
दक्षिणे नकुलं हस्ते वामे स्याद् बीजपूरकम् ॥

—रूपमण्डन, ६, २२

अपराजितपृच्छा में मातंग का निम्नलिखित उल्लेख प्राप्त है :

फलं वरोऽथ द्विभुजी मातङ्गो हस्तिसंस्थितः ।
यक्षाश्चतुर्विंशतिकास्तयर्षभादितः क्रमात् ॥

—अपराजितपृच्छा, २२१, ५६

जैनियों की एक अन्य प्रतिष्ठित देवी सिद्धायिका है, जो महावीर की

यक्षी है। रूपमण्डन के अनुसार सिंह-वाहिनी चतुर्भुजी देवी अपने हाथों में एक पुस्तक, एक बाण तथा बीजपूरक पकड़ती है जबकि इसका शेष हाथ अभय-मुद्रा में होता है :

सिद्धायका (सिद्धायिका) नीलवर्णा
सिद्ध—(सिंहा-) रूढा चतुर्भुजा।
पुस्तकं चाभयं दत्ते (धत्ते)
बाणं वै मातुलिङ्गकम्॥

—रूपमण्डन, ६, २३

अपराजितपृच्छा में केवल द्विभुजी सिद्धायिका का वर्णन प्राप्त है :

द्विभुजा कनकाभा च पुस्तकं चाभयं तथा।
सिद्धायिका तु कर्तव्या भद्रासनसमन्विता॥

—अपराजितपृच्छा, २२१, ३८

जैन ग्रन्थों में गौण देवियों एवं देवताओं को चार वर्गों में विभाजित किया है जो मुख्य रूप से ज्योतिषी, विमानवासी, भवनपति, और व्यन्तर हैं। यह वर्गीकरण इनके व्यक्तिगत एवं प्राकृतिक संबंधों पर आधारित है। रूपमण्डन में चौबीस नक्षत्रों और बारह राशियों का भी वर्णन है, किन्तु इनका प्रतिमा मूलक वर्णन नहीं दिया गया है। रूपमण्डन में आठ प्रतिहारों जैसे इन्द्र, इन्द्रजय, महेन्द्र, धरणेन्द्र, पद्मक, सुनाभ, सुरदुन्दुभि आदि का वर्णन विस्तारपूर्वक मिलता है। इस वर्णन को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि वह अपराजितपृच्छा पर ही आधारित है।

मध्ययुगीन जैन मन्दिरों में प्रतिष्ठापित मूर्तियां तथा जिन प्रतिमाएं अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति में उस युग में धीरे-धीरे विकसित हो रहे तान्त्रिक प्रभावों से प्रभावित दिखाई पड़ती हैं। इन मूर्तियों से पौराणिक हिन्दू संस्कृति का अन्त:प्रभाव झांकता दिखाई पड़ता है।

स्थान-स्थान पर सन्दर्भों के रूप में आयी मूर्ति कला से संबंधित रचनाओं के अतिरिक्त भी कई ऐसी कृतियां उपलब्ध हैं जो एक शोधार्थी को जैनमूर्ति और कला पर महत्त्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध कराती हैं। ऐसे ग्रन्थों के नाम नीचे दिए जा रहे हैं :—

अभिधान-चिन्तामणि, दीपाराधि, समरांगण-सूत्रधार, प्रसाद मण्डन, निर्वाण कलिक, राजवल्लभ, देवतामूर्तिप्रकरण, काश्यप-संहिता, रायपसेणी, जीवाभिगम, तिलोयपण्णती, वास्तुसार प्रकरण आदि।

ये सभी ग्रन्थ जैन कला के विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी एव महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

अग्रवाल, आर० सी०
ए यूनीक इमेज़ आफ जीवन्त-स्वामी फ्राम राजस्थान, **ब्रह्म विद्या**, अदयार, XXII, १ और २, पृ० ३२-३४

ए यूनीक स्कलपचर आफ जैन गौडेस सच्चिका **आर्टीबस एशियाई**, एसकौना, XVIII, ३-४, पृ० २३२-३४

सम अरली जैन आईकन्स फ्राम जोधपुर, डिवीज़न, **जे० ए०**, XX, २, पृ० १५-१७

सम इन्टरस्टिंग स्कलपचर्स आफ जैन गौडेस अम्बिका फ्राम मारवाड़, **आई० एच० क्यू०**, XXXII, ४, पृ० ४३४-३८

अग्रवाल, बी० एस०
कैटेलाग आफ दि मथुरा म्युज़ियम, **जे० यू० पी० एच० एस०**, XXII.

जैन आर्ट आफ मथुरा, **बाबू छोटे लाल जैन स्मृति ग्रन्थ**, कलकत्ता, १९६७, पृ० ८७-९२

जैन विद्या, श्री महावीर स्मृति ग्रन्थ, १९४८-४९

दि नेटीविटी सीन आफ ए जैन रिलीफ़ फ्राम मथुरा, **जे० ए०**, X

मथुरा अयागपट्टाज, **जे० यू० पी० एच० एस०**, XVI, I

मथुरा की जैन कला, **महावीर जयन्ती स्मारिका**, जयपुर, अप्रैल, १९६२

अत्री, सी० एम०
ए क्लैक्शन आफ सम जैन स्टोन इमेज़ेज फ्राम माऊन्ट गिरनार, **बुलेटिन आफ दि**

म्यूज़ियम एण्ड गैलरी, पिक्चरब ड़ौबा, XX, पृ० ५१-५६

अमर, जी० एल० — कारी तलाई की जैन मूर्तियां, अनेकान्त, दिल्ली, फरवरी १९६८

पतियानदाई—एक गुप्तकालीन जैन मन्दिर, अनेकान्त, दिल्ली, XIX, ६, पृ० ३४०-४६

आचार्य जिनसेन — आदि पुराण, (अनु०) पं० पन्नालाल, दिल्ली, १९६८

आशाधर — प्रतिष्ठासारोद्धार, (सं०) पं० मनोहर शास्त्री, बम्बई, वि० सं० १९७४

उपाध्याय, एस० सी० — जैन आईकनोग्राफी मेनली इन श्वेताम्बरज़, बम्बई, १९६९

कपाड़िया, एच० आर० — दि जैन सिस्टम आफ एजूकेशन, जरनल आफ दी यूनिवर्सिटी आफ बाम्बे, बम्बई, VII, ४

कुमारस्वामी, ए० के० — कैटेलाग आफ जैन पेंटिंग्स एण्ड मैनुस्क्रिप्ट्स, बोस्टन, १९२४

जैन स्कल्पचर्स (रीसैण्ट एक्वीज़ीशन), बुलेटिन, म्यूज़ियम आफ फाइन आर्ट्स, बोस्टन, अगस्त, १९२२, पृ० ५३

लाईफ आफ महावीर, जे० जे०, १-४, पृ० १४२-४८

गांगुली, ओ० सी० — ए जैन रिलीफ फ्राम साऊथ कैंसिगटन म्यूज़ियम, रूपम्, कलकत्ता, ३७, पृ० १

गांगुली, के० के० — जैन इमेजेज़ इन बंगाल, इण्डियन कलचर, VI, २

सम सिम्बालिक रिप्रैजैन्टेशन इन अरली जैन आर्ट, जे० जे०, १, पृ० ३१-३६

गुप्ता, एस० पी० — गन्धावल—ए रेयर जैन साइट आफ मालवा, छोटेलाल जैन स्मृति ग्रन्थ, कलकत्ता, १९६७, पृ० ९९-१०२

दी जैन सोर्सेज आफ दी हिस्ट्री आफ एनशिएंट इण्डिया (१०० बी० सी०—६०० ए० डी०), दिल्ली, १९६४

रिवाईवल आफ श्रमण धर्म इन लेटर वैदिक एज़, जे० जे०, VI, ३, पृ० १०६

जैन, नीरज — खजुराहो के जैन मन्दिर, सतना, १९७०

जैन, बी सी० — जैन प्रतिमा विज्ञान, जबलपुर, १९७४
XXI, पृ० २०४-१४

जैन ब्रोन्जेज फ्राम राजनपुर——किनकिनी जे० आई० एम०, XI, पृ० १५-३३

धुबेला संग्रहालय में जैन मूर्तियां, अनेकान्त, दिल्ली, अक्टूबर, १९६६

जैन प्रतिमा लक्षण, अनेकान्त, दिल्ली,

जैन, सी० आर० — ऋषभदेव, दी फाऊन्डर आफ जैनिज्म, इलाहाबाद, १९२६

जैन, सी० एल० — जैन बिब्लियोग्राफी, कलकत्ता, १९४५

जोन्सन, एच० एम — श्वेताम्बर जैन आईकनोग्राफ़ी, आई० ए०, फरवरी, १९२७

जोशी, एन० पी० (सं०) — जैन निबन्धमाला, रामपुर, १९७७

तिवारी, एम० एन० पी० — उत्तर भारत में जैन यक्षिणी चक्रेश्वरी का मूर्तिगत अवतरण, अनेकान्त, दिल्ली, XXV, १, पृ० ३५-४०

जैन शिल्प में बाहुबली, अनेकान्त, दिल्ली, XXIV, १, पृ० ८-११

रिप्रेजेन्टेशन आफ सरस्वती इन जैन स्कल्पचर्स आफ खजुराहो, जरनल आफ दी गुजरात रिसर्च सोसाइटी, बम्बई, XXXIV, ४, पृ० ३०७-१२

दे०, सूधिन — चौमुख, ए सिम्बल आफ जैन आर्ट, जे० जे०, VI, १, पृ० २७-३०

दीक्षित, आर० के० — जैनिज्म अण्डर दी चन्देल्स, जे० ए०, XXII, १, पृ० ७-१३

दीक्षितर, वी० आर० आर० — ओरिजन एण्ड अरली हिस्ट्री आफ चैत्याज, आई० एच० क्यू०, XIV

डेल बोन्ट, रोबर्ट जे० — एन इमेज आफ पार्श्वनाथ फ्राम वरुण, ओ० ए० (एन० एस०), XVIII, २, पृ० १७४-७५

देव, एस० बी० — जैनिज्म इन इण्डियन हिस्ट्री, जे० जे०, VI, ४, पृ० १७५-२०८

देव, कृष्ण — मालादेवी टैम्पिल ऐट ग्यारसपुर, श्रीमहावीर जैन विद्यालय गोल्डन जुबली वाल्यूम, बम्बई, १९६८, पृ० २६२ तथा आगे

देसाई, पी० बी० — जैनिज्म इन साऊथ इण्डिया एण्ड सम जैन एपिग्राफ्स, शोलापुर, १९५७

ढ़ाकी, एम० ए० — दी आईकनोग्राफी आफ सचियादेवी, छोटेलाल स्मृति ग्रन्थ, कलकत्ता, १९६७, पृ० ६[illegible]-७०

दी टैम्पिल आफ महावीर ऐट आहाड़, मुनि जिन विजय अभिनन्दन ग्रन्थ, जयपुर, १९७१, पृ० २३०-३२

ठाकुर, उपेन्द्र — ए हिस्टोरिकल सर्वे आफ जेनिजम इन नार्थ बिहार, जे० बी० आर० एस०, XLV, I-IV, पृ० १८६ तथा आगे

नरसिम्हार, डी० एल० — दी जैन रामायण, आई० एच० क्यू०, XV, ४, पृ० ५७५-९४

नवाब, एस० एम० — जैन चित्र-कल्पद्रुम (गुजराती), दो भाग, अहमदाबाद, १९३६ एव १९३८

जैन तीर्थाज इन इण्डिया एण्ड देयर आर्कीटेक्चर, अहमदाबाद १९४४

दी कलेक्शन आफ कालका स्टोरी, दो भाग, अहमदाबाद, १९५८

नाहटा, अगरचन्द — भारतीय वास्तुशास्त्र में जैन प्रतिमा

सम्बन्धी ज्ञातव्य, अनेकान्त, दिल्ली, XX, ५, पृ० २०७-१५

नेमीचन्द्र — प्रतिष्ठातिलक, शोलापुर, १९५१
प्रवचनसारोद्धार, दो भाग, बम्बई, १९१५

पादलिप्ताचार्य सूरि — निर्वाणकलिका, (स०) बी० एस० ज़वेरी, इन्दौर, १९२६

परमार, बी० एम० एस० — जैन प्रतिमाएं : भरतपुर संग्रहालय, राजस्थान भारती, बीकानेर, X, ३, पृ० १५-१७

पुण्यविजय — जैसलमेर चित्रावली, अहमदाबाद, १९५१

पाई, एम० जी० — व्हाई आर दी बाहुबलि कोलोस्सई काल्ड गोम्मट ?, आई० एच० क्यू०, VI, २, पृ० २७०-८६

प्रसाद, एच० के० — जैन ब्रोन्जेज़ इन दी पटना म्यूज़ियम, श्री महावीर जैन विद्यालय गोल्डन जुबिली वाल्यूम, बम्बई, १९६८, I, पृ० २७५ तथा आगे

बरगैस, जे० — दिगम्बर जैन आईकनोग्राफी, आई० ए०, XXXII, पृ० ४५९ तथा आगे; वही, XXXIII, पृ० ३३० तथा आगे

बाजपेयी, के० डी० — जैन इमेज़ आफ सरस्वती इन दी लखनऊ म्यूज़ियम, जे० ए०, XIII, पृ० ४ तथा आगे।
देवगढ़ की जैन प्रतिमाएं, अनेकान्त, दिल्ली, अप्रैल, १९६२
न्यू जैन इमेजेज़ इन दी मथुरा म्यूज़ियम, जे० ए०, जुलाई १९४८
न्यू जैन मथुरा फाईन्ड्स, जे० यू० पी० एच० एस०, XIX
मध्य प्रदेश की प्राचीन जैन कला, अनेकान्त, दिल्ली, अगस्त १९६४

ब्हुलर, जी०	स्पैसीमैन्स ग्राफ जैन स्कल्पचर्स फ्राम मथुरा, ई० ग्राइं०, II
बैनर्जी, अद्रिस	ए जैन केमिश्रो ऐट चित्तौड़गढ़, बाबू छोटे, लाल जैन स्मृति ग्रन्थ, कलकत्ता, १९६७ पृ० ७१-७६
	जैन एन्टीक्वीटीज़ इन राजगिर, ग्राई० एच० क्यू०, XXV, ३, पृ० २०५-१०
	टू जैन इमेजेज़, जे० बी० ग्रार० एस० XXVIII, १, पृ० ४३
बैनर्जी, पी०	ग्ररली हिस्ट्री ग्राफ जैनिज्म, इन्डो-एशियन कलचर, नई दिल्ली, जनवरी १९७०, पृ० ५-२३
	ए नोट ग्रॉन दी वर्शिप ग्राफ इमेजेज़ इन जैनिज़्म, सी० २०० बी० सी० टू० ए० डी० २००, जे० बी० ग्रार० एस०, XXXVI, I-II, पृ० ५७ तथा ग्रागे
बैरट, डी० ई०	ए जैन ब्रोन्ज़ फ्राम दी डैकन, ग्रो० ए० (एन० एस०), V, ४, पृ० १६२-१६५
बोन्न, के० एफ०	दी इमेज ग्राफ हेविन इन दी सीलिंग ग्राफ दी ग्रादिनाथ टैम्पिल ऐट राणकपुर, छोटेलाल जैन स्मृति ग्रन्थ, कलकत्ता, पृ०, १९६७-९८
ब्राऊन, डब्ल्यू० एन०	दी स्टोरी ग्राफ कालका, वाशिंगटन, १९३३
ब्रूहन, क्लाज़	दी जैन इमेजेज़ ग्राफ देवगढ़, लाईडन, १९६९
भट्टाचार्य, ए० के०	ऐन इन्ट्रोडक्शन टू दी ग्राईकनोग्राफी ग्राफ जैन गोडैस पद्मावती, मुनि जिन विजय विजय ग्रभिनन्दन ग्रंथ, जयपुर, १९७१, पृ० २१९-२१; बाबू छोटेलाल स्मृति ग्रन्थ, कलकत्ता, १९६७, पृ० ७७-८६

आईकनोग्राफी आफ सम माईनर डीटीज़ इन जैनिज़म, आई० एच० क्यू०, XXX-IX, ४, पृ० ३३२-३९

भट्टाचार्य, बी० सी० — जैन आईकनोग्राफी, दिल्ली, १९७४

भट्टाचार्य, एच० एस० — लार्ड अरिष्टनेमी, दिल्ली, १९२९

मनकड, पी० ए० (सं०) — अपराजितपृच्छा आफ भुवनदेव, बड़ौदा १९५०

मित्र, के० पी० — नोट आन टू जैन इमेजेज़, जे० बी० ओ० आर० एस०, XXVIII, II, पृ० १९८

मित्र, देबला — सम जैन ऐन्टीक्वीटीज़ फ्राम बंकुरा, वैस्ट बंगाल, जरनल आब दी एशियाटिक सोसाइटी, लैटर्स, कलकत्ता, XXIV, २, पृ० १३१-१३४

मोतीचन्द्र — जैन मिनिएचर पेंटिंग्स फ्राम वैस्टर्न इण्डिया, अहमदाबाद, १९४९

मोतीचन्द्र एवं गोरक्षकर सदाशिव — जैन ब्रोन्जेज़ आफ वैस्टर्न इण्डिया फ्राम, दी लेट श्रीमती अमरावती गुप्ता क्लैक्शन, बी० पी० डब्ल्यु० एम०, नं० ११, पृ० १२-२५

मोदे, हैन्ज़ — दी स्टोरी आफ जैन आर्ट, जे० जै०, १, पृ० ७-१२

यती वृषभ — तिलोयपण्णत्ती, दो भाग, (सं०) ए० एन० उपाध्ये एवं ऐच० एल० जैन० शोलापुर, १९४३, १९५१

रविसेन, आचार्य — पद्मपुराण, (अनु०) पं० पन्नालाल, दिल्ली, १९६८

रामचन्द्रन, टी० एन० एवं जैन, सी० एल० — खण्डगिरि-उदयगिरि केब्ज़, कलकत्ता, १९५१

राओ, एस० आर० — जैन ब्रोन्जेज़ फ्राम लिल्बदेव, जे० आई० एम०, XI, पृ० ३०-३४

राओ, एस० के० आर० — जैनिज़्म इन साऊथ इण्डिया, मद्रास, १९७०

राय चौधरी, पी० सी०	जैनिज्म इन बिहार, पटना, १९५६
ला, बी० सी०	पार्श्वनाथ : हिज लाईफ़ एण्ड डोक्ट्रिन्स, जरनल ग्राफ इण्डियन हिस्ट्री, XXXI, १
	महावीर : हिज लाईफ एण्ड टीचिंग्स, लन्दन, १९३७
वर्धमान, सूरि	ग्राचार्य दिनकर, दो भाग, बम्बई, १९२२ एवं १९२३
वसुनन्दी	प्रतिष्ठासारसंग्रह, शोलापुर, २९२५
वैद्य, पी० एल० (सं०)	ग्राचार्य मंजुश्री मूलकल्प (महायान सूत्र संग्रह, पार्ट टू), दरभंगा, १९६४
शर्मा, ग्रार० सी०	जैन मूर्तिकला का प्रारम्भिक स्वरूप, ग्रनेकान्त, दिल्ली, जून १९६६, पृ० १४२ तथा ग्रागे
	दी ग्ररली फ़ेज ग्राफ जैन ग्राईकनोग्राफी, छोटेलाल जैन स्मृति ग्रन्थ, कलकत्ता, १९६७, पृ० ५७-६२
शर्मा, दशरथ	ग्लीनिंग्स फ्राम दी खरतरगच्छपट्टावली (ए हिस्ट्री ग्राफ जैन ग्राचार्याज़ ग्राफ दी खरतरगच्छ ब्रान्च, १०१०-१३३६ ए० डी०), ग्राई० एच० क्यू०, III, पृ० २२३-३१
शर्मा, बी० एन०	ग्रनपब्लिशड जैन ब्रोन्जेज इन दी नेशनल म्यूजियम, नई दिल्ली, जे० ग्रो० ग्राई०, XIX, ३, पृ० ३७५-७८
	संसार के संग्रहालयों में जैन मूर्तियाँ, भागलपुर, १९७४
शाह, प्रियबाला (सं०)	विष्णुधर्मोत्तर पुराण, बड़ोदा, १९५८ एवं १९६१
शाह, यू० पी०	ऐन ग्ररली इमेज ग्राफ पार्श्वनाथ, बी० पी० डब्ल्यू० एम०, नं० ३, पृ० ६३ तथा ग्रागे

ऐन ओल्ड जैन इमेज फ्राम खेद-ब्रह्मा (नार्थ गुजरात), **जे० ओ० आई०**, X, १, पृ० ६१-६३

अकोटा ब्रोन्जेज, बम्बई, १९५९

आईकनोग्राफी आफ चक्रेश्वरी, दी यक्षी आफ ऋषभनाथ, जे० ओ० आई०, XX, ३, पृ० २८०-३१३

आईकनोग्राफी आफ दी जैन गोड्स अम्बिका, **जरनल आफ दी यूनीवसिटी आफ बम्बई**, IX, २

आईकनोग्राफी आफ दी जेन गोड्स सरस्वती, **जरनल आफ दी यूनिवर्सिटी आफ बम्बई**, X, २

आईकनोग्राफी आफ सिक्सटीन जैन महा-विद्याज, **जे० आई० एस० ओ० ए०**, XV, पृ० ११४ तथा आगे।

ए यूनीक जैन इमेज आफ जीवन्त-स्वामी, **जे० ओ० आई०**, I, १, पृ० ७२-७९

ए जैन ब्रोन्ज इन वरजीनिया म्यूजियम, **ओ० ए० (एन० एस०)**, XVIII, ३, पृ० २५३-५४

ए जैन ब्रोन्ज फ्राम जैसलमेर, राजस्थान, **जे० आई० एस० ओ० ए०**, सप्लीमैन्ट नं० आन वैस्टर्न आर्ट, १९६७, पृ० १-२

एज आफ डिफ्रैनसिएशन आफ दिगम्बर एण्ड श्वेताम्बर इमेज एण्ड दी अरलीएस्ट नोन श्वेताम्बर ब्रान्जेज, **बी० पी० डब्ल्यू० एम०**, I, पृ० ३४ तथा आगे।

ए पंच-तीर्थिका मैटल इमेज विद ए तोरण फ्राम पाटन, **जे० आई० एस० ओ० ए०**, सप्लीमैन्ट नं० आन वैस्टर्न आर्ट, १९६७

ए पार्श्वनाथ स्कल्पचर इन क्लीवलेंड, **दी बुलेटिन आफ दी क्लीवलैण्ड म्यूजियम**

आफ आर्ट फार दिसम्बर १९७७, पृ० ३०३-११

ए फ्यू जैन इमेजेज़ इन भारत कला भवन, छवि, (गोल्डन जुबिली वाल्यूम), वाराणसी, १९७१, पृ० २३२-३४

ए फीमेल चौरी बियरर फ्राम अंकोट्टक एण्ड दी स्कूल आफ दी एनशैन्ट वैस्ट, बी० पी० डब्ल्यू० एम०, I, पृ० ४३-४६

जया ग्रुप आफ गोडेसेज विद्या, वल्लभ स्मृति ग्रन्थ, पृ० १२४-२७

जैन आईकनोग्राफी—ए ब्रीफ सर्वे, मुनि जिन विजय अभिनन्दन ग्रन्थ, जयपुर, १९७१, पृ० १८४-२१८

जैन ब्रोन्जेज एण्ड स्कल्पचर्स इन दी सलारगंज म्यूजियम, एस० जे० एम० पाई एनुवल रिसर्च जर्नल, हैदराबाद, I एवं II, पृ० ११-१४

टू जेन ब्रोन्जेज फ्राम अहमदाबाद, जे० ओ० आई०, XXV, पृ० ४६३ तथा आगे।

पैरैन्ट्स, आफ दी जिन्स, बी० पी० डब्ल्यू० एम०, नं० ५, पृ० २४-३२

बाहुबली, बी० पी० डब्ल्यू० एम०, नं० ४, पृ० ३२ तथा आगे।

ब्रह्म शान्ती एण्ड कपर्दी यक्ष, जरनल आफ दी एम० एस० यूनिवर्सिटी, वड़ोदा, VII, पृ० ५९-७२

ब्रॉंज होर्ड फ्राम वसन्तगढ़, ललित कला, नई दिल्ली, १-२, पृ० ५५-६५

मुनि वैरदेव आफ दी सोन भण्डार जैन केव, राजगिर, जे० बी० आर० एस०, XXXIX, पृ० ४१०-१२

यक्षिणी आफ दी ट्वेन्टी-फोर्थ जिन,

महावीर, जे० ओ० आई०, XXI, १-२, पृ० ७०-७८

सम मोर इमेजेज़ आफ जीवन्तस्वामी, जे० आई०, एम०, XI, पृ० ४६-५०

स्टेडीज इन जैन आर्ट, वाराणसी, १९५५।

साईड लाईट्स ऑन दी लाईफ-टाईम सैन्डलवुड इमेज आफ महावीर, जे० ओ० आई०, १, ४, पृ० ३५८-६८

सेविन ब्रोन्जेज फ्राम लल्विआ देवा (पंच-महल्स), बुलेटिन आफ दी बड़ौदा म्यूजियम एन्ड पिक्चर गेलरी, बड़ौदा, IX, I-II पृ० ४३-५२

शाह, यू० पी० एवं ढ़ाकी, एम० ए० — एस्पेक्ट्स् आफ जैन आर्ट एन्ड आर्की टेक्चर, अहमदाबाद, १९७५

श्रीवास्तव, बलराम (सं०) — रूपमंडन, वाराणसी, १९६४

सरकार, डी० सी० — बार्ली फ्रेग्मैन्टरी स्टोन इन्सक्रिप्शन, ज०बी० आर० एस०, XXXVII, I-I पृ० ३४ तथा आगे; XL, I, पृ० ८ तथा आगे।

विदिशा जेन इमेज इन्सक्रिप्शन आफ दी टाईम आफ रामगुप्त, जनरल आफ एन्शेंट इन्डियन हिस्ट्री, कलकत्ता, III, १-२ पृ० १४५-५१

संकालिया, एच० डी० — अरलिऐस्ट जैन स्कल्पचर इन काठियावाड़, जरनल आफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, जुलाई १९२८, पृ० ४२६ तथा आगे

जैन मोनुमेन्ट्स फ्राम देवगढ़ जे० आई० एस० ओ० ए०, IX, पृ० ९७-१०४

दी स्टोरी इन स्टोन आफ दी ग्रेट रिनन-सियेशन आफ नेमिनाथ, आई० एच० क्यू०, XVI, २, पृ० ३१४-१७

साहू, एल० एन० — उड़ीसा में जैन धर्म, अलीगढ़, १९५९

सेठ, सी० बी० — जैनिज्म इन गुजरात, (ए० डी० ११०० टू १६००), बम्बई, १९५३

सैटर, एस० — चक्रेश्वरी इन कर्नाटक लिटरेचर एण्ड आर्ट, ओ० ए० (एन० एस०), XVII, १, पृ० ६२-६६

स्टीवेन्सन, सिन्क्लेयर — दी हार्ट आफ जैनिज्म, लन्दन, १९१५

स्मिथ, विन्सेन्ट — जैन स्तूप एण्ड अदर एण्टीक्वीटीज आफ मथुरा, इलाहाबाद, १९०१

हस्तिमल्लिसेनाचार्य — पूर्वपुराणम्, (सं०) के० जी० कुण्डनगर, कोल्हापुर, १९४२

हैडवे, डब्ल्यू० एस० — नोट्स आन दी जैन इमेजेज, रूपम्, १७, पृ० ४८ तथा आगे

अनुक्रमणिका

———

९
MOHAN

RAKA

RAKA

६

RAKA.

८

RAKA

RAKA
RAKA

RAKA

RAKA.

RAKA.

१६

RAKA

RAKA

RAKA

30

38

४८

डा० ब्रजेन्द्र नाथ शर्मा, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में पुरातत्त्व विभाग के कीपर एवं अध्यक्ष हैं। इनके द्वारा लिखे गये 'सोशल एण्ड कल्चरल हिस्ट्री आफ नार्दन इण्डिया, 1000-1200 श० ई०' (नई दिल्ली, 1972); 'आईक्लोग्रेफी आफ रेवन्त' (नई दिल्ली, 1975); 'आईक्लोग्रेफी आफ सदाशिव' (नई दिल्ली, 1976); 'आईक्लोग्रेफी आफ वैनायकी' (नई दिल्ली, 1978) तथा 'फेस्टीवल्स आफ इण्डिया' (नई दिल्ली, 1978) प्रयाप्त रूप से महत्वपूर्ण ग्रंथ माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त डा० शर्मा के लगभग 150 शोध-पत्र भारत एवं विदेशों की अनेक पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं।

डा० शर्मा ने 1972 में 'इण्डिया पेविलियन' के क्यूरेटर के रूप में मान्ट्रियल, कनाडा में 'मेन एण्ड हिज़ वर्ल्ड' नामक विश्व कला मेले में भारत सरकार की ओर से 'भारतीय कला प्रदर्शिनी' का आयोजन किया था। 1973 में यू० एस० डिपार्टमेन्ट आफ स्टेट के आमन्त्रण पर भारत सरकार ने इन्हें वाशिंग्टन में हुई संसार के प्रमुख देशों से आये संग्रहालय-अधिकारियों की सभा में भाग लेने हेतु भेजा था। यहीं पर अमरीकन एसोसियेशन आफ म्यूज़ियम्स ने भी इन्हें मिलोवाकी में हुई अपनी विशेष सभा के लिए आमन्त्रित किया था।

डा० शर्मा को 1973 में श्री जान डी० राकफैलर थर्ड फंड, न्यूयार्क की ओर से मिली एक विशेष ग्रांन्ट के फल-स्वरूप इटली, जर्मनी, हालैण्ड, डेनमार्क, फ्रान्स, इंग्लैण्ड, संयुक्त राष्ट्र अमरीका, कनाडा, होनुलूलू, जापान, थाईलैण्ड, नेपाल आदि अनेक देशों में स्थित विख्यात संग्रहालयों में प्रदर्शित भारतीय कला-कृतियों को अध्ययन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

1977 में रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैण्ड, लन्दन ने डा० शर्मा को अपनी आनरेरी फैलोशिप से सम्मानित किया है।

मुद्रक-मान-हरि प्रेस, नौयडा